

प्रेम, सहिष्णुता

और

सेवा

उनकी अनेक शक्तियाँ उस रूप में विकसित नहीं हो पातीं जिस रूप में मनुष्य की। एक की अपेक्षा अनेक व्यक्तियों की शक्ति ज़ुड़ती है तो उससे अधिक लाभ मिलता है। यद्योंकि प्रत्येक व्यक्ति में अपनी कुछ विशेषताएँ होती हैं तो कुछ कमियाँ भी। इसलिए पारस्परिक संगठन के द्वारा एक दूसरे की कमियों की पूर्ति हो जाती है और विशेषताएँ बढ़ जाती हैं। इसलिए पारिवारिक जीवन एक पूरक जीवन है। अनेक प्रकार की अनेक शक्तियाँ मिलने से सबको उसका अच्छे परिमाण में लाभ मिलता है। सुख और दुःख में एक दूसरे का सहारा मिलने से दुख इतना भारी नहीं प्रतीत होता। जहाँ अकेला एक व्यक्ति ऊँ जाता है, वहाँ दूसरा व्यक्ति उसे आश्वासन या सहारा देकर उसके दुख-भार को हलका कर देता है कि तुम चिन्ता न करो, मैं तुम्हारे साथ हूँ, जो भी प्राप्त होगा, हम बांटकर खायेंगे और दुख मिलेगा तो भी मिलकर भोगेंगे। तुम्हारा कोई विरोधी है या तुम्हें कोई मारने आयेगा तो मैं भी तुम्हारे साथ हूँ, तुम अपने की अकेला मत समझना। तुम घर का काम देखोगे तो मैं बाहर का काम संभाल लूँगा। तुम दीमार पढ़ जाओगे तो तुम्हारा काम मैं कर लूँगा। अर्थात् एक दूसरे से मिलजुलकर रहने और परस्पर सहायक बनने से जीवन-संग्राम में अनेक सुविधाएँ प्राप्त होती हैं और इसी बात की लक्ष्य में लेकर भारत में पारिवारिक जीवन का अधिक विस्तार हुआ है। एक परिवार में १०-५ ही नहीं, पर १००-२०० व्यक्ति भी होते हैं। उन सब व्यक्तियों की योग्यता एक समान ही ही नहीं सकती। कोई कमाऊँ होता है तो कोई उड़ाऊँ, कोई

बुद्धिमान होता है तो कोई मूर्ख, कोई बलवान् होता है तो कोई बलहीन, कोई स्वस्य तो कोई रोगी, कोई एक व्यक्ति ही यहूँ व्यक्तियों का काम कर सकता है तो कोई सर्वथा निठला और निकम्मा होता है। यावत् कुछ व्यक्ति अन्यै, लंगड़े, लूँगे, बढ़रे भी परिवार में होते हैं; पर सब में अपनत्व और प्रमत्व होने से गवका एक साथ निभाव होता रहता है। कुछ तेज मिजाज के होते हैं, उनकी कट्टु बात भी सबको सहनी पड़ती है। अः पारिवारिक जीवन की दूसरी मूल भित्ति है—सहिष्णुता। एक दूसरे की बन्धी-भुरी बात को सहन किए विना निभाव नहीं हो सकता। यदि परिवार के एक व्यक्ति ने कुछ कहा और दूसरा उसे सहन नहीं कर पाया तो पर्यावर भगड़े होकर पारिवारिक संगठन टूट जायगा। यदि एक व्यक्ति नहीं कमाता है और वह परिवार के लिए भार ल्प है तो भी परिवार का मुखिया उसे बरदाश्त करेगा और सबको स्नेह-रज्जु में समान बांधकर रखेगा।

तीसरी मूल भित्ति है—पारस्परिक सहयोग और सेवा। मनुष्य जिसको आता मान लेता है उस आत्मीय के लिए स्वयं कट्ट उठाने को भी तैयार रहता है। यदि उससे दूसरे को सुख मिलता हो, परिवार का एक व्यक्ति रोगी होता है तो उसकी परिचर्या में वह शरीर की सुध-वुध खो बैठता है। दिन-रात एक करके वह कैसे और जल्दी-से-जल्दी रोग नुस्त हो, इसके लिए पूरा प्रयत्न करता है। एक व्यक्ति गिर पड़ा पर उसे कोई सहारा देकर खड़ा करते वाला हो तो उसका कट्ट बहुत दूँका हो जायगा। आज

- (६) पृ० ३४६-२९.३४७-१ में भूतेल का राजस्थानी-पर्याय भटूलिया है। गोलाकार गतिशील वायु को कहते हैं। जीव विचार में इसे 'मंडलि' वायु कहा है।
- (७) पृ० ५४, १२-१६; ५५; १२-१४ का 'रउलाणी' शब्द गोल वाटको का स्त्रीलिंग है, जो योगिनी का ही पर्याय है।
- (८) ४४, ८७, १२५ में प्रयुक्त 'वल्लुलक' का अर्थ नानो गोल वाटको (?) नहीं परन्तु इसका पर्यायवाची 'बटलोई' अर्थात् दाल, चावल आदि रांधने के काम में आने वाले भरतिये के लिये आज भी प्रयुक्त है।
- (९) पृ० १०६, ६-१०-२० में प्रयुक्त 'बलघमुख' मच्छियों का जाल (?) नहीं परन्तु बैत या बांस के बने हुए उस छोटे घड़े को कहते हैं, जिसका मुँह चूड़ी जितना होता है। उसमें छोटी मछलियां एकत्र की जाती हैं।
- (१०) पृ० ५४-२७ में शकंरा फल का अर्थ बीजोरु (?) लिखा है परन्तु कथावस्तु को देखते यह कोई फल नहीं परन्तु कटारी का वह फलक है, जिसे चतुर कलाकार ने शकंरा से निर्माण किया है पर फोलाद की भाँति मालूम देता है और राजा ने उसको चवाकर 'रउलाणियो' को जीता था।
- (११) पृ० २३३-१० में प्रयुक्त संचारक 'पाखाना या गंदे नाले' के प्रयोग में है।
- (१२) पृ० १६६-१० में 'समारित' शब्द का अर्थ खसी किया हुआ बैल और असमारित अर्थात् सांड-सूरज का सांड कहलाता है, जिसे खेती-बाढ़ी, गाढ़ी, घानी आदि किसी भी काम में न लेकर सुला छोड़ दिया जाता है।
- (१३) पृ० १६६, ४-६ में 'सहोलिक' शब्द तेल की उस हांडी को कहा है, जिसको सहोलिया अर्थात् राजस्थानी में 'शावलिया' कहते हैं।



राजस्थानी भाषा का गौरवपूर्ण मासिक

ऋ म रु वा णी ॥

सम्पादक — श्री रावत सारस्वत

वाखिक मूल्य १०)

सम्पर्क : —

राजस्थान भाषा प्रचार सभा

डी. २८२, मीरां मार्ग, बनो पार्क

जेपुर (राजस्थान)

प्रबन्ध-पंचशती के कुछ शब्दों पर विचार

(श्रा भेंत्रलाल नाथा)

गुभशील गणि कृत प्रबन्ध-पंचशती की हस्त लिखित प्रति हमने लगभग २५-३० वर्ष पूर्व पूना-भांडारकर ओरिएण्टल इस्टीट्यूट से मंगा कर पढ़ी थी और उसके कुछ प्रबन्धों का सार व तोट लिये थे। इस ग्रन्थ में लगभग ६२५ छोटे-मोटे प्रबन्ध हैं, जिनमें कई ऐतिहासिक, कई पोराणिक और कई लोक-साहित्य से सम्बन्धित हैं। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को हाल हो में मुनिग्राम श्रा मृगन्द मुनिजी महराजा ने सु-सम्पादित कर प्रकाशित करवा दिया है। डॉ हरिवल्लभ भायाणी जैसे भाषा-विज्ञान के मूर्धन्य विद्वान द्वारा लिखित विस्तृत निवन्ध-भूमिका से इस ग्रन्थ की शोभा में प्रशंसनीय अभिवृद्धि हुई है। शब्दसूची में इतनी महत्वपूर्ण मामगी भरी पढ़ी है कि देशय शब्दों के स्वकृत प्रयोगों का अध्ययन और उनका इतिहास जानने का यह प्रगम्भ साधन हो गया है। इसके बाद संदिग्ध अर्थ वाले २१ शब्दों की सूची दी गई है, जिनमें कुछ शब्दों का यहाँ स्पष्टीकरण करने का प्रयास किया जाता है:—

- (१) पृ० २५२-१८ में 'कपरिय' शब्द कौवली के लिए प्रयुक्त है। यह गुप्त नौंध पत्रिका नहीं परन्तु एक प्रकार का पृठ है, जिसमें दुहरा तिहरा लपेटकर फुटकर पत्रादि रखे जाते हैं। अतिचार आदि में कौवली को जानोपकरण में गिनाया गया है।
- (२) पृ० २१४-१७ में 'चुरडक' शब्द का पर्याय 'चलड़ी' राजस्थान में प्रसिद्ध है। चरू, चरी और चरूडा उसी के आरार-भेद के नाम हैं।
- (३) पृ० ५६, १४-२०-२१ में 'दण्डालक' का अर्थ 'सोनी नी एक जात' लिखा परन्तु यह नाम योगी (दण्डी) के दण्ड से सम्बन्धित है।
- (४) पृ० १३७-२६ में 'निछारक' का अर्थ 'घर का एक भाग' लिखा है। इसका अर्थ निसारा सं० निस्सर, तिकलने का स्थान गृहद्वार कहलाता है। राजस्थान में यह शब्द आंज भी प्रयुक्त है। दीवाली के दिन गृहद्वार पर जो दीपक किया जाता है उसे 'निछारे का दीया' कहते हैं।
- (५) पृ० १७८-२-६ में 'प्रशविकका' या शिविकका का अर्थ साधुओं को झोली होता है। शिविकका का भाषा-पर्याय छींका है।

**परमात्म-प्राप्ति
का सरल उपाय
अहंनाश**

श्री अगरचंद नाहटा

प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि प्रभुना प्राप्त करें, उच्चता के शिखर को छू लें। प्राप्त करने योग्य वस्तुओं और स्थिति को प्राप्त कर लें, पर केवल चाहने मात्र से तो यह काम हो नहीं सकता। यह ठीक है कि जहाँ चाह है वहाँ राह है, पर राह के बनाने और उस पर चलने का प्रयत्न किए बिना चाह पूरी नहीं हो सकती, राह मिल नहीं सकती, सफलता मिल नहीं सकती। इसलिये हम जैसा भी बनना चाहते हैं, उसके उपयुक्त साधन जुटाने पड़ेगे। वैसे प्रत्येक आत्मा परमात्मा है। इसलिये परमात्म भाव उसका अपना निजी स्वरूप है और वह उसे अवश्य प्राप्त हो सकता है। पर अभी हमारा परमात्म भाव विस्मृत है, दवा हुआ है। अतः उसे जागृत और अनादृत करना होगा। परमात्मा में क्या विशेषता है और यह दशा हममें कौसी प्रकट हो सकती है, उसका गम्भीर चितन करके किर बाधक कारणों को हटाना पड़ेगा और साधक कारणों को अपनाना पड़ेगा।

आत्मा और परमात्मा के बीच झीना-सा आवरण याने परदा पड़ा हुआ है। उस आवरण को दूर किये बिना अपने परमात्म-स्वरूप का प्राप्ति विहम नहीं कर सकते। स्वामी रामतीर्थ ने कहा था कि 'अहंकार ही वह आवरण है।' जरा-सा नीचे झुको, अर्थात् अहंकार को छोड़ो तो परमात्मा का दर्शन सहज एवं स्वयं हो जायगा।

दिल के भाष्टने में है, तस्वीरे पार की।

जब जरा गरदन सुकाई, देख लो ॥

व्यक्ति के अहंकार ने ही उसे परमात्मा भाव से अलग कर रखा है। 'मैं' और 'मेरा' का मायाजाल ही उसे परमात्मा से दूर कर रहा है। अहंकार या अभिमान आगे बढ़ने में व्राधक बन रहा है। वह अपने को दूसरों से विशिष्ट अर्थात् ऊँचा समझ रहा है, इसीके कल स्वरूप वह सब आत्मा में विद्यमान परमात्मा भाव को देख नहीं पाता। अपने में स्थित परमात्मा भाव का दर्शन भी उसे नहीं हो रहा है। बात सच है-

लघुता ते प्रभुता भिले, प्रभुता ते प्रभु दूर ।
चीटी सद्गुर ले चली, हाथी के तिर धूर ॥

लघुता का अर्थ यहाँ हीन-भाव नहीं है। हीन भाव तो गिराने वाला होता है। पर अहंकार शून्यता, अभिमान हीनता का भाव ही यहाँ लघुता से अभिप्रेत है। जो अपने को बड़े समझे बंधते हैं, उनका विकास वहीं रुक जाता है। मजिल दूर है, पर वे मान लेते हैं कि 'वह मुझे मिल गई है,' तो फिर उनमें मंजिल तक पहुँचने का उत्साह और यत्न ही नहीं रह जाता। इसलिये महापूरुषों ने अपनी अनुभूति को प्रसादरूप में कहा है कि व्यक्ति में जब भी कुछ अभिमान का भाव आने लगे तो उसे अपने से ऊँची स्थितिवालों पर विचार करना चाहिए जिससे उसका अभिमान गल जायगा कि अभी तो मैं दूसरों की अपेक्षा विचार, वुद्धि, बल, समृद्धि, सात्त्विक युग आदि अनेक बातों में बहुत पीछे हूँ। मुझसे अधिक योग्य और समृद्ध व्यक्ति तो अनेकानेक हैं तब उसे अपने भोलेषन का अनुभव स्वयं होमे लगेगा। व्यक्ति में हीनता का भाव भी न आये, इसलिये महापूरुषों ने कहा है कि जब भी हीन-भाव आये तो अपने में अधिक हीन व्यक्तियों पर विचार केन्द्रित करें कि उनकी अपेक्षा तो मेरी स्थिति काफी अच्छी है। उनको न तो पेट भर भोजन मिलता है और न वस्त्र-मकान आदि अन्य साधन ही उपलब्ध हैं। विद्या वुद्धि आदि भी उनमें बहुत कम हैं। उनकी अपेक्षा मैं तो काफी अच्छा, ऊँचा और सुवर्ण हूँ। फिर हीन भाव क्यों लेता हूँ। हीन-भाव को छोड़कर मुझे अधिक उन्नत बनने का प्रयत्न रहता चाहिये। मुझे दूसरों को अपने से हीन देखकर अपने में अभिमान नहीं आना चाहिए।

नम्रता में बहुत ही अच्छाईयाँ हैं। अभिमानी व्यक्ति को बहुत दुःख उठाना पड़ता है, ठोकरें लाजी प्रड़ती है। कहावत श्रसिद्ध है कि— “अभिमान तो राजा रावण का भी न रहा,” अभिमान सर जगती थेस लगते ही मनुष्य में कोश और अशांति का उदय हो जाता है। वह इतना वेचेन हो उठता है कि सब सुब सुविधाएँ होते हुए भी उसे तनिक भः शांति नहीं मिलती। जातिमद, रूपमद, वलमद, धूतमद, कुलमद, श्रुतमद और ऐश्वर्यमद इन आठ मर्दों को जिन्होंने भारण किया, वे वेचारे दुर्गति में गये। जगत् के प्राणियों ! देखो, सोचो और समझो कि अभिमानी व्यक्ति को बहुत दुःख उठाना पड़ता है। जैन तीर्थकरों ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि जो व्यक्ति जिस चोज का अभिमान करता है, उसे भविष्य में वह वस्तु पिल नहीं सकती। कुल का अभिमान करनेवाले को नीच कुल में उत्पन्न होना पड़ता है। भगवान महाद्वीर स्वामी के जीव ने जब वह मरीची के भाव में था तो अपने जाति एवं कुल का अभिमान किया था। इसके फल स्वरूप उन्हें गिरायी ब्राह्मण कुल में कुछ मरण के लिये अवतीर्ण होना प्रदान। योगिराज विदानन्दजी के भजन की कुछ पवित्रियाँ इसी संदर्भ में नीचे उद्घृत की जा रही हैं—

लघुता मेरे मनसाती, लई शुरु गम ज्ञान निशानी ॥८.१॥

सद अच्छ जिन्होंने धारे, ते दुर्गति गये विचारे ।

देखो जगत् में प्राणी, दुःख लहु अधिक अभिनानी ॥८.२॥

अपने को एडा माननेवाले अभिमानी व्यक्तियों को कैसे कैसे दुःख उठाने पड़ते हैं और लघुता-नम्रता धारण निर्गाभिमानता को अपनानेवाले व्यक्तियों को वे उठाने नहीं पड़ते, इस बात की पुष्टि करते हुये वे उत्तर्युक्त भजन की आगे की पंक्तियों में कई सुन्दर और हृदय-स्पर्शी उदाहरण दे रहे हैं। वे कहते हैं कि चन्द्रमा और सूर्य बड़े कहलाते हैं। इसलिये राहु का ग्रहण चन्द्रमा और सूर्य को ही लगता है। तारागण लघुता धारण करते हैं अर्थात् छोटे छोटे दीखते हैं, उनको राहु के ग्रहण का डर नहीं होता। इसलिये लघुता भली बंस्तु है—

शंशि सूरज बडे फहारें, ते राहु के वश आवें ।

तारागण लघुता धारे, सूर्यात् सीति निवारी ॥८.३॥

हम सब देखते हैं कि बड़ा व्यक्ति छोटे पर साधारण घातों में भी आवेश करता है, जिससे उसके मस्तिष्क पर ठेस पहुँचती है।

योगनगंगी चीटी बहुत छोटी होती है, पर वह सब जगह सुलभता से पहुँच सकती है। यद्यपि स्वाद और प्रगांधी का उपभोग वह कर सकती है। पर सबसे मोटा जानकर हाथी होता है, वह बेचारा स्वादिष्ट पदार्थों तक पहुँच ही नहीं पाता। अतः इबर उधर पड़ी हुई राख या मिट्टी को अपने मस्तक पर उछालता हुआ शरीर को धूलिघून्हरित कर लेता है। लघुता में मजा है, वह प्रभुता में नहीं है—

छोटी अस्ति जोयगंधी, रहे खटरस स्वाद सुगन्धी,
करटी भोटाई धारे, ते छार शिरपर ढारे ।

दृष्टान्तों की शृंखलता आगे बढ़ते हुए चिदानन्दजी हम सबका ध्यान लघुता की महत्ता पर आकर्षित करते हुये कहते हैं कि बालचन्द्र अर्थात् छोटी रेखायाला चन्द्रमा उदित होता है तो सब लोग उसे देखने को उत्सुक होते हैं। उसे देखनेवाला व्यक्ति दूसरों को प्रेरित करता है कि आओ, दोडो उस कोने में उगे हुये दूज के चाँद का दर्शन करो, और वही चन्द्रमा जब पूर्णमा के दिन बड़ा अर्थात् पूरा दिखाई देता है, तब उसे कोई देखने नहीं आता और उसी दिन से उसकी कला क्षीण होती चली जाती है। अर्थात् चाँदनी घटती चली जाती है। बालक की वृद्धि दूज के चन्द्रमा की तरह होने का उल्लेख किया जाता है; क्योंकि वह दिनों दिन दूज से पूर्णमा तक क्रमशः बढ़ता ही जायगा। पूर्णमा के बाद तो उसकी घटती प्रारम्भ हो जाती है, इसलिये उसका दृष्टान्त कोई नहीं देता; अर्थात् लघुता से ही पूर्णता और प्रभुता प्राप्त होती है।

जब बालचन्द होइ आये, तब राहु जय देखण धाये ।

पूनर दिन बडो कहाये, तब दीण कला होइ जाये ॥

आगे की दो पंक्तियों में दृष्टान्तों की परम्परा को आगे बढ़ते हुये चिदानन्दजी महाराज कहते हैं कि नाक कान उच्च स्थान पर हैं: उन्हें संबंध सहले कष्ट उठाना पड़ता है, उन्हें कोई नहीं पूजता। पेर सबसे नीचे हैं, वे ही पूजे जाते हैं। छोटे की पूजा होती है, पर कभी महत्व के अभिमानी ताक़-कान काटे जाने का दण्ड भी खोगते हैं।

गुरवार्ह मन में बैठे, सूप अवण तामिका छोड़े।
अंग माँ है लघु कहावे, ते कारण चरण पूजावे ॥

लघुता से कैसे प्यार तथा सम्मान मिलता है और बड़प्पन या बड़ा
होने से कष्ट उठाने पड़ते हैं। गुरु नानकजी ने बहुत ही मुन्दर कहा है—
नानक नन्हें हरे रहत, उपर्यों उपवन की दूब,
पास पात जरि जाँहुगे, दूब खूब की लूब ।

श्री विदानंदजी महाराज का कथन है कि—

शिशु राजधान में जावे, दृसजि हिलमिल गोद खिलावे ।
होय बड़ा जाग नवि पावे, जावे तो शीश फटावे ॥ ८.६॥

सारांश रूप में श्री विदानंदजी ने बहुत ही प्रेरणादायक बात
कही है कि जो अपने हृदय मन से अहंकार-भिमान और ऊँचनीच
भेदभाव को बहा देता है। अर्थात् निकाल देता है, वह त्रिभुवन का
नाथ अर्थात् परमात्मा कहलाता है। अहंकार का सर्वथा अभाव ही
परमात्म पद है। इस विश्व में जो भी भेदभाव नजर आता है, वह
अहंकार के कारण ही है।

प्रत्येक प्राणी में स्थूल या सूक्ष्म रूप से अहंकार विद्यमान है।
इसलिये वह सब जीवों में विद्यमान परमात्म-स्वरूप को देख नहीं पा
रहा है। अतः वह अपने को बड़ा और दूसरों को छोटा समझकर उन
प्राणियों को अपने से अलग मानता है। उनके साथ दुर्घटव्यहार करता
है। इसलिये भगवान महावीर ने कहा है—‘तुम किसी दूसरे को कष्ट
पहुँचाते हो तो वह अपने को ही कष्ट पहुँचाया समझो, क्योंकि स्वरू-
पतः वह और तुम दो नहीं हो। इस तथ्य को वह नहीं समझता।
पुराणों में इस बात को कहा गया है कि—‘तुम दूसरों के साथ बैसा
व्यवहार न करो, जैसा कि तुम दूसरों से अपने लिये नहीं चाहते हो।’

‘आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ।’

जैसा कि ऊपर कहा गया है कि आत्मा और परमात्मा के बीच
अहंकार का जीना पर्दा पड़ा हुआ है, वह पर्दा हटा कि आत्मा पर-
मात्मा बना। वर्तमान में अन्तर अहंकार के कारण है। अपने परायेपन
का भेदभाव बना हुआ नहीं मानता तो हमारे अहंकार को ठोस लगती
है और हम तत्काल संपर्क की तरह कुफकार उठते हैं, कुद्ध होकर उसे
गालियाँ देने लगते हैं। अनुचित वाक्यों की बौछार करते लगते हैं

ओर मारपीट के लिये भी उतार हो जाते हैं। यह भी नहीं सोचते कि उसमें भी हमारे जैसो ही आत्मा है, वह भी स्वाधीनता चाहता है, उसका भी अपना मन है, अतः वह केवल मैं हूँ जैसा ही क्यों करे ?

अहंकार का स्तर बड़ा सूक्ष्म है। बहुत बार हम उसे ठीक से पहचान अथवा पकड़ भी नहीं पाते। कई व्यक्ति वाणी, व्यवहार या दीखने में बड़े नम्र लगते हैं, पर जब कोई व्यक्ति उनको मूर्ख या निकम्मा कह देता है तो उनका अहंकार जागृत हो जाता है। वे सोचते हैं कि 'वह बड़ा है तो अपने घर का है, पर मुझको इसने ऐसा क्यों कहा ? मैं जो भी कुछ हूँ जैसा भी हूँ पर उसको मुझे ढापने उपटने का क्या अधिकार है ?' यह भावावेश की शब्दावली है, जिसमें अहंकार प्रेरक है, वहाँ अहंकार सूक्ष्म रूप में विद्यमान है।

कर्तृत्व का अभिमान ध्यक्ति के अहंकार का सूचक है। वास्तव में प्रकृति अपना काम स्वयं कर रही है, अनेक तरह के खेल दिखा रही है। पर ध्यक्ति मान लेता है कि 'जो भी अच्छा हुआ, वह मैंने किया या मेरा किया हुआ है अथवा मेरे करने से हुआ है। मैं नहीं होता जो ये ह कार्य या ऐसा कार्य नहीं होता। पर वह यह नहीं सोचता कि जब मैं नहीं था, तब भी संसार का काम चलता ही था और जब मैं चलूँ जाऊँगा तब भी संसार का काम चलता ही रहेगा। एक भजनमें कहा है—

होता स्वयं जगत् परिणाम, मैं जग का करता क्या काम ।

दूर हृदो परकृत परिणाम, सहजानन्द रहौं अभिराम ॥

विशेषता यह है कि जब कोई काम दुरा हो जाता है तो उसका दोष वह दूसरों को देने लग जाता है, अपना वचाव करते हुए, अहंकार सुरक्षा करने लगता है।

स्वाभिमान बुरी बात नहीं, वह तो अनेक दोषों से मनुष्य को बचाता है; पर जूठा अभिमान, अहंकार को बढ़ाता है। श्री चिदानन्दजी कहते हैं—“मैंने लघुता के महत्व को हृदयंगम किया है, उसके महत्व को जाना पहचाना है। अतः मैं लघुता का गुणगान कर रहा हूँ।” लघुता केवल कहने की चीज नहीं, धारण करने और अपनाने का सम्भाव है। इस प्रकार अहंकार-शून्यता ही परमात्म-पद प्राप्ति का सुगम मार्ग है।



‘पोतियावन्ध री चौपई’ के पाठ सम्बन्धी विचार

32

(श्री अगस्त्यनंद नाहटा)

१—तेरापन्थ दिलाको गमारोद के अभिनवन में प्रकाशित भिज्ञ-पन्थ रचनार के लगड अवशोकनार्थ मिलते। उनके सम्पादक हैं आचार्य भी तुलसी और संग्रहकर्ता सुनि भी वीथगलभी। प्रथम सम्पादक भीचन्द्र रामपुरिया है। सम्पादक एवं संग्रहकर्ता ने अपना कोई वक्तव्य इन दोनों भागों में प्रकाशित नहीं किया है। पेशल सम्पुरियाजी ने भूमिका में इन दोनों भागों में प्रकाशित रचनाओं का परिचय दिया है। वास्तव में यह यहुत ही आवश्यक था कि इन रचनाओं की प्रतीयों आचार्य भिज्ञ की स्वयं सिखित प्राप्त हैं तो किन-किन रचनाओं की कृप्य एवं कहाँ की लिखी हुई प्राप्त हैं तथा जिन रचनाओं की उनकी स्वयं सिखित प्रति प्राप्त नहीं है वे प्रतियों भी कव की और किसकी सिखित हैं, इसका विवरण दिया जाए, जिनके बाधार से इन रचनाओं का सम्पादन किया गया है। सम्पादक आचार्यभी तुलसी ने उसमें कहाँ यथा-क्या परियर्तन किया है तथा उनको अपनी उपादन-पद्धति पर भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक या अवश्य इच्छिता के नूल पाठ की प्राग-जिक्राए के सम्बन्ध में निरचन करने में कठिनता होती है। इसका एक उदाहरण ‘पोतियावन्ध चौपई’ का प्रकाशित पाठ है जिसकी दस्तलिखित प्रतियों ते निलाने पर यहुत से पाठ-भेद जानने में आये हैं। और भी अध्यक्षा होता है। यदि भिज्ञ भी भीखमजी के द्वाय के लिये हृषि-पञ्चों के कुछ कोटों भी इन प्रभेम-स्थिये-सारे-जिरसे उनके अचर-देह के दर्शन होने के साधनाय, पाठ की प्रामाणिकता भी स्पष्ट हो जाती।

२—“पोतियावन्ध” आचार्यभी भीखमजी के समय के एक ऐन-सम्प्रदाय का नाम है। नाम से सगता है कि इसके धावक पोतिया बोधते होते होते। उनकी मान्यताओं में अन्य सम्प्रदायों से कुछ मिलता था, विशेषतः स्थानकवासी या भीखमजी की मान्यताओं से। उन मान्यताओं की जानकारी प्रस्तुत खण्डनात्मक चौपई रचना से मिलती है। ४ दालों की इस रचना का नाम ‘चौपई’, मूल ग्रन्थकार द्वारा रखा हुआ नहीं प्रतीत होता है, यथोकि इसकी दो दस्तलिखित प्रतियों में देखी है उनमें ‘चौपई’ शब्द नहीं है केवल ‘दाल’ ही लिखा है। ये से तो ‘चौपई’ एक छन्द है और उस छन्द का प्रयोग जिस रचना में अधिकतर किया गया हो, उसे ही ‘चौपई’ तज्ज्ञापित्र करना उचित है पर रास की तरह ‘चौपई’ शब्द भी दाल-बद्ध रचनाओं के लिए लूढ़ा हो गया था। लैर।

३—एवं रचनाओं को भीखमजी ने कव और कहा यनाई, उक्का उक्केल यहाँ मिलता। यदि सम्पादक और संग्रहकर्ता की ओर से उन्होंने किए दम्पत् की लिखी हुई प्रतियों ते, जीवनी रचना का संग्रह व सम्पादन किया है, इसका विवरण दे दिया जाए, तो जिन रचनाओं में रचना-काल का निर्देश नहीं है उनकी भी प्राप्त ग्राचीनतम प्रति के बाधार ते, रचना-समय भनुमानित

प्रति है एवं उग्रता, ५८४८ में लिखी हुई है। इसलिए इस पन्थ की रचना १८४८ के आकाद वर्दि ११ से पढ़ते हो ही चुक्की भी, विद होता है। हमारे संग्रह की प्रति के अंत में “इहा २८ गाया १६८ दाल ४” लिखकर ग्रन्थ के परिमाण को भी स्पष्ट कर दिया है। प्रकाशित पाठ का इसके मिलान करने पर प्रथम और अन्तिम दाल की गायाओं में कल्पी-पैती प्रतीत हुई। अतः पर्यों को मिलान करके देखा गया तो संख्या से पाठ-भेद खाने आ गये। उन गाय पाठ-भेदों का कियोप विवरण तो देना वही आवश्यक नहीं समझता पर योधी-सी चार्चा कर दी जाती है। जैसे प्रारम्भिक तीरारे दोहे में प्रकाशित ‘इम’ और ‘उलटा’ रथा ‘पाप’ ये तीन शब्द हमारी दस्तलिखित प्रति में नहीं हैं। पाचवें दोहे में ‘बले’ शब्द के बागे ‘कहे’ शब्द हमारी, प्रति में अधिक है। तात्पर्य दोहे का अन्तिम “शब्द ‘ठाम’ की जगह हमारी प्रति में ‘ठिकाण’ है। प्रथम दाल के प्रारम्भिक पाठ ने भी कुछ शब्द बागे-पीछे हैं जैसे—‘पहली बरिंद्रवरा गुन दरे रे’ पाठ छपा है उसकी जगह ‘पिदां पहली अरित रा गुण करो रे’ पाठ है। इसी तरह दूसरी गाया में ‘वीसां चोता’ का पाठ छपा है। हमारी प्रति में ‘बाठ चोता’ है अपार्ट ‘वीसां’ की जगह ‘बाठ’ का पाठ है। इस तरह के पाठ-भेद तो अनेक हैं। यह भी मालूम होता है कि संग्रहक या सम्पादक ने कहीं-कुछ शब्द जोड़े हैं और कहाँ-कुछ शब्द कर कर दिये हैं। अंथोर परियर्तन किया गया मालूम देता है। साधारणतया नियम नहीं होता है कि संग्रहक अपनी ओर से जो पठा-दढ़ी करता है उसे ब्रॉकिट [] आदि जिहो द्वारा स्पष्ट कर दिया जाता है। लैर। अब यही हमारी प्रति की पहली और तीरारी दाल में जो गायाओं की त्यूनाधिकरा है, उसी पर प्रकाश डाला जा रहा है।

४—प्रथम दाल का ए पा, २४ वा और ३६ वा पर हमारी प्रति में नहीं है। कुछ गायाएं बागे वीछे भी हैं। जैसे जौधी गाया हमारी प्रति में तोसी है और लो-तीसी है, वह चौथी है। इसी तरह १६ वीं पहले है, अठारों पीछे। तीसीवीं और तीसीतावीं की वंकियां उलट-पुकट हैं। तीसवीं की पहली वंकि और ३२वीं की दूसरी वंकि मिलकर हमारी प्रति में एक गाया होती है। इस तरह और भी कई जगह पर पाठों की गडवदी है। हमारी प्रति के अनुसार पहली दाल की गायाएं ३५ हैं और प्रकाशित में ३८। जो तीन गायाएँ—हृषी, २४वीं, और ३६वीं हमारी प्रति में नहीं हैं उनका उल्लेख नहीं किया जा चुका है। इनमें से २४-वीं वीं जगह तो हमारी प्रति में स्थान रिक है। इसलिए लगता है कि गायाओं की संख्या ३६ होनी चाहिये। यद्यपि में जो प्रति में अभी देखके आया हूँ उसमें गायाओं की संख्या ३६ ही है।

५—चौथी दाल की ५६ गायाएं प्रकाशित हुई है उसके बाद मेरी प्रति में निम्नोक्त चार गायाएं और है—

या नाम दीयो मत यांद्या ॥
यां दीयो अणहुतो धाल्यो रह ॥शद्वा ॥५७॥

पोत्यावंद आवक आवक भगवान् रे
किण खुतर मड नही छ पीया रह ॥
जे पेट रह कारण बापदा ॥
ऐ जीन पाथ छइ भगीया रह ॥शद्वा ॥५८॥

बाइ नाँग पाय राता पहर ने ॥
बले वेसे ह ऊची पाठो रह ॥
यारा आवक घठै आगण ॥
यो करतब नदैइ माठो रह ॥शद्वा ॥५९॥

कहै कहै न करो कहै ॥
इण मत रो घोर अंधरो ॥
समज करो इण पार्पदी ॥
सुध साधु गुर भावे धारो रह ॥
या साची भगवान् री ॥६०॥

इति पोतियावन्ध आवको री उपर्या ऊपरे दाल उंगूँ दूहा॑ २८
गाया १८८ दास॑ ४ मिती अयाद् विद ११ समत् २८४६ वर्षे
लक्ष्मा फैसर डानाप रे समेव छइ ॥६१॥

६—जयपुर से शकाशिर 'जिनवाली' पत्र के अगस्त १८५५ के सहृदय में सुनिधि गजनन्द का एक लेख 'पोतियावन्ध परम्परा—एक दृष्टि' पढ़ने में आया। उसमें—पोतियावन्ध सुनिधि जचोंबी की दालों का परिचय दिया गया है। इस लेख में कुछ नवीन जानकारी भी पढ़ने को मिली जो भीखण्डी के रचित दालों में नहीं है। सुनिधि गजनन्द (हस्तीगलजी) ने लिखा है—“उम्बू १८५६ के समय नाथद्वारा में वेरांगी सुनि द्वारा भी गाँ चाँची की दालों में छाप्हन करते हुए अनेक 'पोतियावन्ध' के मत्त्वांकों का उल्लेख किया है जो इस प्रेक्षार है—

१—[अंक १] नी का सेधन करते, शास्त्रोक २० प्रकार के धोयन का उपयोग नहीं करते। उनका मन्त्रन्ध है छि लोयन जल में वेन्द्रिय जीव दी पट्टी के बाद उत्सन्न हो जाते हैं।

२—हिंग्यार परम्परा की तरह ये वाषी रोटी भावि को अमद गानते हैं जब कि शास्त्र में प्रान्त, वाषी, अन्न सहय का निषेप नहीं है।

३—पोतियावन्ध छठों धान को छाइ में मिलाने पर अग्न गालते हैं, उसमें जीव उत्सन्न होना कहते हैं।

४—शास्त्र में १२ कुल की मिदा बरसाई है छिन्नु उनका कहना है कि चीथे बारे की बात है, अतः ये महाजन कुल की ही मिदा लेते हैं।

५—पार्म प्रचार के लिए व्याख्यान के परचात् उपाध्य में

छाइ, बवासा भावि की प्रमाणना करते हैं और इसको बर्माइ गानते हैं। प्रथम दाल।

७—जय मैने यह विवरण पढ़ा तो यह स्पष्ट हो गया कि भीखण्डी रचित चार दालों में इन भाव्यताओं की चर्चा नहीं है तो उनका संक्षेत्र का ही उल्लेख है। इसलिए यह दाल उनसे मिल्ने होनी चाहिये। सुनिधि हस्तीगलजी से पूछने पर विवित दृष्टि कि उनके लेख का आधार जयपुर के लाल मवन रथानक में आचेहिंग्यार विनयचन्द्र जान मंडार की हस्तलिखित उप्रेष प्रति में पोतियावन्ध चर्चा की दालें हैं। उनकी नकल मंगाने का प्रयत्न किया पर ऐ प्राप्त न हो रहीं। अतः स्वयं जयपुर गवा और उठ प्रति को निकलवा के देखी। उसमें पहली दाल 'पोतियावन्ध ऊपरे दाल' ३५ पदों की है और उसके बन्त में 'इति सम्भूतं' शब्द लिखा हुआ है। इसके पश्चात् भीखण्डी रचित दालों में से पहले दाल नं० २, ३, ४ है और उसके बाद पहली दाल है। इन दोनों दालों के बाद एक और दाल है उसी में ३० १८५६ के फागव बदि में नाथद्वारे में रखे जाने का उल्लेख है। और उसके अन्त में लिखा है—‘इति पोतियावन्धनी दाल सम्भूतं’। इस दाल में साधु के उपकरणों की चर्चा है। मिन्नु शब्द रखाकर में यही दाल 'जिनवाला चौपदे' की पाँचवीं दाल के स्थान में लिखी है। परा नहीं इसे पोतियावन्ध की दाल बरसाने में प्रति के लेखक ने गलती की है। या उसे उन दालों के साथ में ही लिखी मिली होगी। पोतियावन्ध दालों की जब मेरे उपहासी प्रति १८५६ की है, तो इन चार दालों की रचना तो इससे पहले ही हुई है—निश्चित है। अतः १८५६ नाथद्वारे में रचित यह दाल उससे मिल्ने ही होनी चाहिये।

ग्री भीखण्डी तेरामधी मत के प्रबन्धक हैं, इसलिये उनकी तम्भूर रचनाओं का प्रकाशन हिंसावादी-समारोह के प्रतंग रूप में प्रकाशित करके भीखण्डी रामपुरिषा से उपायाएँ भी बही देखी हैं, साथ ही राजस्थानी बाहित्य की भी। भीखण्डी की रचनाओं में कुछ शब्द बहुत ही विकृत-रूप में मिलते हैं। उससे एक दार तो उनके वर्ण के तम्भूर में भ्रम हो जाता है—जैसे 'निन्य शी चौपदे' इसमें निन्यं शब्द 'निन्द्वं' का इतना विकृत रूप है कि एक नार तो इसके वास्तविक शब्द का परा लगाने में भ्रम हो जाता है। मेरे स्वास्थ से प्रकाशन के समय उसका शुद्ध रूप देना ही ज्यादा उचित होता, जैसा कि और वहुत से शब्दों में मोहा परिवर्तन हिला गया ही जाता है। कहीं पुरानी लिपि में 'जो' के लिये 'ध' लिखा मिलता है वहाँ पर भी उच्चारण के अनुसार वाधुनिक रूप ही लगाना चाहिये था। जैसे—'निवेष' की जगह निवेषा या निवेषा होना चाहिये या बयोंकि उसका उच्चारण 'निवेष' के रूप में नहीं किया जाता। पुरानी लिपि में वैषा चलता था येर सुदृश में वाधुनिक लिपि में उच्चारण के अनुसार ही रखा जाना उचित है। वियोग तुम्हार किर कभी।

प्रतिपत्तिका

एक

पाटण के हस्तलिखिन जैन ज्ञान भंडार

अगरचन्द नाहटा

पशु-पक्षियों को संख्या मानव में प्रत्येक विशेषताएँ हैं। इनमें से कुट्ट तो प्रथमि प्रदत्त हैं और कुछ स्थर्यं उत्तमांक है। जार्डों को धनियांक यंत्र पञ्च-कर्ता भी करते हैं। पर मानव ने इस दिशा में जो प्रकरण रास्ते को दे यह ज्ञान; देवों को जो प्राप्त नहीं है। जन्मों का विशाल भण्टार मानव ने ही इस्तु किया। विश्व दर्शे व्याविकारों ने उसमें वह निरन्तर वुद्धि करता रहा। इहाँ सारों को धनियति में सुगमता होती गई। उत्तर में घनेक जापार्दे हैं और एक-एक जापार्दे यत्नों द्वारा यत्नों द्वारा यत्नों द्वारा उत्तर तृष्णा। भार्डों को स्थायोद्य देवों के लिये लिपि का प्राविष्ठार तो मानव नमान दो एक वदुत वडी देत है। कोई भी ग्रन्ति संभित दर्शन तक नहीं जोपित रहता है। पर उसके जाव जय लिपिवद हो जाते हैं तो उसका जाप वदुत तम्भा हो जाता है; हमारों वर्षों तक लिपिवद हिये हुये विचार या लेख लाखों-करोड़ों अविद्यों को आगोरी नो। हितकारी होते रहते हैं, उनसे प्रेरणा और ज्ञान प्राप्त कर मानव नमान विश्वर ग्रन्ति करता रहा है। लिपि का ग्राविकार वह और किसने किया? इसका निहित दर्शन नगाना तो सम्भव नहीं किंतु ग्रन्ति ग्रन्ति वक कई ऐसी लिपियों भी हमारे यान्त्रों द्वारा लिपिको लहा नहीं जा सका। जैन बानमों के प्रनुसार प्रथम तीर्थंदर गमयान् उद्यान्तर ने यान्त्रं पुका शही की सर्वविद्यम लिपि। ग्रन्ति सिखना सिखाया इत्तीसिये उसका नाम 'शही लिपि' रहा; परम द्यन्म शूक भगवान् के प्रारम्भ में ही शही लिपि को नमस्कार किया गया है। यान्त्र या प्राप्तोऽपि लिपि जानें उनके नाम से ग्रन्ति है। ऐसे जैन ग्रामों में ऐसे प्रकार की लिपियों का उल्लेख मिलता है।

प्राचीनकाल में मनुष्यों की समरण तकि यहुत तंत्र थी। लिये वेद, प्राग्म, मिपिटक ग्रादि सभों प्रथम मीठिक लग से पदे-पड़ाये जाते रहे। और रसीलिये उनका नाम जूति पढ़ा प्रथात् चुन-नुनकर नो उन्हें याद रक्खा जाता था। जैन परमादा के प्रनुसार जैन प्राग्म प्रथम भगवान् महावीर के ५८० में दर्शन में गवर्णप्रथम शलवर्णी ने दर्वधिगणितमाथमणि ने लिपिरद हिये गवर्ण उन्हें नम्य नम्य तक उन्हें मानस्य ही रखा जाता रहा। और उनका

हो पाएं। इसीलिए ग्रन्थका सेव में वहो के जान नान्दारों का संग्रह परिचय करवाया जा रहा है।

पाटण का पूरा नाम 'यशद्विलपुर पाटण' है। पर प्रतिद्वंद्वि पाटण के नाम से ही उत्तमियों से ज्ञान प्राप्त होता है। गुजरात के गदियाना स्टेटम से पाटण के निए रेलवे लाइन जाती है यद्यपि मुख्यमानों ने पाटण को प्राचीन समृद्धि को कई रार प्राक्षण्य करके नष्ट कर दिया, किंतु भी जाहो मध्यम शहर है। वहाँ सेहङ्गों जैन मन्दिर, मनोकों उत्तम प्रोर ग्राम-मण्डार और छातारों जैन निवास करते हैं। नान्दोपाट-चाल ग्रामांशोध गनगाज जैनानार्थ शीलगुलामुरि के गद्योग से पाटण को आनी रामधारों के ला में नान्दना की। उत्तरके बाद उत्तमियों तक यह गुजरात की रामधारी रही और दिनों-दिन उन्नति होती रही। १२वीं-१३वीं शताब्दी में यह नगर खूब समृद्ध हो गया। राजस्तान ने इतारों जैन परिवार वहो जाकर बस गये और यहे यहे पदों पर शालन संचालन करते रहे। विदराज जयविह और महाराजा कुमार पात के गम्भीर नगर प्रमाण चरमाहर्ष पर उड़े चुम्पा था। गुजरात राज्य की सीमा भी बहुत बढ़ी। पाटण-का नगर यमुद्र कहा जाता रहा है। यारों और के अपारो यही प्राप्ति ! नान्दों-नारों का नान्दार दर्विन्द्र दोता। इस नगर का वर्णन घनेहों जैन ब्रेस्टर कवियों ने बड़े उत्त्यार के लाव प्रोर विहार से किया है।

वैसे तो इस नगर और राज्य की स्थापना में प्रारम्भ गे ही जैनाचारों और जैन धाराओं का बड़ा योग रहा है और नगर स्थाना के रामप ने ही वहो जैन मन्दिर व उत्पादय के गाथ-पाथ छोटे-पछे जान भण्डार भी स्थापित हुए होने। पर उन रामप की कोई प्रतियोगी और उत्तेज प्राप्त नहीं है। ११वीं शताब्दी में यहो के ग्रामपाला दुर्लभराज के रामप उत्पवासी-जैनाचारों ना बड़ा प्रस्ताव दी और उनका शब्द-संदर्भ भी काको बड़ा होगा। १२वीं शती के प्रारम्भ में जैनाचार्य अमयदेव सूरि ने यही रहे हुए नव प्रग सूर्यो गर संस्कृत शीकाएं लिखी। उन्होंने उन यामों के कई वाठ भेदों का उत्तेज लिया। इसीलिए उनके नामने एक-एक ग्रन्थ को घनेह प्रतियों विनिष्ट पाठ भेदों वाली रही; विद होता है। दुर्लभराज की सेवा में ऐसकावियों ऐ गुविदिन वाचार्य विनेश्वरीरही ने टाइट लो। राज-सभा में परसार दोनों का शारण्य हुआ। उस गम्भीर रामभंडार या जैन-पाथियों के नवार से एक कुमारी रम्या के हाथ से लाटरों के ला में यों हो एक ग्रन्थ निकाला गया जो लक्ष्मीकालिन सूक्ष्मा। इसे वहो संवत् १०७० के लवभग प्रच्छा जैन जान भण्डार होना चिन्द होता है।

१२वीं शताब्दी में सिद्धराज जयविह ने धारा नगरी के परम विद्यालिलाली राज और पर प्राक्षण्य किया और वहो भोज और उनके दमा पठियों के वनाये हुए व्यक्तिगति युवाओं की जानकारी प्राप्त हुई तो गुजरात में वासे हो उपकी वह इच्छा प्रवल हो उठी कि

मेरी राजधानी और भेरे प्राश्रय में भी ऐसे व्याकरणादि प्रन्थों का निर्माण हो। जैनाचार्य हेमचन्द्र उस समय यहीं थे और उनकी प्रशासारण स्थापित भी लिद्धराज जयसिंह ने सुनी थी। अतः उसने ब्राचार्य हेमचन्द्र से एक सचिज्जपूर्ण व्याकरण प्रन्थ बनाने का प्रनुरोध किया और साथी सुचिधार्ये सुलभ कर दीं, दूर-दूर से यहीं आई गई थी जो-ना व्याकरणादि के घटके प्रन्थ ये जहाँ प्रकरण दूर्वक यहीं मगावा गया और हेमचन्द्र की प्रतिप्रतिमा से जो व्याकरण, कोश, छन्द, घालंडार, काष्ठवदात्मन, आदि प्रग्रहों की रचना तृष्णे उनमें से व्याकरण प्रथा का नाम 'सिद्ध हेन शब्दानुशासन' रखा गया। लिद्धराज का 'सिद्ध' और हेमचन्द्र का 'हेन' इन दोनों शब्दों का सम्मिलन दोनों के सहयोग का ग्रन्थ है। इस व्याकरण की उसी समय प्रतेकों प्रतियोगि लिखवाकर दूर-दूर तक भेजी गई। इसकी पढाने के सिये विद्वान् नियुक्त किये गये। अर्थात् इसके प्रचार में भी सिद्धराज का बड़ा ही योग था। हेमचन्द्र का प्रभाव कुमारपाल पर तो इसमें भी स्पष्टिक रहा है। उसने तो आपसें गंजैनधर्म स्वीकार कर लिया था। उपास्त कुमारपाल और उस समस के आवासों ने भी यहाँ-सी प्रतियोगि लिखवाकर ज्ञान भंडारों में यन्निवृद्धि की होगी। १३वीं शताब्दी पहान् जैन-वीश्वर यस्तुपाल तेजपाल ने करोड़ों स्थाये जैनमन्दिरों प्रादि के निर्माण में अर्थ लिये। आयु का निमित्त राम्बिंदर तो कृता के सिये प्रसिद्ध हैं हाँ। शत्रुघ्नि, गिर्भार आदि प्रतेक स्थानों पर उन्होंने राम्बिंदर वनवाये और ज्ञान भंडार की बहुत सी प्रतियोगि लिखवाकर स्थापित किये। इसके बाद भी प्रतेक थावक हस्तिलिखित प्रतियोगि सिखवाते रहे हैं। १५वीं शताब्दी में खरतरगढ़ के आचार्य जिनमद्द-सूरजी ने जैसलमेर, खम्भात प्रादि ७ स्थानों में ज्ञान भंडार स्थापित किये, उनमें पाटण भी एक है। तपागच्छ के आचार्य वेवसुदर सूरि प्रादि की लिखवाई ही है वहुत सी प्रतियोगि प्राप्त भी यहीं के भंडारों में प्राप्त है। पाटण में याय कई गच्छों के उपाय य ज्ञानभंडार रहे हैं। इनमें से कहाँमें में त्वतन्त्र ज्ञान भंडार थे व कुछ भाज भी हैं। परं यहीं बर्तमान में जो-जो ज्ञान भंडार हैं उनका तंभित विवरण दिया जा रहा है—

पास्चात्य विद्वानों में सबसे पहले सुप्रथिद्व राजस्थान के इतिहास लेखक कर्नल टॉड यहीं सन् १८२६ के दास पास भाये और उन्होंने गुरु खरतरगढ़ीय जैनयति ज्ञानचन्द्र जो के सहयोग से यहीं के कई ज्ञान भंडारों को देखा और कठिन्य इतिहास के उपर्योगी प्रन्थों की ज्ञानकारी प्राप्त की। इसके बाद नुजरात के इतिहास 'राज माला' के लेखक एसेन्डर-किन्न-खोक फार्थस साहब भी यहीं (पाटण) आये और पूर्णमा पद व सागरगढ़ के अधिकारी श्रीपूज्यों को प्रसन्न करके उनके ज्ञान भंडारों को सन् १८५०-५१ में देखा और द्वात्रय महाकाष्ठ्यादि ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की। तदनन्तर सन् १८७३-७५ में श्रितिश सरकार से प्रेरित और प्रोत्साहित डॉ० जी० बुलहर ने यहीं के भंडारों का यदवोंहनि किया और कई यहस्पृह्य ग्रन्थों की तकलीफ करवाई। उन्होंने यहीं देखे हुए प्रन्थों का विवरण प्रपनी खोग रिपोर्ट में प्रकाशित किया है। सन् १८६०-६१ में डॉ० फिल्हार्ने ने यहीं के कई वाहानों

प्रतिवार इयकन कर्तित—भंडारकर रियर फ्लटीट्यूट के लिये पात्र थीं। १८८३ में डॉ भंडारकर और प्रा० काप्टेन बड़वई तारकार हो प्रेरणा ते यहाँ आये और कई भंडारों को देख कर सूची बनाई। सन् १८७७ में उनकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई।

बड़ोदा के जहागाका समाचराव गायकवाड़ के राज्य में पाठ्य भी था। उन्होंने यही के गद्दरपूर्ण भंडारों की गवानीति तानकारी प्रदाता में लाने के लिये प्रा० गणिताल द्वितीय हो भेजा और उन्होंने यही के कई भंडारों का निरोक्षण किया। उनको रिपोर्ट सन् १८८८ में यशादा के राज्यों पुरुषावार ते राजीवत हुई। इस रोब सन् १८९३ में बद्वई सरकार की प्रेरणा ते प्रा० विटला नहीं पाये प्रार ग्रामान ताडावीर प्रतियों को देखकर अनुत्र प्रतन तुरे। करोब २०० राज्यों क आदि घर्त्र प्रशस्तियों के साथ उन्हीं रिपोर्ट भव १८९६ में प्रकाशित हुई। जैन सत्रामदर काकेपा, बद्वई ने भी यही के भंडारों की सूचियों के यापार ते जैन प्रन्वालों गत्तर जैन प्रन्वय सूची में यही के गद्दरपूर्ण प्रम्यों को पूछो दी है। यह सूची सन् १८०६ में प्रकाशित हुई।

यही के जैन ज्ञान भंडारों के सम्बन्ध में सबसे अधिक और उल्लेखनीय छाँटवा० जैन विद्वान विमलनाथ इयाल ने लिया है। समाजात्मन गायकवाड़ ने उन्हें यही सन् १८१४ में भेजा थार अद्यन्त तक पाठ्य रस्तों व गणितेवाचा भाविते वद्दों ते एवं उभयारों का सूथम निराकाश लिया। यह विवरणात्मक सूची ताराई तित्र समाप्ति तरिकाद्वारा करके पृष्ठित लालकांद भगवानदास गांधो ने गायकवाड़ ग्रामिणाल निरोक्ते सन् १८२७ में प्रकाशित करवाया। इस पृष्ठी में स्प० विमलनाथ इयाल के तन् १८१५ में तेवां थोड़े अंग्रेजों रिपोर्ट भी प्रकाशित की दी है। श्री इयाल ने इसी तरह जैसलमेर के भंडार तो भी निरोक्षण करके विवरणात्मक सूची तैयार की थी। पर उनका स्वर्गवास हो गया। प्रवः उन दोनों सूचियों हा यन्त्रित ह्य प० लालकांद भगवानदास गांधो ने दिया। जो उन्हीं की जगह गायकवाड़ सरकार से नियुक्त हुये थे।

पाटण भंडार की सूची को २ भागों में प्रकाशित करने की योजना बनाई गई थयोकि केवल ताडावीय प्रतियों के विवरणाली सूची भी काढ़ी बढ़ी हो गई। इस सूची में पाठ्य के ८ भंडारों की ताडावीय प्रतियों का विवरण देता है—(१) संघवी पाड़ा भंडार प्रति यहाँ ८२३, (२) ऐ। (वा०) भंडार प्र० स० ७३, (३) संघ भंडार प्र० स० ७०, (४) तपापांडु भंडार प्र० स० २२, (५) गहानदपोपाड़ा भंडार ३, (६) वाडी पाल्वनाथ भंडार प्र० स० ५ (७) गोतो भंडार प्र० न० २ (८) युग्मानपद्मार प्र० स० २ कुल ५१७ गायपत्रीय प्रतियों का विवरण सूची के प्रवेन भाग ते प्रकाशित हुआ है। इनमें से कई प्रतियों में तो खोटी-खोटी बहुत सी रचनायें हैं।

पाटण भण्डारों की काप्टेन ही प्रतियों को विवरणात्मक सूची दूसरे भाग में प्रका-

शिव करने की योग्यता थी पर ऐसे हैं वह ३० वर्ष बीत जाने पर भी आज तक प्रकाशित नहीं हुई। पर पह बहुत ही छुटी की थात है कि यहाँ के भण्डारों को प्रवर्तक कान्तिविजय जी बृद्धावस्था होने के कारण पाटण में ही वर्ष ८५ थतः उनके शिष्य चतुररविवर्यजी और ज्ञाने शिष्य आगम प्रभाकर गोगन्य मूर्ति मुनि थी। पृष्ठाविवर्यजी ने गुब्बवस्थित कर दिये और सन् १६३३ में सब भण्डारों को एकत्र रखने का विचार कार्य रूप में परिणीत किया गया। संयोग ऐसा अच्छा यता कि आचार्य विजयवल्लभसूरि संवत् १६६० में पाटण पधारे और यहाँ के भद्रत्वपूर्ण प्रभु भडारों की तुल्या के लिये जेन संघ को प्रेरणा दी। इस कार्य को करने के लिये पोहर्ले-पोहर्ले में सभायें हुई जेन आचक-आविकामों में अपूर्व उत्साह जागा, और वहाँ ने तो इस कार्य के लिये गढ़ने तक दे दिये। यह जगहाहर्ण जातागरण में गहरी के सेठ हेमचन्द माहात्माजी झवरी व उकुल साइरों ने पाटणक जेन संघ से २१००० रुपये में जगह खरीदी और ४१००० रुपये के खर्च से ज्ञान मन्दिर का भवन बनाकर भावी सुध्यवस्था के लिये १०००० रुपया और देव दुपे जेन संघ को ज्ञानमन्दिर सुपुर्द कर दिया। यह ज्ञान मन्दिर पूर्व और परिदृष्ट छा द्यावत। इस के सन्दर्भशृण का प्रतीक है। बेलियम के विश्वात आकेटेस्ट भी० गेहरर से इस्ता ज्ञान बनाया गया। उस समय गेस्पर हैदरबाद के निजाम यूनिवर्सिटी के लिये युवाये हुए थे; ग्रन्तः उसका लाभ थी। हेमचन्द झवरी ने उठाया ज्ञानमन्दिर सैमझों यथों तथा टिकाऊ रहे और यहाँ रखे जाने पाले ग्रन्थ पूर्ण रूप से सुरक्षित रहे। इसलिये मकान को फायरशूफ बनवाया गया। इस ज्ञानमन्दिर का उद्घाटन सन् १६३६ ही ७ अप्रैल को उस गुनद के दर्शक राज्य ठगुड़मधो थो कन्हैयाजाल गालिकलाल मुम्ही के हाथों से करवाया गया। एट्टा ता भद्रिग्राम प्रिन्सिप भावार्द्धगर्द का पवित्र ताप इस ज्ञानमन्दिर के साथ गोदा गया।

श्री हेमचन्द सूरि ज्ञानमन्दिर में तंत्रवीराजा, भागापादा, प्रीत खेतरवसी पाड़ा के अतिरिक्त यामो गण्डार निमित्तित कर लिये गये। प्रतियों को सुरक्षित रखने के लिये प्रतिरों के मात्रे अतुरार लड्डो छो पेटियो बनाईं गईं और जोहे को यजवृत धालमालियों में ब्रवस्थित करके रखो गयी हैं। ज्ञानमन्दिर के उद्घाटन के बाद श्री हेमचन्द झवरी ने बहुत-सी हस्तलिपित प्रतियो खरीद करके भण्डार की प्रनिष्ठित की है और ग्रन्थ स्वानों के भी कई भण्डार इस ज्ञानमन्दिर में आ गये हैं। कुल मिलकर यगी इस ज्ञान मन्दिर में २३० ताङ्पत्रीय, २०००० के करीब कागज पर लिखी हुई और २००० मुक्ति प्रम्य है। ११ दी सताव्दी से लेकर अब तक की लिखी हुई प्रतियो यहाँ हैं जितमें से कई दररातिरी, रोधात्मकी और सचिव भी हैं।

पुज्यमुनि श्री पृष्ठविवर्यजी की प्राचीन जेन साहित्य की सेवा बहुत ही उल्लेखनीय है। ४०-५० यवों से दे निरन्तर जगह-जगह के हस्तलिपित ज्ञान भण्डारों का निरीक्षण, संरक्षण, और सुध्यवस्था में लगे हुये हैं। जंतुलभेर ज्ञानभंडार छो भी चर्तमान रूप उन्हीं ने

दिया है। प्रह्लादपाठ के लालभाई एवं पतभाई भारतीय संस्कृति पिंडा मन्दिर की स्वापना में भी उम्ही का सर्वाधिक योग है। यदों से संश्टीत प्रपनी स्थियं की ८००० से भी अधिक प्रतियोगी उम्होंने उक्त विद्या मन्दिर को खेट भी है। भारत के सुविश्वास उच्चोगपति सेठ कस्तूर भाई लालभाई ने इस विद्यामन्दिर को बड़ी उदारता से स्थापित किया है और वर्तमान में यहाँ करीब १५००० हस्तलिखित प्रतियों का विरल एवं महत्वपूर्ण संग्रह हो चुका है।

मुनि पुण्यविभाय जी यदों तक यथा गुह और प्रगुह के साथ पाटण में रहे और उनकी शौष्ठ्यता, उदारता, ज्ञानगरिमा और सेवावृत्ति से सभी प्रभावित हैं। पाटण के हेमचन्द्र सूरि ज्ञानमन्दिर के निर्माण एवं अभिवृद्धि में उनका सर्वाधिक योग रहा है। उम्होंने इस ज्ञानमन्दिर की महत्वपूर्ण सूची वडे व्रत से तैयार कराई है और हस्तलिखित प्रतियों का सेवन प्रशस्तियों को भी नकले करवाती है। यूनी का प्रयत्न भाग छप भी चुका है। इसमें निम्नोल्लंष्ट संग्रह स्थितंश्रद्ध विभाग के रूप में हैं उनकी करीब १५००० प्रतियों की सूची दी गई है।

१. श्रीसंघ जेन ज्ञान भंडार,	प्र. न. ३५०८	
२. लीवडी पाड़ा जेन ज्ञानभंडार,	प्र. न. ३५०८	सं ४०१४
३. शुभवीर जेन	प्र. न. ४०१५	सं ६५२५
४. बाढ़ी पार्श्वदाय	प्र. न. ६५२६	सं ७३३२
५. सागरगण्ड	प्र. न. ७३३३	सं ११८५
६. मोदीभंडार	प्र. न. ६६८६	सं १०३०८
७. लहौर भाई वकील भंडार	प्र. न. १०३०८	सं १०८३०
८. प्रवर्तक कान्ति पिंडा भंडार	प्र. न. १०८३१	सं १२८४३
९. धर्ति हिमत विजय भंडार	प्र. न. १२८४४	सं १२६१५
१०. श्री सध खरीद	प्र. न. १२६१६	सं १३२२२
११. प्रहृष्टीपाड़ा भंडार	प्र. न. १३३२६	सं १३४२६
१२. मालिकप खिड गूरिभंडार	प्र. न. १३४६७	सं १३१८
१३. जेसलमेर के यति गृद्धि चन्दजी लहौरी चन्दजी भंडार		
	प्र. न. १३५०४	सं १४७८६

इस प्रकार १४ प्रलग-प्रलग भंडारों की करीब १५००० हस्तलिखित प्रतियों की सूची हीम्ह ही प्रकाशित होने जा रही है।

जैसा कि पहले दिल्ला गया है पाटण के प्राचीन भंडारों में तंथ्री पाड़ा, भागा पाड़ा और ऐतरथी पाड़ा एवं तीन व्यानों के भंडार भी हेमचन्द्रसूरि ज्ञानमन्दिर में रास्तमलित न होकर स्थित रूप में हैं और उनमें भी ताङ्गथीय प्रतियों का बहुत बड़ा और महत्वपूर्ण संग्रह है। मुनि श्री का प्रयत्न चालू है। समझ है वे भंडार भी इस ज्ञानमन्दिर में सम्म-

છુદ્ધ ફસ્તાઘના છુદ્ધ

[લે. — શ્રી અગરચન્દ નાહટા, વીકાનેર]

જैન ધર્મ પ્રાણી માત્રાની ઉદ્ઘાતના કાંઈ સન્દેશ દેતા હૈ। પ્રાણી-માત્રાની હિંસા કા વિરોધ કરતા હૈ। દુઃખ કે કારણભૂત રાગટેપ કો ક્રમ બરએ પ્રત્યેક પ્રાણી કર્માનીની આવરણ કો દ્વારા આત્મિક સુખ પ્રાપ્ત કર સકતા હૈ—યદુઃખ સન્દેશ અધિકાર્થિક વ્યક્તિઓની તક પહુંચાને કે લિયે જैન તીર્થદૂરોને 'જન-માધા' સે અપના ઉપદેશ પ્રચારિત કિયા। જૈનાચાર્યોને ભી સત્તા લોક ભાષા મેં સાહિત્ય-નિર્માણ કિયા। નીતિ ઔર ધર્મ-પ્રચાર કે પ્રતિ જનસાધારણ કા ઝુકાવ અધિકાર્થિક સરળતા સે હો સકે ઇસલિયે અન્ધાની લોકગીતોં, દોકાનથાઓં વિન્યાસાદ્યારણ દ્વારાની તથા લોકપ્રિય કાઢય-શૈલિમોં વિન્યાસ રચના-પ્રકારોની અપનાયા। રાસ ભી ઉસી તરફ કો એક લોકપ્રિય રચના-પ્રકાર હૈ।

માગબતપુરાણ મેં શ્રીકૃષ્ણ ઔંપ ગોપિકાત્મોની રાસલોલા કા વર્ણન મિલતા હૈ ઔર પરથર્તી કાબ્યશાસ્કોની લેખકોને "રાસક" કો ગીત-નૃત્ય પ્રધાન રૂપક માના હૈ। પ્રાચીન જैન રાસોની સે ભાં યદુઃખ હૈ કે વે નૃત્ય કે સાથ ગાયે જાતે થે। ઇસીલિયે ઉન રાસોની અન્ત સે—

"રંગિહિયે રંગિહિયે રમ્હે જે રાસુ !" "એ રાસ જો દેસિ ગુણસિ !"

"રાસ રમેષુ જિણ મબણાદ, તાલ મેલ ઠવિપાદ !" "એહિ રાસ જો પદાદ ગુણાદ, નાચિઉ જિણવર દેવ !"

—આદિ ઉલ્લેખ મિલતે હોયેને। તથા વાલા રાસક ઔર ડંડ રાસક કા જો 'સત્ત લેન્દું રાસ' મેં ઉલ્લેખ હૈ ઉસસે ભી ઇન રાસોની કો ગાતે સમય તાલિયોં ઔર ઢાંઢિયોં (લકુટિ) કા નૃત્ય હોતા થા ઔર જैન મન્દિરોની વિવિધ જસ્તાઓ મેં ઇન રાસોની કે ખેલે વિન્યાસ જાતે કા ખૂબ રિવાજ થા-તિર્દ્ધ હોતા હૈ। પ્રાચીન છોદે છોટે રાસ સભી ઇસી ઉદ્દેશ્ય સે બનાયે ગયે થે। ઔર જैન મન્દિરોની પ્રાંગણો મેં ખેલે ગયે થે। "યુગપ્રધાનાચાર્ય ખરતરલાચ્છ ગુઢવાંઠી" માં જૈનાચાર્યોની નગરપ્રવેશ કે સમય કિસ કરહ રાસ ઔર ચર્ચરી દિયે-ખેલે વિન્યાસ જાતે થે ઇસકા એક ઉલ્લેખ દેખિયે।

"स्थाने स्थाने प्रमुदितजनेन श्रीयमानेषु प्रधान रासकेसु, नाना विपरीमानेषु गीयमानेषु विविध-
प्रबहच्छभिन्निशतेषु ।"

रास नामक एक छंद रचना प्रकार विशेष का विवरण विरहाङ्क के 'वृत्त जाति समुद्दय' और
स्वयंभू के 'स्यग्नभूच्छन्दस्' में मिलता है। उसके अनुसार बहुत से अडिल्ला, दोहे, माचा, रङ्गा, ढोसा,
घत्ता, छप्पर, पढ़दि छंद जिसमें पाये जाते हैं, उसे रासक या रासावंश कहते हैं। अपधंस काल
से इन रास या रासक संबंधक रचनाओं की परम्परा मिलने लगती है। जिनदत्तसूरि जी का 'उपदेश
रसायन रास' और अद्वृद्ध रहमान का 'सन्देश रासक' अपधंश भाषा के रास हैं। तेरहवीं शताब्दी
से प्राचीन राजस्थानी या गुजराती भाषा में रास संबंधक रचनायें जैन विद्वानों ने बहुत बड़ी संख्या में
बनाई हैं। हिन्दी में भी 'पृथ्वीराज रासो' आदि रासों की परम्परा १५वीं शताब्दी तक चालू रही है।
इवेताम्बर जैन कवियों के द्वारा तो अध भी रास श्रनाये जाते हैं और वे लोकगीतों की देसियों में
व्याख्यानों में गा-गा कर जनता को मुनाये जाते हैं। यद्यपि इधर में इसका प्रचार क्रमशः बढ़ता जा रहा है।

जैनेतर और दिगम्बर जैन विद्वानों ने भी रासों की रचना की है, पर इस काव्यशैली या
रचना-प्रकार को सबसे अधिक अपनाने वाले इवेताम्बर जैन कवि ही है। उनके बनाये हुये रासों की
संख्या दो-तीन हजार की है। उनमें से सैकड़ों रास तो प्रकाशित भी हो चुके हैं।

(जैसा कि प्रस्तुत जैन रास-माला के प्रारंभ में लिखा गया है कि) जैन इवेताम्बर कॉन्फरेन्स ने
अबसे ५० वर्ष पूर्व धूर्ति इवेताम्बर जैन रासों की सूची "जैन रासमाला" के नाम से प्रकाशित की थी
और उसकी पूर्ति स्वर्गीय मोहनठाल दठीचन्द्र देशाई ने विं सं० १९७० में की थी,— वास्तव में जैन
रासों के विवरण—संग्रह एवं प्रकाशित करने में सबसे अधिक श्रम स्वर्गीय देशाई ने ही किया है। किस
प्रकार विभिन्न ज्ञानभंडारों में पहुँचकर उन्होंने यदि विवरण तैयार किया इसकी कुछ चर्चा "जैन गूर्जर
कवियों" भा० १ व २ के 'निवेदन' में उन्होंने की है। जैन गूर्जर कवियों के तीसरे भाग के तैयार करने
में तो उन्होंने बहुत ही अधिक श्रम किया। वे उसकी प्रस्तावना करीब ५०० पृष्ठ की लिखने वाले वे
पर हुर्भाग्यवश वे पूरा लिख नहीं पाये। उसके कुछ नोट्स मेरे पास अवश्य पढ़े हैं जिससे उनके
५०० पृष्ठों की प्रस्तावना ही रूपरेखा व उसमें दी जानी वाली महत्व की सानग्री का कुछ परिचय
मिल जाता है। "जैन गूर्जर कवियों" के तीन भागों में उन्होंने दो हजार से अधिक रास, चौपाई
आदि रचनाओं का विवरण प्रकाशित किया है। (यदि प्रस्तुत "जैन रास माला" उन तीनों भागों को
देखकर तैयार की जाती तो अभी जो इसमें बहुत सो अनुद्विद्याँ एवं कामयाँ रह रही हैं, वे तहीं रह-
कर यह अधिक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण रास-सूची बनती। किंतु भी जब यह छप ही चुकी है तो
कुछ न कुछ उपयोगी तो है ही।) इससे इवेताम्बर जैन समाज के कुछ विशाल राजस्थानी गुजराती
भाषा की पय-रचनाओं की एक सांकी ले मिल ही जाती है। (यद्यपि "जैन रास माला" नाम के अनु-

१ इन तीनों भागों की पूर्तिरूप मैंने भी इनमें अनुलिखित करीब ५०० ऐसी ही रचनाओं का विवरण
संग्रहीत किया है।

सार इसमें रासों को ही सूची देना उयादा उचित होता पर इसके संकलनकर्त्ता ने इसमें विवाहला, ढाणिया, सज्जाय, चतिन्न छत्तीशी, कवित्व, शीर्थमाला, गीत, विलास, छंद, भास, वामदासा, सलोका, आख्यान, वेल, सम्बोध, लेख, प्रवोध आदि विविध संज्ञाओं वाली पद्य रचनाप्रकारों के साथ-साथ कहीं-कहीं तो स्तवक-ट्ट्वा, वालावबोध व विवरणसंबुक गवरचनाओं के नाम भी इस सूची में संश्लेषित कर लिये गये हैं।)

अब हम 'रास' संबंधक रचनाओं को कुछ हातव्य वातों की योड़ी जानकारी प्रस्तुत कर रहे हैं।

१. प्राचीनता — उपलब्ध 'रास' संबंधक अपब्रंश व राजस्थानी, हिन्दी, गुजराती भाषा की स्वतंत्र रचनाएँ १२वीं शताब्दी के पहले की नहीं मिलती पर उनकी परम्परा बहुत प्राचीन प्रतीत होती है। सातवीं शताब्दी के प्रन्थों में रास का उल्लेख मिलता है और दशवीं शताब्दी के आचार्य सिद्धर्थि के 'उपमिति भव प्रपञ्च कथा' में तो रिपुदारण रास व मंद्र संस्कृत में प्राप्त हुआ, जो ढा० दशरथ शर्मा "मह-भारती" वर्ष ४ अंक २-४ में प्रकाशित कर चुके हैं। इससे संस्कृत में भी राससंबंधक रचनाएँ बनाई जाती थीं—इसका उदाहरण मिल जाता है। रास की प्राचीन परम्परा और स्वरूप के सम्बन्ध में मेरे विद्वान् मित्र ढा० दशरथ शर्मा ने लिखा है—

"रास एक नृत्य-विशेष है, एक प्रकार का काव्य और उपरूपक भी। प्रारम्भ में ये तीनों रूप मिले जुले थे। जब आनन्दातिरेक से जन-समूह नृत्य करता है तो अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिये स्वभावतः वह गान और अभिनय का आधय लेता है। उसकी उमंग के लिये सभों द्वार खुले हों, तभी उसे संतोष होता है। उसे सम्पूर्णज्ञ नृत्य चाहिये। केवल मूक नृत्य उसके भावाभिव्यक्ति के लिये पर्याप्त नहीं। श्रीमद् भागवत पुराण का रास कुछ इसी तरह का है। उसमें गान, नृत्य और काव्य का मधुर मिथ्रग है।"

'उपमिति भव प्रपञ्च कथा' की रचना वि० सं० ९६२ में हुई। इसमें 'रास' शब्द का प्रयोग काफी मिलता है। पृष्ठ ३३० में शंख-करु के वर्णन में उल्लिखित 'मंडला बद्ध रास' से सिद्ध है कि आश्विन कार्तिक में गोपाल मंडल वांघ, रास नृत्य करते थे। गोपाल ही शायद इस नृत्य के प्रथम उद्भावक थे। इस पन्थ में प्राप्त रिपुदारण रास और वठठ गुण गीत जो संभवतः एक रास है—को, हम प्रकाशित कर चुके हैं। इसमें उल्लिखित मंडला बद्ध रास के साथ अभिनय एवं गान भी है। पृष्ठ ६७६ पर अपानक उत्सव में जोर जोर से तालियां यजाकर मद्यपों के रास-नृत्य का जिक्र है। वसंत में चर्चरी और हिंडोल राग कुछ अधिक जनप्रिय रहे होंगे (पृष्ठ ३९२)। श्री दर्पचर्द्दन रचित रत्नावली नाटिका से सिद्ध किया जा सकता है कि चर्चरी भी रास की तरह बहुत प्राचीन काल में केवल नृत्य विशेष ही नहीं रही थी; उसके साथ अभिनय और गान सातवीं शताब्दी में या इससे पूर्व ही सम्मिलित हो चुके थे। परवर्ती काल में चर्चरी के नवम्पर में कुछ विकास हुआ किन्तु रास के विचित्र स्वरूप परिणाम के सामने, वह नगण्य था। दशवीं शताब्दी तक रास का अधिकांश वही रूप था, जो हम 'श्रीमद्भागवत' में पाते हैं।

१४वीं और १५वीं के आरंभ तक तो रास प्रायः छोटे-छोटे बनते थे और वे गाये व सेले जाते थे, १५वीं के उत्तरार्द्ध से बड़े बड़े चरित्र काव्य रास के नाम से बनने लगे तथा वे अभिनय और नृत्य से विरत होकर केवल गेय रूप में ही रह गये। उसके बाद तो बड़े बड़े संस्कृत और प्राकृत के इन्होंने का और अनेक चरित्र प्रन्थों का 'रास' के रूप में अनुचाद हुआ। और उन रासों का परिमाण ८-१० हजार श्लोक तक जा पहुँचा। तभी दूसरा उल्लेखनीय परिवर्तन यह भी हुआ कि लोकगीतों की देशियों में इन रासों की ढाले गाई जाने लगी। इससे हजारों प्रथमित लोकगीतों के प्रारम्भिक अवश्य जो उन ढालों के प्रारंभ में दिये गये हैं, सुरक्षित रह गये और उन गीतों का संगीत भी जैन मुनियों के कठों में परम्परागत जीवित रह गया। तीसरी विशेषता यह आई कि १५वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही लोक-कथाओं को अधिकाधिक रासबद्ध किया गया और उन कथाओं को धार्मिक रूप देकर जनता को नीति और धर्म की बहुत बड़ी प्रेरणा दी गई।

२. भाषा—रास संस्कृत, अपब्रंश, राजरथानी, हिन्दी, गुजराती इन पांच भाषाओं में प्राप्त है। प्राचीन परम्परा को देखते हुये प्राकृत भाषा में रास रचे गये होंगे, पर वे अब प्राप्त नहीं हैं। अपब्रंश के भी रास अपेक्षाकृत बहुत कम मिले हैं, क्योंकि द्विगम्बर विद्वानों ने ही अपब्रंश भाषा में सबसे अधिक और बड़े बड़े चरित काव्य लिखे हैं, और उन्होंने चरितकाव्यों की संहा रास नहीं रखी।

३. विषय—प्रारम्भिक रास तो प्रधानतया चरित-काव्य ही है। जिनमें कुछ पेतिहासिक और पौराणिक हैं। तथा कुछ रास शिक्षा, उपदेश तथा धार्मिक विषयों से सम्बद्धित हैं। आगे चलकर चरित-कथाओं की प्रधानता तो रही ही, पर अनेक नये नये विषय सम्मिलित होते गये। जैन सैद्धान्तिक विषयों के सम्बन्ध में भी अनेक रास रचे गये।

४. उद्देश्य—रासों की रचना का उद्देश्य जैसा कि प्रारम्भ में लिखा जा चुका है—प्रारम्भ में तो जैन मन्दिरों में उत्सव आदि प्रसंगों में तालियों और डंडियों के साथ खेले व गाये जाने का रहा है। दूसरा उद्देश्य जनता में धार्मिक भावना को बढ़ाना रहा है। आगे चलकर सभी ज्ञातव्य बातों को इन रासों के द्वारा जन-साधारण स्वरूप से समझ सके, यह व्यापक उद्देश्य हो गया।

५. परिमाण—जब तक ये रास खेले जाते रहे, परिमाण में उनका छोटा होना स्वाभाविक था। पर जब पाठ्य और गेय मात्र रह गये तब परिमाण बढ़ता गया। प्रारम्भिक रासों में से सं० १२४१ में शालिभद्र सूरि रचित श्री भरतेश्वर वाटुवली रास १५वीं शताब्दी की पूर्वार्द्ध तक की प्राप्त रचनाओं में सबसे बड़ा है। वास्तव में वह करीब दो सौ वर्ष की रास परम्परा में एक अपवाद सा है। वास्तव में वह रासा-बद्ध या छंद में रचा गया है, अन्य रासों की तरह खेलने के लिये नहीं।

जैसा कि पहले लिखा गया है कि रासों का परिमाण बढ़ते २ आठ-दस हजार श्लोक तक

जा पहुँचा। यदि पृथ्वीराज रासो को सम्मिलित करते हैं तो उसका वृहद् संकरण ३५/४० इजार श्लोक परिमित है। छन्द वैविध्य और परिमाण की दृष्टि से रासो संज्ञक रचनाओं में यह सबसे छोटा महाकाव्य है।

सबसे अधिक रास-संज्ञक रचनाओं के निर्माता—वैसे तो श्रेतास्त्र दिगम्बर अनेक कवियों में एक-एक कवि ने १०१२० रास बनाये हैं और उनका परिमाण हजारों श्लोकों का है। पर सबसे अधिक रास बनाने वाले स्वरतरगच्छ के कवि जिनहर्ष हैं, जिन्होंने अकेले पचास के करीब रास बनाये। वि० सं० १७०४ से १७६२ तक की उनकी रचनायें मिलती हैं। प्रारम्भ में वे राजस्थान में पैदल विहार करते रहे अतः उस समय की रचनाओं की भाषा तो राजस्थानी है। पर जीवन के पिछले पचीस वर्ष उन्होंने गुजरात के पाटन में विवाहे, अतः पिछली रचनाओं की भाषा गुजराती होना स्वाभाविक है। इनके कई रास हजारों श्लोकों के बड़े बड़े हैं। उपमितिभव प्रपञ्चा रास ४३०० श्लोक का, धीसस्थानक (पुष्प विलास) रास ४६३५ श्लोकों का, कुमारपाल रास ४१०७ श्लोकों का और शत्रुघ्न य महात्म्य रास ८५६८ श्लोक परिमित है। महावल मठवासुन्दरी रास ३८७९ श्लोकों का है। इस प्रकार उनकी समस्त रचनायें करीब एक द्वादश श्लोकों की होंगी। इसी तरह कवि श्रीपदभद्रास, जिन समुद्रसूरि आदि कई बड़े-बड़े रासकार हुये हैं।

रासों का प्रकाशन—मुद्रण-युग से पूर्व इन रासों का प्रचार बहुत अधिक रहने से एक एक रास की १०१२०/१० यावद् सैकड़ों प्रतियाँ भी लिखी गई हैं और हजारों व्यक्तियों द्वारा कई रासों का तो नित्य पाठ होता रहा है।

उदाहरणार्थ—राजस्थान में स्वरतरगच्छ का अधिक प्रभाव रहा। उस गच्छ के महो० समय सुन्दर जी के शत्रुघ्न य रास, द्वाराघ्याय विनयप्रभ के गीतम् रास का राजस्थान में हजारों व्यक्ति नित्य पाठ करते रहे हैं। जिनराजसूरि रचित शालिभद्र रास भी बहुत ही लोकप्रिय रहा है। उसकी सैकड़ों प्रतियाँ मिलती हैं, जिनमें कई सचिव भी हैं। मेरे देखते देखते इये० मूर्तिपूजक समाज में दोपहर और रात के मुनिजनों के व्याख्यातों में रास गा गा कर व्याख्यान किया जाता था। श्रीपाल रास का तो अब तक अच्छा प्रचार है। तपागच्छ में तो द्वाराघ्याय विनय जी और यशोविजय जी रचित श्रीपाल रास सबसे अधिक लोकप्रिय रहा है।^१

रासों की इस लोकप्रियता और प्रचार के कारण ही मुद्रण-युग के प्रारम्भ में जब जैन प्रन्थ छपने लगे तो रासों का प्रकाशन भी प्रारम्भ हुआ और विविध स्थानों से अनेक व्यक्तियों और संस्थाओं द्वारा सैकड़ों रास छप चुके हैं, इनमें सबसे अधिक रासों का प्रकाशन बम्बई के भीमशी माणेक ने किया। भीमसी माणेक के प्रकाशन की दो विद्येपतायें उल्लेखनीय हैं। गुजरात से प्रकाशित करने पर

१—और भी करो९ २७/२५ रासों की दूर्द सचिव प्रतियाँ मिलती हैं, इससे उनकी लोकप्रियता सिद्ध है।

भी उन्होंने सारे भारत के लोग लाभ ढाये—इसलिये नागरी लिपि में ही प्रथा छपाये। दूसरी विशेषता उनके प्रकाशित प्रन्थ अन्य प्रकाशकों की अपेक्षा अधिक शुद्ध है। कागज, व्यापारी उत्तम और मूल्य भी उचित रखा गया है। जैन लिपि को टाईप में प्रधानता देना तो उनकी ओर भी विशेषता की बात थी।

स्थानकवासी समाज में भी रासों का खब्र प्रचार रहा है और आज भी व्याख्यानों में उनकी दालों को गाकर उनकी व्याख्या की जाती है। लोकाशाह से लेकर अब तक स्थानकवासी कवियों के रासों की सख्त्या सैकड़ों की है। कवि चेशराज की रामायण—रामयशोरसायन रास का तेरापंथी व स्थानकवासी समाज में अच्छा प्रचार रहा है। तेरापंथी साधु तो चौमासे के रात्रि के व्याख्यान भी इसी रामायण की ढाले ४ महीने नियमित रूप से गाते रहे हैं। यद्यपि इस रास में जो जैन मन्दिर व मूर्त्ति के उल्लेख थे, वे दोनों सम्प्रदायों की मान्यताओं से मेल न खाने के कारण निकाल दिये गये या परिवर्तित कर दिये गये हैं, जिनका पता आत्मन् द काव्य महोदधि मौर्चिक में प्रकाशित इस रामायण—रास के संस्करण से चलता है।

स्थानकवासी आचार्यों व मुनियों ने इधर कुछ रास हिन्दी भाषा में भी बनाये हैं। गुजराती में तो अनेक रास अभी तक बनाये जाते रहे हैं। मूर्तिपूजक समाज में खरतरगच्छीय मुनि कान्ति-सागर जी ने अंजनारास वि० सं० २००४ में बीकानेर में बनाया। मूर्तिपूजक सम्प्रदाय का शायद यही अंतिम 'रास' है। मूर्तिपूजक समाज में तपोगच्छ और खरतरगच्छ इन दो गच्छों का सबसे अधिक प्रभाव रहा है। कलउः सबसे अधिक रास इन दोनों गच्छों के कवियों के मिलते हैं। स्थानकवासी कवियों के रास भी बहुत से होंगे, पर प्रकाशित थोड़े से ही हुये हैं। तेरापन्थी सम्प्रदाय के तो और भी कम छपे हैं। दिगम्बर समाज के तो कुछेक कवियों ने ही रास बनाये हैं, जिनमें जिनदास, रायमल उल्लेखनीय हैं। इनमें से जिनदास तथा एक दो और कवियों के दिगम्बर रास गुजराती में छपे हैं। इस सम्प्रदाय में रासों का अधिक प्रचार नहीं रहा। कुल मिलाकर साठ-सत्तर रास रखे गये होंगे, पर छपे पाँच-चार ही हैं।

जैनेतर कवियों ने भी काफी रास बनाये हैं। पर पृथ्वीराज रासों और वीसलदेव रास को छोड़कर वाकी के सभी रास १५वीं शताब्दी के बाद के रचे हुये हैं। वीसलदेव रास का भी सबसे अधिक प्रचार इवे० जैन समाज में ही रहा। क्योंकि अब तक इसकी २५-३० प्रतियाँ मिली हैं वे सभी जैन भंडारों में व जैन मुनियों की लिखी हुई हैं और इस रास के छंद में कई इवे० दि० जैन कवियों ने अपने रास बनाये हैं। इस तरह इस रास को बचाये रखने का समर्त श्रेय जैन यतियों को है। अपनें भाषा के सन्देश रासक को भी जैन मुनियों ने ही जीवित रखा है और इसकी संस्कृत में दीका-टिपणी भी लिखी। पृथ्वीराज रासों के मैने चार संस्करण खोज निकाले हैं, उनमें लघुतम संस्करण की अब तक दो ही प्रतियाँ मिली हैं, जिनमें एक जैन मुनि की लिखी हुई है। पर मध्यम संस्करण को तो जैन यतियों ने ही सुरक्षित रखा। उसकी प्रायः समस्त प्रतियाँ उनकी लिखी हुई व

जैन ज्ञान भंडारों में मिलती है। बहुद संखण की भी कई प्रतियाँ जैन यति-महात्माओं की लिखी हुई हैं। इससे यह स्पष्ट है कि पृथ्वीराज रासो के संरक्षण और प्रचार में भी जैनों का विशेष योगदान है। राजस्थानी भाषा के रामरासो आदि की भी कई प्रतियाँ जैन यतियों की लिखी मिली हैं और जैतसी रास नामक ऐतिहासिक महत्वपूर्ण रास की केवल दो ही प्रतियाँ मेरे संप्रह में प्राप्त हैं और वे जैनों वर्गरणज्ञ के यति की लिखी हुई हैं। अतः इस रास को बचाने का भी त्रैय जैन यतियों को ही है। और भी अनेक जैनेतर रासों की प्रतियाँ जैन यतियों की लिखी हुई जैन भंडारों में सुरक्षित हैं, जिनमें ने कुछ का विवरण 'जैन गूर्जर कवियों' के भाग ३ के परिचय नं० १ में श्री देशार्द महोदय ने दिया है।

हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी साहित्य का प्रारंभिक युग, रासों का बन्ध धारा से प्रारंभ होया है। जैनेतर कवियों ने जो रास बनाये हैं उनमें से हिन्दी के रासों प्रथम तो बहुत ही कम छपे हैं। जबकि गुजरात के जैनेतर कवियों के अनेकों रास प्रकाशित हो चुके हैं और अब भी उनका प्रकाशन जारी है। राजस्थानी भाषा के जैनेतर रासों में अधिकांश अप्रकाशित हैं; वैसे गुजराती रासों की अपेक्षा जैनेतर राजस्थानी रास संख्या में हैं भी बहुत कम।

इस तरह रास-संक्षेप रचनाओं को प्राचीन व विशाल परम्परा सम्बन्धी सब ज्ञातव्य वालों पर यहां संक्षेप में प्रकाश ढाला गया है। आवश्यकता है इस विशाल साहित्य के सम्बन्ध में स्वतंत्र अनुसंधान किये जाने की। वारतव में रासों सम्बन्धी प्रबंध का लिखा जाना बहुत ही आवश्यक है। तभी इस विशाल साहित्य का जो विधिध इष्ट से महत्व है, वह प्रकाश में आ सकेगा।

भाषा विज्ञान का अध्ययन करने के लिये रास साहित्य का अध्ययन बहुत ही आवश्यक एवं महत्व का है। क्योंकि इस साहित्य का निर्माण बहुत व्यापक प्रदेश में हुआ और आठसौ वर्ष से भी अधिक समय की इनकी लम्बी परम्परा है। जैन रास तो प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण के प्राप्त हैं और राजस्थान, गुजरात में ही नहीं, पंजाब, सिंध तथा बंगाल, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में भी जैन कवियों द्वारा रास रचे जाते रहे हैं, इसलिये अनेक प्रांतों व स्थानों के शब्दों का बहुत अधिक उपयोग इन रासों में हुआ है। समय समय पर विभिन्न स्थानों में भाषा के मूल में क्या परिवर्तन आया? निकटवर्ती प्रांतों में भी शब्द स्वरों में क्या अन्तर रहा? इन सब यातों का अध्ययन रास साहित्य के नंभीर अध्ययन पर ही निर्भर है। उन्होंने इष्ट से भी रासों साहित्य का वैविध्य उल्लेखनीय है। लोकगीतों और कथाओं को बहुत बड़ी सुरक्षा जैन रास साहित्य ने की है। काव्य की इष्ट से भी कई रास बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इन रासों के द्वारा आठसौ वर्षों के भारतीय जीवन और संरक्षित का अध्ययन भी किया जाना अवशिष्ट है। अनेक रास ऐतिहासिक भी हैं। उनसे बहुत से महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आ रहे हैं। बहुत से रास ऐतिहासिक न होने पर भी उनकी अन्तिम प्रशस्तियाँ, अनेकों ऐतिहासिक तथ्यों से परिपूर्ण हैं। जैन इतिहास के साथ साथ भारतीय इतिहास की

(८)

भी बहुत सी मूल्यवान सामग्री ऐतिहासिक रासों और प्रशस्तियों में सुरक्षित है। बहुत से नगर, प्राम और वहाँ के शासकों आदि के उल्लेख सो इन रासों में ही सुरक्षित रह गये हैं।

साहित्यिक दृष्टि से तो इस रास-साहित्य का महत्व निर्धिवाद है। अनेक काल्य-कौलियों और रचना-प्रकारों पर रासों के अध्ययन से नवीन प्रकाश मिलेगा।

इस तरह विविध दृष्टियों से महस्यपूर्ण इस रास नामक रचना-प्रकार के विशाल साहित्य की जानकारी देने वाली यह जैन रासमाला सूची अद्यत्य ही काम की चीज़ है। भविष्य में इसे पूरी एवं शुद्ध रूप में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जाना अपेक्षित है।

— अग्रचन्द नाहटा ।



भूमिका

‘प्रज्ञाप्रकर्ष प्राग्वाटे, उपकेशो विपुलं धनम् । श्रीमालेषु उचमं रूपं, शेषेषु नियता गुणाः’ ॥२६५॥
 ‘आश्चंप्रतिज्ञानिर्वाही, द्वितीयं प्रकृतिः स्थिरा । तृतीयं ग्रौदवचनं, चतुः प्रज्ञाप्रकर्षवान् ॥२६८॥
 पंचमं च प्रपञ्चज्ञः पष्टं प्रबलमानसम् । सप्तमं प्रभुताकांची, प्राग्वाटे पुटसप्तकम्’ ॥२६९॥

—(विमलचरित्र)

‘रणि रात्तिं स्त्रा सदा, देवी अंबाविप्रमाण; पौखाङ् प्रगद्भुमल, मरणि न मृकह मांणः ॥’

—(लावण्यसमयरचित विमलप्रबंध)

जैन ज्ञातियों का प्राचीन इतिहास बहुत कुछ तिमिराच्छन्न है। उसको प्रकाश में लाने का नो भी प्रयत्न किया जाय आवश्यक, उपयोगी और सराहनीय है। प्रस्तुत प्राग्वाटज्ञाति का इतिहास इस दिशा में किये गये प्रयत्नों में बहुत ही उल्लेखनीय है। श्रीयुत लोद्धाजी ने इसके लिखने में बहुत अम किया है। कविता के रसप्रद लेत्र से उनका शुद्ध इतिहासदेश की ओर कैसे घुमाव हो गया यह आश्र्य का विषय है। जिन व्यक्तियों की ग्रेड्या देवे इस कार्य की ओर ऊके देव अवश्य ही साधुवाद के पात्र हैं।

श्वेताम्बर जैन ज्ञातियों में प्राग्वाट अर्थात् पौखाङ् बहुत ही गौरवशालिनी ज्ञाति है। इस ज्ञाति में ऐसे-ऐसे उज्ज्वल और तेजस्वी रस्न उत्पन्न हुए, जिनकी गौरवगरिमा को स्मरण करते ही नवस्फुर्ति और चैतन्य का संचार होता है। विविध लेत्रों में इस ज्ञाति के सदापुरुषों ने जो अद्भुत व्यक्तित्व-प्रकाशित किया वह जैनज्ञातियों के इतिहास में स्वर्णाचरों से अंकित करने योग्य हैं। राजनैतिक और धार्मिक लेत्रों एवं कला-उन्नयन के अतिरिक्त साहित्य-लेत्र में भी उनकी ग्रतिभा जाडवलयमान है। मंत्रीश्वर विमल के वंश ने गुजरात के नवनिर्माण में जो अद्भुत कार्य किया वह अनुपम है ही, पर वस्तुपाल ने तो प्राग्वाटवंश के गौरव को इतना समृज्ज्वल बना दिया कि जैन इतिहास में ही नहीं, भारतीय इतिहास में उनके जैसा ग्रखर व्यक्तित्व खोजने पर भी नजर नहीं आता। विमल और वस्तुपाल इन दोनों की अमर कीर्ति ‘विमलवसहि’ और ‘लूणवसहि’ नामक जिनालयों से विश्वविश्रुत हो चुकी है। कोई भी कला-प्रेमी जय वहाँ पहुँचता है तो उसके शरीर में जो प्रफुल्लता व्याप्त होती है उससे मानों

सेरों सून बढ़ जाता है। उसके मुख से वरबस ये शब्द निकल पड़ते हैं कि—हस अनुपम कलाकृति के निर्माता घन्य हैं, कृतपुराय हैं, उनका जीवन सफल है, जिन्होंने अपनी धार्मिक भावना का मूर्च्छय इस अवृद्धाचल पर्वत पर इस सुन्दर रूप में प्रस्थापित किया। बड़े २ सग्राद्, राजा, महाराजा जो कार्य नहीं कर पाये, वह इनकी सूर्य-नृस ने कर दिखाया। अपने ऐश और आराम के लिये तो सभी ने अपनी शक्ति के अनुसार कला को प्रोत्साहन दिया; पर सार्वजनिक भक्ति के प्रेरणास्थल इन जिनालयों का निर्माण करके उन्होंने शताब्दियों तक जनता की भक्ति-भावना के अभिवृद्धि का यह साधन उपस्थित कर दिया। भारतीय शिल्पकला के ये जिनालय उज्ज्वल प्रतीक हैं। इनसे ग्राम्याट्वंश का ही नहीं, समस्त भारत का सुख उज्ज्वल हुआ है।

इन अनुपम शिल्पकेन्द्रों की प्रेरणा ने परवर्ती शिल्प में एक आदर्श उपस्थित कर दिया। इसका अनुकरण अनेक स्थानों में हुआ और उसके द्वारा भारतीय शिल्प के समृद्ध्यान में बड़ा सुयोग मिल सका।

पंत्रीश्वर वस्तुपाल तेजपाल की प्रतिभा बहुमुखी थी। सौभाग्यवश उनके समकालीन और थोड़े बर्बी चाद में ही लिखे गये ग्रंथों में उनके उस महान् व्यक्तित्व का परिचय सुरक्षित है। विमल के सम्बन्ध में समकालीन तो नहीं; पर सोलहवीं शताब्दी में 'विमलचरित्र' और 'विमलप्रवन्ध' और पीछे 'विमलराम' 'विमलशालोको' आदि रचनाओं का निर्माण हुआ। वस्तुपाल की साहित्यिक क्षेत्र में, राजनीतिक और धार्मिक क्षेत्रों में जो देन हैं उसके सम्बन्ध में अच्छी सामग्री प्रकाश में आ चुकी है। वस्तुपाल के स्वयं निर्मित 'नरनारायणानन्दकाव्य' और उनके आश्रित कवियों और जैनाचार्यों के ग्रंथ भी प्रकाश में आ चुके हैं। हिन्दी में अभी उनके सम्बन्ध में प्राप्त सब सामग्री के आधार से लिखा हुआ विस्तृत परिचय प्रकाशित नहीं हुआ यह खेद का विषय है। लोढ़ाजी ने प्रस्तुत इतिहास में संक्षिप्त परिचय दिया ही है। मैं उनसे अनुरोध करुंगा कि वे वस्तुपाल तेजपाल सम्बन्धी स्वतंत्र ग्रंथ तैयार कर शीघ्र ही प्रकाश में लावें। सामग्री बहुत है। उन सब का अध्ययन करके साररूप से वस्तुपाल के व्यक्तित्व को भलीभांति प्रकाश में लाने के लिये हिन्दी में यह ग्रंथ प्रकाशित होने की निरान्त आवश्यकता है।

ग्राम्याट्वाति के अन्य कवियों में कविचक्रवर्ची श्रीपाल, उनका पौत्र विजयपाल, 'दमयन्तीचम्पू' के रचयिता चण्डपाल, समयसुन्दर और ऋषभदास बहुत ही उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार उल्लेखनीय जैन मन्दिरों के निर्माता धरणाशाह, सोमजी शिवाका कार्य भी बहुत ही प्रशस्त हैं। इस वंश के अनेक व्यक्तियों ने जैनधर्म, साहित्य-कला की विद्याव सेवायें कीं, जिनका उल्लेख प्रस्तुत इतिहास में बड़े श्रम के साथ संश्रद्ध किया गया है। अतः मुझे इस वंश की गरिमा के सम्बन्ध में अधिक कहने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

मैं जैनधर्म और ज्ञातिवाद, जैनागमों में प्राचीन क्लूलों एवं गोत्रों के उल्लेख और वर्तमान जैन श्वेताम्बर ज्ञातियों की, श्वेताम्बरवंशों की स्थापना एवं समयादि के विषयों में कुछ प्रकाश ढालना आवश्यक समझता हूँ। इसलिये अपने मूल विषय पर आगे की पंक्तियों में कुछ सामग्री उपस्थित करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। आशा है उससे प्रस्तुत इतिहास की पृष्ठभूमि के समझने में बड़ी सुगमता उपस्थित हो जावेगी। भूमिका अधिक लम्बी नहीं हो, इसलिये संक्षेप में ही अपने विचार प्रस्तुत कर रहा हूँ।

जैन धर्म के प्रचारक इस अवसर्पिणी में चौबीस तीर्थकूर हो गये हैं। उनमें से तेर्वेस महापुरुषों की वाणियाँ हमें अब प्राप्त नहीं हैं। इसलिये उनके समय में ज्ञातिवाद की मान्यता किस रूप में थी और ज्ञातियों एवं गोत्रों

जैन धर्म और शाति वाद का विकास कवकव और किन-किन कारणों से हुआ, इसके सम्बन्ध में जानने के लिए तत्कालीन कोई साधन नहीं है। परवर्ती जैन ग्रन्थों में इस विषय की जो अनुश्रुतियाँ मिलती हैं, उसी पर संतोष करना पड़ता है। पर सौभाग्यवश अंतिम तीर्थकर मगवान् महावीर की वाणी जैनागमों में संकलित की गई वह हमें आज उपलब्ध है। यद्यपि वह मूलरूप से पूर्णक्षेत्र प्राप्त नहीं है, फिर भी जो कुछ अंश संकलित किया गया है उसमें हमें जैनधर्म और मगवान् महावीर के ज्ञाति और वर्ण के सम्बन्ध में कवा विचार ये और उस जमाने में कुलों और गोत्रों का कितना महत्व था, कौन २ से कुल एवं गोत्र प्रसिद्ध थे इन सर्व वारों की जानकारी मिल जाती है। इसलिये सर्व प्रथम इस सम्बन्ध में जो सूचनायें हमें जैनागमों से एवं अन्य प्राचीन जैन ग्रन्थों से मिलती हैं उन्हीं को यहाँ उपस्थित किया जा रहा है।

जैनागमों के अनुशीलन से यह अत्यन्त स्पष्ट है कि जैन संस्कृति में व्यक्ति का भृत्य उसके जन्मजात कुल, वंश, गोत्र आदि नाम वारों से नहीं कहता जाकर उसके शीलादि गुणों से कहता गया है। ब्राह्मणहाति का होने पर भी जो क्रोधादि दोषों से युक्त है वह ज्ञाति और विद्या दोनों से दीन यावदपापचेत्र भाना गया है। 'उत्तराध्ययनसूत्र' के बारहवें अध्ययन की १४ वीं गाथा इसको अत्यन्त स्पष्ट करती है:—

'कोहो व माणो य वहो य जेसि, मोसं अदत्तं च परिगहं च ।

ते भावणा जाइविज्ञा विदृष्णा, ताइं च तु खेचाइं सुपावयाइ' ॥१४॥

'दूत्रकृतांगसूत्र' में कहा गया है कि ज्ञाति, कुल मनुष्य की आत्मा की रक्षा नहीं कर सकते, सत् वान् और सदाचरण ही रक्षा करता है। अतः ज्ञाति और कुल का अभिमान व्यर्थ है।

'न तस्स लाई व कुलं व ताणं, णण्णत्य विज्ञाचरणं सुचिण्णं

णिकखम्म से सेवइगारिकम्म, ण से पारए होइ विमोययाये ॥

'उत्तराध्ययनसूत्र' के पञ्चीसवें अध्ययन में बहुत ही स्पष्ट रूप से कहा गया है कि ब्राह्मण आदि नाम किसी वास्त्र क्रिया पर आश्रित नहीं, अभ्यंतरित गुणों पर आश्रित है। ब्राह्मण, चत्रिय, वैश्य और शूद्र ये सभी अपने कर्तव्य कर्मों के द्वारा अभिहित होते हैं।

'न वि मुण्डिण्ण समणो, न ओंकारेण वम्मणो । न मुणी रण्णवासेण, कुसचीरेण न तावसो ॥३१॥

समयाएं समणो होइ, बम्मचेरेण वम्मणो । नाणेण य मुणी होइ, तवेण होइ तावसो ॥३२॥

कम्मणा वम्मणो होइ, कम्मणा होइ खत्तिओ । वईसो कम्मणा होइ, सुदो हवइ कम्मणा ॥३३॥

? महाभारत में 'उत्तराध्ययन' के समकक्ष ही विचार मिलते हैं। शाति वर्व, वनपर्व, अनुशासनपर्व आदि में ब्राह्मण किन २ जातों से होता है और किन कार्यों को करने से ब्राह्मण शूद्र हो जाता है और शूद्र ब्राह्मण हो जाता है उसकी अच्छी व्याख्या मिलती है। यहाँ उसके दो चार श्लोक ही दिये जाते हैं:—

सत्यं दानं ज्ञामा शीलमानृतं तपो धूणा । हृष्णने यत्र राजेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥

शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः । सानुकोषश्च भुतेषु तद्विजानिषु लक्षणम् ॥

न कुर्येन न प्रहृष्येण भानितोऽमानितश्च यः । सर्वभूतेष्वभयदस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

जीवितं यस्य घर्मर्थं घर्मोहर्यर्थमेव च । अहोरात्रात्पुण्यार्थं तं देवा ब्राह्मण विदुः ॥

विरामिषमनारंभे निर्वेषकारमस्तुतिम् । निर्मुक्तं वंघनैः सैवैस्तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥

ऐमिस्तु कर्मभिर्देवि सुमेराचरितैस्थिता । शूद्रो ब्राह्मणता याति वैश्य ब्राह्मणता वज्रैः ॥

ऐते कर्मफले देवी न्यूनज्ञाति कुलोद्धयः । शूद्रोऽप्यागमसम्बोद्धो द्विजो भवति संस्कृतः ॥

जैनधर्म में ज्ञाति विशेष का कोई महत्त्व नहीं, उसके कार्य एवं तपविशेष का 'महत्त्व है। इसको स्पष्ट करते हुये 'उत्तराध्ययनसूत्र' के १२ वें अध्ययन की ३७ थीं गाया में कहा गया है :—

'सक्खं सु दीसह तत्रो विसेसो न दीसह जाइविसेस कोई।'

सोवागपुत्रं हरिएससाहुँ, जस्तेरिसा इडि महाणुभागा ॥५७॥

उपर्युक्त उद्धरणों से ज्ञातिवादसम्बन्धी जैन विचारधारा का मतीमांति परिचय मिल जाता है।

जैनदर्शन का 'कर्मवाद-सिद्धान्त' बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। ईश्वर-कर्तृत्व का विरोधी होने से जैनदर्शन प्राणीमात्र में रही हुई विभिन्नता का कारण उनके किये हुये शुभाशुभ कर्मों को ही मानता है। कर्म-सिद्धान्त के सम्बन्ध में जितना विशाल जैन साहित्य है, सासार भर के किसी भी दार्शनिक साहित्य में वीरा नहीं मिलेगा।

जैनदर्शन में कर्मों का वर्णकरण आठ नामों से किया गया है। कर्म तो असंख्य हैं और उनके फल भी अनन्त हैं। पर साधारण मनुष्य इतनी सूक्ष्मता में जा नहीं सकता, अतः कर्मसिद्धान्त को बुद्धिम्य बनाने के लिये उसके स्थूल आठ मेद कर दिये गये हैं, जिनमें गोत्रकर्म सातवां है। इसके दो मेद उच्च और नीच माने गये हैं और उनमें से उन दोनों के आवान्तर आठ-आठ मेद हैं। यहां गोत्र की उच्चता नीचता का सम्बन्ध ज्ञाति, कुल, बल, तप, ऐश्वर्य, श्रुत, लाभ और रूप इन आठों से सम्बन्धित कहा गया है। अर्थात्—इन आठों वातों में जो उत्तम है वह उच्च गोत्र का और अधम है वह नीच गोत्र का होता है। पर गोत्र के उच्चारण का अभिमान करने वाला अभिमान करने का फल भविष्य में नीच गोत्र पाता बतलाया गया है। इसलिये ज्ञाति, कुल और गोत्र का मद जैनधर्म में सर्वशा त्याज्य बतलाया गया है। कहा गया है ऐसी कोई ज्ञाति, योनि और कुल नहीं जिसमें इस जीव ने जन्म धारणा नहीं किया हो। उच्च और नीच गोत्र में प्रत्येक जीव अनेक बार जन्मा है। इसलिये इनमें आशक्ति और अभिमान करना अयोग्य है एवं उच्च और नीच गोत्र की प्राप्ति से रुप्त और तुष्ट भी नहीं होना चाहिए।

इतिहाससम्बन्धी जैनविचारधारा की कुछ मालकी देने के पश्चात अब जैनागमों में ज्ञाति, कुल और गोत्रों के सम्बन्ध में जो कुछ उच्छेष्य मेरे अवलोकन में आये हैं, उन्हें वहां दे दिये जा रहे हैं। साथ ही इन शब्दों के सम्बन्ध में भी स्पष्टीकरण कर दिया जा रहा है।

किसी भी व्यक्ति की पहिचान उसके ज्ञाति, कुल, गोत्र एवं नाम के द्वारा की जाती है। 'ज्ञाति' शब्द का उद्गम 'जन्म' से है और उसका सम्बन्ध मातृ-पृथ्वी से माना गया है। जन्म से सम्बन्धित होने के कारण यह शब्द

२. महाभासत में भी कहा है :—

शुद्रोऽपि शीलसम्पत्रो गुणशान् आप्नायो भवेत् । गायणोऽपि कियाहीनः शुद्रादध्यवमोऽभवत् ॥

शुद्रो वालएतमेति नालएर्नेति शूद्रतम् । ज्ञत्रियाज्ञातनेयं ही विद्यद्वैश्यान्त्यजस्तथैव च ॥

इस लघुन्त में वालएर्नेतों के अन्य मंत्रध्यों को जागने के लिये 'भारतवर्ष में ज्ञाति-मेद' नामक मंत्र के १० १५, २५, ३५, ३८, ५३ वा आदि देखते जाहिए। यह व्रथ बहुत ही महत्त्वपूर्ण जानकारी देता है। आचार्य हितिगोहनसेन ने इसको लिखा है। 'अभिनव भारतीय व्रथमाला' नं० १७१८ ॥ हरितिन रोड, कलकत्ता से पाप्य है।

'आचारार्गतृत्र' के द्वितीय अध्ययन के ततीय उद्देशक का तृत्र १, २, ३.

३. बननः ज्ञातिः जायन्ते जन्तवो अस्याभिति ज्ञातिः (अभिमान-॥जैनद्रकोष)

४. ज्ञातिर्गणयान् मातृकृत्वं (स्थानागतृत्रवृत्ति) । मातृत्समुत्ता ज्ञातिरिति (सूत्रहताग)

अत्यन्त प्राचीन ज्ञात होता है। ज्ञाति के बाद कुल और उसके बाद गोत्र और तदनन्तर नाम का स्थान है। ज्ञाति समृद्धयज्ञादी है। कुल, गोत्र एवं नाम उसके क्रमशः छोटे-छोटे भेद-प्रभेद हैं। ज्ञाति का पञ्चात्वतीं शब्द 'कुल' है और उसको पितृ-पत्नै से सम्बन्धित बतलाया गया है। मूलतः मानव सभी एक हैं, इसलिये समृद्धचय की दृष्टि से उसे भनुष्यज्ञाति कहा जाता है। कुल की उत्पत्ति जैनागमों के अनुसार सर्वप्रथम ग्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से हुई। 'वसुदेव-हिन्दी' नामक प्राचीन जैन कथाग्रंथ में भगवान् ऋषभदेव का चरित्र वर्णित करते हुए कहा गया है कि जब ऋषभकुमार एक वर्ष के हुये तो इन्द्र वामन का रूप धारण कर ईचुओं का भार लेकर नाभि कुलकर के पास आये। ऋषभकुमार ने ईकुदराह को लेने के लिये अपना दाहिना हाथ लम्बा किया। उससे इन्द्र ने उनकी इच्छा ईचु के खाने की जान कर उनके वंश का नाम 'ईच्छाकु' रखा। फिर ऋषभदेव ने राज्यप्राप्ति के समये अपने आत्मरक्षकों का कुल 'उग्र', भोग-प्रेमी व्यक्तियों का कुल 'भोग', समवयस्क मित्रों का कुल 'राजन्य' और आज्ञाकारी सेवकों का कुल 'नाभ' इस प्रकार चार कुलों की स्थापना की।

जैनागम 'स्थानाङ्ग' के छह स्थान में छः प्रकार के कुलों को आर्य बतलाया है। उग्र, भोग, राजन्य, ईच्छाकु, ज्ञात और कौरव यथा:—

'छविहा कुलारिया भणुस्सा पञ्चता तंजहा=उग्रा, भोगा, राज्ञा, ईच्छागा, नाया, कोरवा' (सूत्र ३५) इसी सूत्र में छःही प्रकार की ज्ञाति आर्य बतलायी गयी है। अम्बष्ठ, कलिन्द, विदेह, विदेहगा, हरिता, चंचुणा ये छः हम्य ज्ञातियाँ हैं:—

'छविहा जाह अरिया भणुस्सा पञ्चता तंजहा=अम्बष्ठा, कलिन्दा, विदेहा, वेदिहगाहया, हरिया, चंचुणा भेदच्छिया इब्म जाहओ' (सूत्र ३४)

'वसुदेवहिन्दी' में समृद्धविजय और उग्रसेन के पूर्वजों की परम्परा बतलाते हुये 'हरिवंश' की उत्पत्ति का प्रसंग संचेप से दिया है। उसके अनुसार हरिवंशकेत्र से युगलिक हरि और हरणी को उनके शत्रु वीरक नामक देव ने चम्पानगरी के ईच्छाकुकुलीन राजा चन्द्रकीर्ति के पुत्रहीन अवस्था में मरजाने पर उनके उचराधिकारी रूप में स्थापित किया। उस हरि राजा की संतान 'हरिवंशी' कहलायी।

'कल्पसूत्र' में वीरीस तीर्थंकरों के कुलों का उल्लेख करते हुये इक्कीस तीर्थंकर ईच्छाकुकुल में और काश्यपमोत्र में उत्पन्न हुये। दो तीर्थंकर हरिवंशकुल में और गौतमगोत्र में उत्पन्न हुये। तदनन्तर भगवान् महावीर स्वामी नाय (ज्ञात) कुल में उत्पन्न हुये। उनका गोत्र अवतरण के समय उनके पिता ऋषभमदत्त ब्राह्मण का कोडालस-गोत्र और उनकी माता देवानन्दा का जालंधरगोत्र बतलाया है। तदनन्तर गर्मापहरण के प्रसंग में इन्द्र ने कहा है कि अरिहंत, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव उग्र, भोग, राजन्य, ईच्छाकु, चत्रिय, हरिवंश इन कुलों में हुआ करते हैं; क्योंकि ये विशुद्ध ज्ञाति, कुल, वंश माने जाये हैं। वे अंतकुल, पंतकुल, तुच्छकुल, दरिद्रकुल, भिचुकुल,

प. वैतृके पक्षे नि० युलपेयं माहया जाइं (उत्तराधिवेद) गुणपत् पितृकर्त्ते (स्थानागवृत्ति)

६. महाभारत में लिखा है:—

एकत्रयैसिदं पूर्वं विश्वमासौद्युषिष्ठिः । कर्मकियाविशेषेण चातुरर्थं प्रतिष्ठितम् ॥
सदैव योनिजा मर्त्या सर्वे सूत्रपूर्विष्ठः । एकंद्वयेन्द्रियार्थास्थ तत्साद्शीलगुणो द्विजः ॥

षष्ठ्यकुल और ब्राह्मणकुलों में उत्पन्न नहीं होते। फिर इन्द्र के आदेश से हरिणगमेशी देव मर्मरूप महावीर को काश्यपगोत्रीय सिद्धार्थ और सिद्धार्थ की पत्नी वाशिष्ठ गोत्र की त्रिशता की कुची में संक्रमण करता है।

यहां तीर्थकुरों के कुल के नामों के साथ उनके गोत्र का भी उल्लेख मिलता है। इससे उस समय 'गोत्र' भी अहुत महस्व का स्थान पा गया था स्पष्ट है। ग्रभावशाली व्यक्तिविशेष की संतान का गोत्र उसके पूर्वज के नाम से प्रसिद्ध होता है। जैसे वशिष्ठ ऋषि की संतान को वाशिष्ठ गोत्र की भेंडा मिली। 'स्थानाङ्ग' द्वारा के अनुसार मूल गोत्र सात थे। काश्यप, गौतम, वत्स, कुत्स, कौशिक, मण्डप और वाशिष्ठ। फिर क्रमशः एक-एक गोत्र में अनेक विशिष्ट व्यक्ति हुये; जिनकी संवत्ति का गोत्र उनके नाम से प्रसिद्ध हुआ। 'स्थानाङ्ग' में उपर्युक्त सात गोत्रों में से ग्रत्येक के सात २ भेद वर्तलाये गये हैं। मूलपाठ इस प्रकार है:—

'सत् मूल गोत्ता पञ्चता तंजहाः—कासवा, गोयमा, वत्था, कोत्था, कोसिया, मंडवां, वसिङ्गा।'

'जे कासवा ते सत् विहा पञ्चता तंजहाः—ते कासवा, ते सण्डेला, ते गोद्धा, ते वाला, ते मुंबतिणो, ते पव्यपेच्छतिणो, ते वरिसकणहा।

'जे गोयमा ते सत् विहा पञ्चता तंजहाः—ते गोयमा, ते गम्मा, ते भारदा, ते अङ्गिरसा, ते सक्तरामा, ते मधुखरामा, ते उदगत्तामा।

'जे वत्था ते सत् विहा पञ्चता तंजहाः—ते वत्था, ते अग्नेया, ते मित्तिया, ते सामिलिणो, ते सेलयया, ते अद्विसेणा, ते वीयकणहा।

'जे कुत्था ते सत् विहा पञ्चता तंजहाः—ते कुत्था, ते मुगलायणा, ते पिंगलायणा, ते कीडीणा, ते मण्डलिणो, ते हारिणा, ते सोमया।

'जे कोसिया ते सत् विहा पञ्चता तंजहाः—ते कोसिया, ते कचायणा, ते सालंकायणा, ते गोलीकायणा, ते परिककायणा, अगिचा, ते लोहिचा।

'जे मण्डवा ते सत् विहा पञ्चता तंजहाः—ते मण्डवा, ते अरिङ्गा, ते समुच्चा, ते तेला, ते एलावचा, ते कंडिला, ते क्वायणा।

'जे वासिङ्गा ते सत् विहा पञ्चता तंजहाः—ते वासिङ्गा, ते उंजायणा, ते जारुकणहा, ते वग्धावचा, ते कोडिन्ना, ते सप्तिण, ते पारासरा अर्थात् मूल गोत्र सात हैं। काश्यप, गौतम, वत्स, कुत्स, कौशिक, मण्डप और वाशिष्ठ।

काश्यप के सात भेद हैं:—काश्यप, साहिंदृश्य, गोल, वाल, मुञ्ज, पर्वत, वरिसकण।

गौतम गोत्र के सात भेद हैं:—गौतम, गर्ग, भारद्वाज, अंगीरस, सरकराम, माष्कराम, उदचाम।

वत्स गोत्र के सात भेद हैं:—वत्स, अंगीय, मित्तिय, सामिलिण, सेलवय, अस्थिसेन, वायुकृष्ण।

कुत्स के सात भेद हैं:—कुत्स, मोदगलायण, पिंगतण, कोडिन्न, मण्डलिक, हारित, सोमक।

कौशिक के सात भेद हैं:—कौशिक, कात्यायन, सालंकायन, गोलिकायन, परिकंकायन, अगत्या, लोहित्य।

मण्डप गोत्र के सात भेद हैं:—मण्डप, आरिष्ठ, संमृत, भेला, ऐलापत्य, कंतेल, खामण।

वाशिष्ठ गोत्र के सात भेद हैं:—वाशिष्ठ, उंजायन, जारुकृष्ण, व्याघ्रापत्या, कोडिन्य, सचि, पारासर।

७. गोत्राणि तथा विश्वी कैफ पुरुष प्रभवा मनुष्यसंताना उत्तर गोत्रा पेत्त्वा भूलभूतानि आदि भूतानि गोत्राणि भूलगोत्राणि।

गौतमस्यापत्यानि गौतमाः वरस्यापत्यानि वत्साः वशिष्ठस्यापत्यानि वाशिष्ठाः (स्थानाङ्गटीका)

गोत्रों का महस्व उस काल में अधिक था यह जैनघोत्रों के अन्य उल्लेखों से भी अत्यन्त स्पष्ट है। 'आवश्यक-निर्युक्ति' की ३८१ गाथा में लिखा है कि चौथीस तीव्रेकरों में से मूनीसुव्रत और अरिष्टनेमि गौतमगोत्र के थे और अन्य सब काश्यपगोत्र के थे। बारह चक्रवर्ती सभी काश्यपगोत्र के थे। वासुदेव और बलदेवों में आठगौतमगोत्र के थे, केवल लक्ष्मण और राम काश्यपगोत्र के थे।

वीरनिर्वाण के ६८० वर्ष में जैनागम लिपिबद्ध हुये। उस समय तक के युगप्रबान आचार्यों एवं स्थविरों के नामों के साथ भी गोत्रों का उल्लेख किया जाना तत्कालीन गोत्रों के महस्व को और भी स्पष्ट करता है। छह शताब्दी तक तो इन प्राचीन गोत्रों का ही व्यवहार होता रहा यह 'कल्पसूत्र' की स्थविरावली से मरीमांति सिद्ध हो जाता है। स्थविरावली में पाये जाने वाले गोत्रों के नाम और उन गोत्रों में होने वाले आचार्यों का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

गोत्रों के नाम	आचार्यों के नाम	गोत्रों के नाम	आचार्यों के नाम
१ गौतम	इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति अकंप, स्थूलीभद्र, आर्यदिन,	६ तुंगियायन	यशोभद्र.
	वज्र, फालगुमित्र, नाग, कालाक, सम्पिल, भद्र, बृद्ध, संगपालि आदि	१० माद्र	संभूतिविजय, आर्यशांति, विष्णा, देशीगणि
२ भारद्वाज	व्यक्त और भद्रयश	११ प्राचीन	भद्रवाहु.
३ अग्निवैश्यायन	सौधर्म	१२ ऐलापत्य	आर्य महागिरि.
४ वाशिष्ठ	मणिष्ठ, आर्य सुहस्ति, घनगिरि, जेहिल, गोदास.	१३ व्याघ्रापत्य	सुस्थित, सुप्रतिबद्ध.
५ काश्यप	मौर्यपुत्र, जन्मू, सोमदत्त, रोहण, ऋषिगुप्त, विद्याधर गोपाल, आर्य- भद्र, आर्यनदत्र, रव, हस्ति, सिंह, धर्म, देवधर्म, नन्दिनीपिता,	१४ कुत्स	शिवभूति.
६ हरितायन	अचलभ्राता, कौडिन्य, मेतार्य और ग्रभाष.	१५ कौशिक	आर्य इन्द्रदिन, सिंहगिरि और रोहणपु
७ कात्यायन	प्रभव.	१६ कोडाल	कामधि
८ वत्स	सत्यंभव, आर्यथ.	१७ उत्कौशिक	वज्रसेन
		१८ सुवत या श्रावक आर्यधर्म	श्रीगुप्त
		१९ हरित	सार्य सामज्जम् (नंदिसूत)
		२० स्वाति	आर्य जीतधर (नंदि-स्थविरावली गा० २६).
		२१ सांडिन्य	

यहां यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि छह शताब्दी के प्रारम्भ तक वर्तमान जैन ज्ञातियों और उनके गोत्रों में से किसी एक का भी नाम नहीं है। यदि उस समय तक वर्तमान जैनज्ञातियों की स्थापना स्वतंत्र वर्तमान जैन ज्ञातियों से हो चुकी होती तो उनमें से किसी भी ज्ञाति के गोत्रवाला तो जैन मुनिव्रत अवश्य स्वीकार करता और उस प्रसंग से उपर्युक्त स्थविरावली में उसके नाम के साथ वर्तमान जैन ज्ञातियों में से किसी का उल्लेख तो अवश्य रहता। इसलिये वर्तमान जैन ज्ञातियों की स्थापना छह शताब्दी

के बाद ही हुई है यह सुनिश्चित है। जैसा की आगे अन्य प्रमाण व प्रिचारों को उपस्थित करते हुये मैं वतलाऊंगा कि वर्तमान श्वेताम्बर जैन ज्ञातियों में श्रीमाल, पौरवाड़, ओसवाल ये तीन प्रधान हैं। इनके वंशस्थापना का समय आठवीं शताब्दी का होना चाहिए।

मेरे उपर्युक्त मन्तब्य की कतिपय आधारभूत याते हैं प्रकार हैं:—

मुनिजिनविजयजीसंपादित एवं सिंधी-जैनग्रंथमाला से प्रकाशित 'जैनपुस्तक-प्रशस्तिसंग्रह' की नं० ३५ की संख्या १३६४ की लिखित 'कल्पद्रुत-कालिकाचार्यकथा' की प्रशस्ति में निम्नोक्त श्लोक आता है:—

'श्रीमालवंशोऽस्ति' विशालकीर्ति: श्री शांतिनृरि प्रतिवोधितडीडकार्घ्यः ।

श्री विक्रमादेवनं भर्महर्षिं वत्सरं श्री आदिचैत्यकारापित नवहरे च (!) ॥१॥

अर्थात् श्रीमालवंश के धावक छीड़ाने जिसने कि शांतिनृस्त्रिद्वारा जैनधर्म का प्रतिवोध पाया था, संख्या ७०४ में नवहर में आदिनाथचैत्य बनाया।

'जैन याहृत्य-संशोधक' एवं 'जैनाचार्य आत्माराम—शताब्दी-स्मारकग्रंथ' में श्रीमालज्ञाति की एक प्राचीन वृषावली प्रकाशित हुई है। उपरोक्त वंशावलियों में यह सब से प्राचीन है। इसके प्रारम्भ में ही लिखा है:—

'अथ भारद्वाजगोत्रे संख्या ७६५ वर्षे प्रतिवोधित श्रीश्रीमालज्ञातीय श्री शांतिनाथ गोचिकः श्रीभिन्नमाल-नगरं भारद्वायगोत्रे श्रेष्ठिं तोड़ा तेनो वास पूर्वस्ति पोली, भट्टनै पाढ़ी कोड़ी पांचनो व्यवहारियो तेहनी गोत्रजा अव्याइ' ।

उपर्युक्त दोनों प्रमाणों से आठवीं शताब्दी में जिन श्रावकों को जैनधर्म में प्रतिवोधित किया गया था, उनका उल्लेख है। जहाँ तक जैनसाहित्य का मैने अनुशीलन किया है भिन्नमाल में 'जैनाचार्यों' के पधारने एवं जैनधर्म-प्रचार करने का सबसे प्रथम प्रामाणिक उल्लेख 'कुवलयमाला' की प्रशस्ति में मिलता है।

'तस्म वि सिस्तो पयद्वी महाकई देवउत्तरणामो त्ति ।'

..... सिवचन्द्र गणी य मयहरा त्ति (?) ॥२॥

अर्थात् महाकवि देवगुप्त के शिष्य शिवचन्द्रगणि जिनवन्दन के हेतु श्रीमालनगर में आकर स्थित हुये। प्रशस्ति की पूर्व गाथाओं के अनुसार यह पंजाब की ओर से इधर पधारे होंगे। उनके शिष्य यज्ञदत्तगणि हुये, जिनके लान्धिसम्पन्न अनेक शिष्य हुये। जिन्होंने जैनमन्दिरों से गूर्जरदेश को (श्रीमालप्रदेश भी उस समय गुजरात की संज्ञा प्राप्त था) सुशोभित किया। 'कुवलयमाला' की रचना संख्या २३५ में जालोर में हुई है। उसके अनुसार शिवचन्द्रगणि का समय संख्या ७०० के लगभग का पड़ता है। इससे पूर्व श्रीमालनगर को जैनों की दृष्टि से प्रभास, प्रयाग और केदारकेत्र की भाँति कुतीर्थ वतलाया गया है। 'निपिद्रचूर्णी' में इसका स्पष्ट उल्लेख है। इसलिये इससे पूर्व यहाँ वैदिक धर्मग्रालों का श्री प्रावल्य होना चाहिए। यदि जैनधर्म का प्रचार भी उस समय वहाँ होता तो श्रीमालनगर को कुतीर्थ वतलाना वहाँ संभव नहीं था।

वर्तमान श्वेताम्बर जैन ज्ञातियों में से श्रीमाल, पौरवाड़ और ओसवाल तीनों का उत्पत्तिस्थान राजस्थान है और उसमें भी श्रीमालनगर इन तीनों ज्ञातियों की उत्पत्ति का केन्द्रस्थान है। सब से पहिले श्रीमालनगर में जिन्हें

जैनधर्म का प्रतिबोध दिया गया वे आवक दूसरे स्थान वाले आवकों द्वारा 'श्रीमालज्ञातिवाले' के रूप में प्रसिद्ध हुये। नौर्वी शताब्दी में गुजरात के पाटण का साम्राज्य स्थापित हुआ। उसके स्थापक बनराज चावड़ा के गुरु जैनाचार्य शीलगुणद्वारि थे। बनराज चावड़ा के राज्यस्थापना और अभिष्ठिदि का श्रेय श्रीमद् शीलगुणद्वारि को ही है। जैनों का प्रभाव इसलिये प्रारंभ से ही पाटण के राज्यशासन में रहा। नौर्वी शताब्दी से ही श्रीमाल और पौरवाड़ के कई खानदान उस ओर जाने प्रारंभ होते हैं। इसमें कई वंश शासन की दागडोर को संभासने में अपनी निपुणता दिखाते हैं और व्यापारादि करके समृद्धि प्राप्त करते हैं।

हाँ तो श्रीमाल, पौरवाड़ और ओसवालों में सब से पहिले श्रीमाल श्रीमालनगर के नाम से प्रसिद्ध हुये। उस नगर के पूर्व दखाजे के पास वसने वाले जब जैनधर्म का प्रतिबोध पाये तो पाट्वाट या पौरवालज्ञाति प्रसिद्ध हुई और श्रीमालनगर के एक राजकुमार ने अपने पिता से रुष्ट हो कर उपसनगर बसाया और ऊहड़ नाम का व्यापारी भी राजकुमार के साथ गया था। उस नगरी में रत्नप्रमद्वारिजी ने पधार कर जैनधर्म का प्रचार किया। उनके प्रतिबोधित आवक उम नगर के नाम से 'उऐसवंशी-उपकेशवंशी-ओसवंशी' कहलाये।

पौरवालों एवं ओसवालों की कुछ प्राचीन वंशावलियां मैंने सिरोही के कुलगुरुजी के पास देखी थीं। उन सभी में मुझे जिस गोत्र की वे वंशावलियां थीं, उन गोत्रों की स्थापना व जैनधर्म प्रतिबोध पाने का समय ७२३, ७५०-६० ऐसे ही संवतों का मिला। इससे भी वर्तमान जैनज्ञातियों की स्थापना का समय आठवीं शताब्दी होने की पुष्टि मिलती है। पंडित हीरालाल हंसराज के 'जैन गोत्र-संग्रह' में लिखा है कि संवत् ७२३ मार्गशिर शु० १० गुरुवार को विजयवंत राजा ने जैनधर्म स्वीकार किया, संवत् ७६५ में वासठ सेठों को जैन बनाकर श्रीमाली जैन बनाये, संवत् ७६५ के फालगुण शु० २ को आठ श्रेष्ठियों को प्रतिबोध दे कर पौरवाड़ बनाये। यद्यपि ये उल्लेख घटना के बहुत दूर के थे, फिर भी आठवीं शताब्दी में श्रीमाल और पौरवाड़ यने इस अनुश्रुति के समर्थक हैं।

अभी मुझे स्वर्गीय मोहनलाल दलीचन्द देसाई के संग्रह से उपकेशगच्छ की एक शाखा 'द्विवंदनीक' के आचार्यों के इतिहाससंबंधी 'पांच-पाट-रास' कवि उदयस्तनरचित मिला है। उसमें 'द्विवंदनीकगच्छ' का संबंध लन्धनसे पूछने पर जो पाया गया, वह इन शब्दों में उद्घृत किया गया है।

'सीधपुरीहं पोदता स्वामी, वीरजी अंतरजामी, गोतम आदे गहूगाट, वीच मांहे वही गया पाट।

त्रेवीस ऊपरे आठ, बाधी धरमनो वाट, श्री रहवी (रत्न) प्रभु शूरिश्वर राजे, आचारज पद छाजे ॥

श्री रत्नप्रमद्वारिराय केशीना केढवाय, सात से संका ने समय रे श्रीमालनगर सन्तुर ।

श्री श्रीमाली श्रापिया रे, महालच्छमी हजूर, नउ हजा घर नातीनां रे श्री रत्नप्रभुद्वारि ॥

थिर महूरत करी थापना रे, उल्लट घरी ने उर, चडा छत्री ते भला रे, नहीं कारहियो कोय ।

पहेलुं तीलक श्रीमाल ने रे, सिगली नाते दोय, महालच्छमी कुलदेवता रे, श्रीमाली संस्थान ॥

श्री श्रीमाली नातीनां रे, जाने विसवा वीस, पूरब दिस याप्यां ते रे पौरवाड़ कहवाय ।

ते राजाना ते समय रे, लघु वंधव इक जाय, उवेसवासी रहयो रे, तिणे उवेसापुर होय ॥

ओसवाल तिढां यापिया रे, सवा लाख घर जोय, पौरवाड़कुल अंविका रे, ओसवालां सचीया व ।

उपर्युक्त उद्धरण से सात सौ शेरे में रत्नप्रमद्वारि श्रीमालनगर में आये। उन्होंने श्रीमालज्ञाति की स्थापना की। पूर्व दिशा की ओर स्थापित पौरवाड़ कहलाये। राजा के लघु वंधव ने उऐसापुर बसाया। वहाँ से

ओसवंश की स्थापना हुई। श्रीमालवंश की कुलदेवी महात्मी, पौरवाङ्गों की अंविका और ओसवालों की सत्तिया देवी मानी गई।

जबर जिस प्राचीन वंशावली का उद्धरण दिया है, उसमें ऐप्टि टोडा का निवासस्थान पूर्वी पोली और गोवजा अवाई लिखा है, इससे वे पौरवाङ्ग प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त सभी उद्धरणों में एक ही स्वर गुञ्जायमान है, जो आठवीं शताब्दी में वर्तमान जैनज्ञातियों की स्थापना को पुष्ट करते हैं।

राजपुत्रों की आधुनिक ज्ञातियां और वैश्यों की अन्य ज्ञातियों के नामकरण का समय भी विद्वानों की राय में आठवीं शती के लगभग का ही है। सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वान् श्री चितामणि विनायक वैद्य ने अपने 'मध्य-मुग्धीन मारत' में लिखा है, 'विक्रम की आठवीं शताब्दी तक ब्राह्मण और द्वित्रियों के समान वैश्यों की सारे भारत में एक ही ज्ञाति थी।'

श्री सत्यकेतु विद्यालंकार द्वित्रियों की ज्ञातियों के संबन्ध में अपने 'अग्रवालज्ञाति के प्राचीन इतिहास' के पृ० २२८ पर लिखते हैं, 'भारतीय इतिहास में आठवीं सदी एक महत्वपूर्ण परिवर्तन की सदी है। इस काल में भारत की राजनीतिक शक्ति प्रधानतया उन ज्ञातियों के हाथ में चली गई, जिन्हें आजकल राजपुत्र कहा जाता है। भारत के पुराने व राजनीतिक शक्तियों का इस समय प्रायः लोप हो गया। पुराने मौर्य, पांचाल, अंगकवृष्णि, द्वित्रिय मोज आदि राजकुलों का नाम अब सर्वथा लुप्त हो गया और उनके स्थान पर चौहान, राठौर, परमार आदि नये राजकुलों की शक्ति प्रकट हुई।'

स्वर्गीय पूर्णचन्द्रजी नाहर ने भी ओसवालवंश की स्थापना के सम्बन्ध में लिखा है कि, 'वीरनिर्वाण के ७० वर्ष में ओसवाल-समाज की सृष्टि की किंवदन्ती असंभव-सी प्रतीत होती है।' 'जैसलमेर-जैन-लेख-संग्रह' की भूमिका के पृ० २५ में 'संवत् पांच सौ के पश्चात् और एक हजार से पूर्व किसी समय उपकेश (ओसवाल) ज्ञाति की उत्पत्ति हुई होगी' ऐसा अपना भत प्रकट किया है।

ज्यारहवीं शताब्दी के पहिले का प्रामाणिक उल्लेख एक म। ऐसा नहीं मिला, जिसमें कहीं भी श्रीमाल, ग्राम्याट और उपकेशवंश का नाम मिलता हो। बारहवीं तेरहवीं शताब्दियों की प्रशस्तियों में इन वंशों के जिन व्यक्तियों के नामों से वंशावलियों का प्रारम्भ किया है, उनके समय की पहुँच भी नवमीं शताब्दी के पूर्व नहीं पहुँचती। इसी प्रकार तेरहवीं शताब्दी के उल्लेखों में केवल वंशों का ही उल्लेख है, उनके गोत्रों का नाम-निर्देश नहीं मिलता। तेरहवीं, चाँदहवीं शताब्दी के उल्लेखों में भी गोत्रों का निर्देश अत्यन्त है। अतः इन शताब्दियों तक गोत्रों का नामकरण और प्रसिद्धि भी बहुत ही कम प्रसिद्ध हुई प्रतीत होती है। इस समस्या पर विचार करने पर भी इन ज्ञातियों की स्थापना आठवीं शताब्दी के पहिले की नहीं मानी जा सकती।

इन ज्ञातियों की स्थापना वीरात् ८४ आदि में होने का प्रामाणिक उल्लेख सबसे पहिले संवत् १३१३ में रचित 'उपकेशगच्छप्रवन्ध' और नाभिनन्दनजिनोद्धारप्रवन्ध' में मिलता है। स्थापनासमय से ये ग्रंथ बहुत पीछे के बने हैं, अतः इनके बतलाये हुये समय की प्रामाणिकता जहाँ तक अन्य प्राचीन साधन उपलब्ध नहीं हों, मान्य नहीं की जा सकती। कुलगुरु और भाटलांग कहीं-कहीं २२२ का संवत् बतलाते हैं। पर वह भी भूल बस्तु को भूल जाने

पर एक गोलमगोल बात कह देने मर ही है। यदि इन ज्ञातियों की उत्पत्ति का समय इतना प्राचीन होता तो सैकड़ों वर्षों में इनके गोत्र और शाखा भी बहुत हो गई होतीं और उनका उद्घेष्य तेरहवीं शताब्दी तक के ग्रंथादि में नहीं मिलने से वह समय किसी तरह मान्य नहीं हो सकता।

जहाँ तक ओसवालज्ञाति का सम्बन्ध है, उसके स्थापक उपकेशगच्छ, उएसनगर का भी जैनसाहित्य में ग्यारहवीं शताब्दी के पहिले का कोई भी उद्घेष्य नहीं मिलता। इसी तरह श्रीमाल और पौरबाड़ों का भी प्राचीन साहित्य में उद्घेष्य नहीं आता।

मूनि ज्ञानसुन्दरजी ने ओसवालज्ञाति की स्थापनासंबंधी जितने प्राचीन प्रमाण बतलाये थे, उन सब की मलीभाति परीक्षा करके मैंने अपना 'ओसवालज्ञाति' की स्थापनासंबंधी प्राचीन प्रमाणों की परीक्षा' शीर्षक से खुली तरुण-ओसवाल' के जून-जुलाई सन् १९४१ के अंक में प्रकाशित किया था। विसको बारह वर्ष हो जाने पर भी 'कोई उत्तर मूनि ज्ञानसुन्दरजी की ओर से नहीं मिला। इससे उन प्रमाणों का खोखलापन पाठक स्वयं विचारते।

वैश्यों की ज्ञातियों की संख्या चौरासी बतलाई जाती है। पन्द्रहवीं शताब्दी से पहिले के किसी ग्रन्थ में मुख्य को उनकी नामावाली देखने को नहीं गिली। जो नामावलियां पन्द्रहवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी की मिली हैं, वैश्यों की चौरासी ज्ञातियाँ उनके नामों में पारस्परिक बहुत अधिक गड़बड़ हैं। पांच चौरासी ज्ञातियों की नामों की सूची से हमने जब एक अकारादि सूची बनाई तो उनमें आये हुये नामों की सूची १६० के लगभग पहुँच गई। इनमें से कई नाम तो अशुद्ध हैं और कई का उल्लेख कहो भी देखने में नहीं आता और कई विचित्र-से हैं। अतः इनमें से छाँट कर जो ठीक लगे उनकी सूची दे रहा हूँ।

- १ अग्रवाल
- २ अच्छतिवाल
- ३ अजयमंशा
- ४ अठसखा
- ५ अड्डलिजा
- ६ अवधपुरिया
- ७ अष्टदशी
- ८ अस्थिकी
- ९ अदिलनवाल
- १० आशंकुरा
- ११ उक्कवाल
- १२ कथकटिया
- १३ कठिणुरा
- १४ कपोल
- १५ करण्णसिया

- १६ करहीया
- १७ कलसिया
- १८ क्षेत्रा
- १९ करडोलिया
- २० कंयोजा
- २१ काकडवाल
- २२ काथोरा
- २३ कामगौत
- २४ कायस्थ
- २५ काला
- २६ कुंकन
- २७ कुरडलपुरी
- २८ कुंबड़
- २९ कोरडवाल
- ३० कोरंटवाल

- ३१ खटवड़
- ३२ खड़ाइता
- ३३ खंगडवाल
- ३४ खडेवाल
- ३५ गजउड़ा
- ३६ गदहीया
- ३७ गयवरा
- ३८ गूजराती
- ३९ गूर्जरपौरवाड़
- ४० गोदरुआ
- ४१ गोडिणा
- ४२ गोमित्री
- ४३ गोरीवाड़
- ४४ गोलसिंगारा
- ४५ गोलापूर्व

- ४६ गोलावाल
- ४७ गोलाउड़
- ४८ घांव
- ४९ चापेल
- ५० चिढ़करा
- ५१ चीतोड़ा
- ५२ चीलोड़ा
- ५३ चउसखा
- ५४ छवत्राल
- ५५ छापणिया
- ५६ छःसखा
- ५७ जालहा
- ५८ जांगड़ा
- ५९ जाइलवाल
- ६० जाम्बू

६१ जालेरा	८७ पर्वि	११३ मांडलिया	१३४ श्रीमाल
६२ जेहरणा	८८ पंचमवंश	११४ मायर	१४० श्रीश्रीमाल
६३ लैनमंगवाल	८९ पुष्करवाल	११५ मारगण	१४१ सचाणा
६४ जैसवाल	९० पूर्वी	११६ मुँडेरा	१४२ सरमईया
६५ डीहू	९१ पेरुआ	११७ मुहवरिया	१४३ सहला
६६ ढीसवाल	९२ पोरवाइ	११८ मेहतवाल	१४४ सहसरडा
६७ तिलोरा	९३ पीढकरवाल	११९ मेवाड़ा	१४५ सहिलवाल
६८ तैलटा	९४ घवेरवाल	१२० मोढ़	१४६ साचुरा
६९ दसोरा	९५ घवणुरा	१२१ राजउरा	१४७ सामुरा
७० दहवड	९६ घसाड़	१२२ रायकड़ा	१४८ साखडेरा
७१ दाहिथ	९७ घावर	१२३ रायतवाल	१४९ सीदरा
७२ दोसखा	९८ घालिमकी	१२४ रोतकी	१५० सीरोहिया
७३ दोहिल	९९ घीधू	१२५ लाडीमखा	१५१ सीदउरा
७४ घाकड़	१०० घुदोतिया	१२६ लाड़	१५२ सुहडवाल
७५ घाघड़ा	१०१ ग्रहाणी	१२७ लाहुआश्रीमाली	१५३ सुहवाल
७६ घूमड़ा	१०२ घटनागर	१२८ लूँवेचा	१५४ सुराणा
७७ नरसिंहउरा	१०३ घटेवरा	१२९ लोहाणा	१५५ सेतस्थिया
७८ नागद्रवा	१०४ घडिया	१३० लौगा	१५६ सोनी
७९ नागर	१०५ घाटिया	१३१ वलहीया	१५७ सोरठिया
८० नागोरा	१०६ घुंगडिया	१३२ वागड़	१५८ सोरडवाल
८१ नाणवाल	१०७ घूमा	१३३ वायड़ा	१५९ हस्सुरा
८२ नार्दल	१०८ घडालिया	१३४ वांगलीय	१६० हालर
८३ निगमा	१०९ घडाहटा	१३५ वैसुरा	१६१ हूम्बड़
८४ नीमानी	११० घंडोवरा	१३६ वेवड़ा	
८५ पडावतीपोरवाल	१११ घढकेसरा	१३७ अवणपगा	
८६ पञ्जीवाल	११२ घायुर	१३८ श्रीगोड़	

इन चौरासी ज्ञातियों के नामों पर दृष्टिपात करने पर इनका नामकरण स्थानों के नाम से हुआ सिद्ध होता है।

‘विमलप्रबन्ध आदि’ में वैश्यों की साढ़ी बारह नात की गाथा इस प्रकार है:—

श्री श्रीमाला, उएसा, पल्लीनमिश तहां मेडने, विश्वेरा, डिह्या, खण्डूया, तद नराणउरा।

हरिसउरा, जाईल्ला, पुष्कर तह डिडियडा, खडियल्लवाल अद्य वारस जाह अहिया ते।

इनमें खण्डेलवालों की आधी ज्ञाति मानने का कारण स्पष्ट नहीं है। यदि इनमें आवे जैन और आवे जैनतर दो भेद भान कर चले तो भी विश्वेरा, खण्डूया आदि ज्ञातियों का जैन होने का कोई प्रमाण नहीं।

चौरासी जैन ज्ञातियों के संबंध में सौभाग्यनंदिसुरि का संवत् १५७८ में रचित 'विमल-चरित्र' वहुत-सी महत्वपूर्ण दृच्छनायें देता है। परन्तु उसकी प्रेसकापी मैंने मुनि जिनविजयजी से मंगवा कर देखी तो वह वहुत अशुद्ध होने से कुछ वारें अस्पष्ट सी प्रतीत हुई। इसलिये उनकी चर्चा यहां नहीं करता है।

उक्त ग्रंथ में दसा-बीसा-मेद की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी वर्तमान मान्यता से मिल ही प्रकार का वर्णन मिलता है। इसके अनुसार यह भेद प्राचीन समय से है। किसी वारहवर्णी दृष्टिकाल के समय में अचादि नहीं ताढ़ी बारह न्यात और दसा-मिलने से कुछ लोगों का खान-पान एवं व्यवहार दृष्टित हो गया। सुकाल होने पर भी बीसा-मेद वे कुछ बुरी वारों को छोड़ न सके, इसीलिये ज्ञाति में उनका स्थान नीचा भाना गया और तब से दस विस्तार और बीस विस्ता के आधार से लघुशाखा वृद्धशाखा प्रसिद्ध हुई।

वास्तव में विशेष कारणवश कभी किसी व्यक्ति या समाज में कोई समाजविकृद्ध व अनाचार का दोप आ गया हो उसका दण्ड जैनधर्म के अनुसार शुद्ध धर्मचरण के द्वारा मिल ही जाता है। कल का महान् पापी महान् धर्मस्था वन सकता है। जैनधर्म कभी भी धर्मचरण के पश्चात उसको अलग रखने या उसकी संतति को नीचा देखने का समर्थन नहीं करता। इसलिये अब तो इन दसा-बीसा-मेदों की समाप्ति हो ही जानी चाहिए। वहुत समय उनकी संतति ने दण्ड भोग लिया। वास्तव में उनका कोई दोप नहीं। समान धर्मी होने के नाते वे हमारे समान ही धर्म के अधिकारी होने के साथ सामाजिक सुविधाओं के भी अधिकारी हैं। हमारे पूर्वज मीं तो पहिले जैसा कि माना जाता है चात्रिय आदि विविध ज्ञातियों के थे और उनमें मांस, मदिरादि खान-पान की अशुद्धि थी ही। पर जब हम जैनधर्म के भक्तें के नीचे आ गये तो हमारी पहिले की सारी वारें एवं अनाचार भूलाये जाकर हम सब एक ही हो गये। इसी तरह उदार भावना से हमें अपने तुच्छ मेदों को विसार कर उन्हें स्वधर्मी वात्सल्य का नाता और सामाजिक अधिकार पूर्णरूप से देकर प्रामाणित करना चाहिए। जैनाचार्यों ने नमस्कारमंत्र के मात्र धारक को स्वधर्मी की संज्ञा देते हुये उनके साथ समान व्यवहार करने का उपदेश दिया है। अपने पूर्वाचार्यों के उन उपदेशों को ध्वनि कर जैनधर्म के आदर्श को अपनाना ही हम सबका कर्तव्य है।

जैनधर्म में ज्ञातिवादसम्बन्धी क्या विचारधारा थी, किस प्रकार क्रमशः इन ज्ञातियों का तांता वहूता चला गया इन सब वारों की चर्चा ऊपर हो चुकी है। उससे हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूलतः 'ज्ञाति' शब्द ज्ञातिवाद का कुप्रभाव और जन्म से सम्बन्धित था। एक प्रकार के व्यक्तियों के समूदविशेष का सूचक था। उससे जैनेता व्रतों में ज्ञातिवाद होते २ यह शब्द वहुत सीमित अर्थ में व्यवहूत होने लगा, जिससे हम आज ज्ञातियों की संज्ञा देते हैं, वे चास्तव में कुल या वंश कहे जाने चाहिए। भारतवर्ष में ज्ञातियों के मेद और उच्चता नीचता का वहुत अधिक प्रचार हुआ। इससे हमारी संघ-शक्ति चीण हो गई। आपसी मत-भेद उत्तर वने और उन्हीं के संघर्ष में हमारी शक्ति वरचाद हुई। आज हमें अपने पूर्व अतीत को फिर से याद कर हम सब की एक ही ज्ञाति है इस मूल भावना की ओर पुनरागमन करना होगा। कम से कम ज्ञातिगत उच्चता नीचता स्पर्शस्पर्श की भेदभावना, घृणाभावना और द्वेषवृत्ति का उन्मूलन तो करना ही पड़ेगा।

ज्ञातियों और उनके गोत्रों सम्बन्धी जैनेतर साहित्य वहुत विशाल है। जैनसाहित्य में इसके सम्बन्ध में प्राचीन साहित्य है ही नहीं। इसके कारणों पर विचार करने पर मुझको एक महत्वपूर्ण सांस्कृतिक अंतर का पता चला।

यह यह है कि वैदिकधर्म में चारों वर्णों की स्थापना के पश्चात् उनके धार्मिक और सामाजिक अधिकार, आजीविका के बारे आदि भिन्न २ निधित कर दिये गये, इसलिये उनके सामने बार २ यह प्रक्ष आने लगा कि यह वर्णव्यवस्था की शुद्धता कैसे टिकी रहे। इसलिये उन्होंने रक्षशुद्धि को महत्व दिया और उच्चता नीचता और स्पर्शास्पर्श के विचार प्रबल रूप से रुद्ध हो गये। प्रत्येक व्यक्ति को अपने गोत्र आदि का पूरा स्मरण व विचार रहे; इसलिये गोत्र शाखाप्रब्रह्म आदि की उत्पत्ति, उनके पारस्परिक संबंध आदि के संबंध में वहुत से ग्रंथों में विचार किया गया जब कि जैनधर्म इस मान्यता का विरोधी था। उसमें किसी भी ज्ञाति अथवा वर्ण का हो, उसके धार्मिक अधिकारों में कोई भी अन्तर नहीं माना गया। सामाजिक नियमों में यद्यपि जैनाचार्यों ने विशेष हस्तक्षेप नहीं किया, फिर भी जैनसंस्कृति की छाप तो सामाजिक नियमों पर भी पड़नी अवश्यंगमात्री थी। आठवीं शताब्दी के लगभग जब जैनाचार्यों ने एक नये लेत्र में जैनधर्म को पक्षवित और पुष्पित किया तो नवीन प्रतिवेदित ज्ञातियों का संगठन आवश्यक हो गया। उन्होंने इब्ला से श्रीमाल, पाँसवाल और ओसवाल इन भेदों की सृष्टि नहीं की। ये भेद तो मनुष्य के पंक्तुचित्र 'अहं' के सूचक हैं। इनका नामकरण तो निवासस्थान के वीचे हुआ है। जैनाचार्यों ने तो इन सब में एकता का शंख फूंकने के लिये स्वधर्मी वात्सल्य को दी अपना संदेश बनाया। उन्होंने अपने अनुयायी समस्त जैनों को स्वधर्मी होने के नाते एक ही संगठन में रहने का उपदेश दिया। भेदभाव को उन्होंने कभी प्रोत्साहन नहीं दिया। यह तो मनुष्यों की खुद की कमज़ोरी थी कि जैनधर्म के उस महान् आदर्श एवं पावन सिद्धान्त को वे अपने जीवन में भलीमान्ति पनपा नहीं सके।

पर जब आठवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी के मध्यवर्ती जैन इतिहास को ढटोलते हैं तो हमें जैनाचार्यों के आचारों से शिथिलता जौरों से बढ़ने लगी का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। उसका मूल कारण उनका जैन चैत्यों में निवास करना था। इसी से यह काल 'चैत्यवास का प्रावन्य' के नाम से जैन इतिहास व साहित्य में प्रसिद्ध हुआ मिलता है। जब जैन गुनि निरन्तर विद्वार के महावीर-मार्ग से ऊब दूर हट कर एक ही चैत्य में अपना ममत्व स्थापित कर रहने लगे या लम्बे समय तक एक स्थान पर रहने से ममत्व बढ़ता चला गया; यद्यपि उनका चैत्यवास पहिलेपहिले सकारात्मक ही होगा, मेरी मान्यता के अनुसार जब इन नवीन ज्ञातियों का संगठन हुआ तो इनको जैनधर्म में विशेष स्थिर करने के लिये जैन चैत्यों का निर्माण प्रक्रिया से करताया जाने लगा और निरन्तर धार्मिक उपदेश देकर जैन आदर्शों से ओत-प्रोत करने के लिये मुनिगणों ने भी अपने विद्वार की मर्यादा को शिथिल रूपके एक स्थान पर—उन चैत्यों में अधिक काल तक रहना आवश्यक समझा होगा। परन्तु मनुष्य की यह कमज़ोरी है कि एक बार नीचे लिखे या फिर वह ऊचे उठने की ओर अग्रसर नहीं होकर निम्नगामी ही बना चला जाता है। एक दोप से अनेक दोषों की उत्पत्ति होती है। छोटे-से छिद्र से सुराख बढ़ता चला जाता है। चैत्यवास का परिणाम भी यही हुआ। अपने उपदेश से निर्माण करताये गये मन्दिरों की व्यवस्था भी उन जैन मुनियों को संभालनी पड़ी। उन चैत्यों में अधिक आय हो, इसलिए देवद्रव्य का महात्म्य बढ़ा। द्रव्य अधिक संग्रह होने से उसके व्यवस्थापक जैनाचार्यों की वित्तासिता भी बढ़ी। क्रमशः शिष्य और अनुयायियों का लोभ भी बढ़ा। अपने अनुयायी किसी दूसरे आचार्य के पास नहीं चले जावें, इसलिए वाहावंदी भी प्रारंभ हुई। 'तुम तो हमारे अमुक पूर्वज के ग्रतिवेदित हो; इसलिए तुम्हारे ऊपर हमारा अधिकार है, तुम्हें इसी चैत्य अयवा मन्द्य को मानना चाहिए' इत्यादि वाचों ने आवकों के दिलों में एक दीवार खड़ी करदी। अपने २ गच्छ, आचार्य

एवं चैत्यों का ममत्व सभी को प्रभावित कर विशाल जैन संघ की उदार मावना को एक संकुचित बाढ़ाबंदी में सीमित कर देठा। संक्षिप्त में जैनधर्म के आदर्शों से च्युत होने की यही कथा है। हम में एक समय किसी कारणवश कोई खराबी आगई तो उससे चिपटा नहीं रहना है। उसका संशोधन कर पुनः मूल आदर्श को अपनाना है। हमारे आचार्यों ने यही किया। आठवीं शताब्दी के महान् आचार्य इरिमदखरि ने चैत्यवासी की बड़ी भत्तेना की। हमारे आचार्यों ने यही किया। आठवीं शताब्दी के महान् आचार्य इरिमदखरि ने तो पाटण में आकर चैत्यवासियों से बड़ी बोरों से टक्कर ली। इनसे लोहा लेकर उन्होंने उनके सुट्ट गढ़ को शिथिल और श्रीदीन घना दिया। चैत्यवास के खण्डहर जो शोडे यहुत रह सके, उन्हें जिनवन्लभखरि और जिनपतिसुखि ने एक बार तो ढाहसा दिया। 'गणधरसार्वशतकबृद्धवृत्ति' और 'युगप्रधानाचार्य गुरुवावली' में इसका वर्णन बड़े विस्तार से पाया जाता है। 'संधपद्मकृति' आदि ग्रंथ भी उत्कालीन विकारों एवं संवर्प की भलीभांति घृचना देते हैं।

हाँ तो मैं जिस विषय की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहता या वह है स्वधर्मी वात्सल्य इसका विशद् निरूपण आठवीं शताब्दी से चौदहवीं शताब्दी के ग्रंथों में मिलता है और हमारी भेद-भावना को छिन-मिन कर देने में यह स्वधर्मी वात्सल्य एक अमोघ शास्त्र है। जो जैनधर्म की पावन धार्या के नीचे आगया वह चाहे किसी भी ज्ञाति का हो, किसी भी वंश का हो, उसके पूर्वज या उसने स्वयं इतः पूर्व जो भी बुरे-से बुरे काम किये हो, जैन होने के बाद वह पावन हो गया, आवक हो गया, जैनी हो गया, अमणोपाशक हो गया और उससे पूर्व सैकड़ों वर्षों से जैन धर्म को धारण करने वाले आवकों का स्वधर्मी बंधु हो गया। अब तो गले से गले मिल गये, एक दूसरे के सुख-दुख के भागी बन गये, परस्पर में धर्म के प्रेरक बन गये, धर्म से जिसे हुए भाई को उठा कर उसे पुनः धर्म में प्रतिष्ठित करने वाले बन गये—वहाँ भेद-भाव कैसा?

इस आदर्श के अनुयायियों के लिये अंतरज्ञातीय विवाह का प्रश्न ही नहीं उठना चाहिए। वास्तव में जैनधर्म में अन्तरज्ञाति कोई वस्तु है ही नहीं। जैनधर्म में तो कोई ज्ञाति है ही नहीं। है तो एक जैनज्ञाति। सब के धार्मिक और सामाजिक अधिकार समान हैं। ज्ञातियों के लेवल तो तीन कारणों से होते हैं। पहला कारण है प्रतिष्ठित वंशज के नाम से उसकी संतति का प्रसिद्ध होना, दूसरा आजीविका के लिये जिस धंधे को अपनाया जाय उस कार्य से प्रसिद्धि पाना जैसे किसीने भण्डार या कोठार का कार्य किया तो वे भण्डारी या कोठारी हो गये, किसी ने तीर्थयात्रार्थ संघनिकाला तो वे संघवी हो गये, याने किसी कार्यविशेष से उस कार्यविशेष की सूचक जो संज्ञा होती है वह आगे चल कर ज्ञाति व गोत्र बन जाते हैं। तीसरा स्थानों के नाम से। जिस स्थान पर हम निवास करते हैं, उस स्थान से बाहर जाने पर हमें कोई पूछता है कि आप कहाँ के हैं, कहाँ से आये तो हम उत्तर देते हैं कि अमुक नगर अथवा ग्राम से आये हैं और उसी नगर, ग्राम के नामों से हमारी प्रसिद्धि हो जाती है। जैसे कोई रामपुर से आये तो रामपुरिया, फलोदी से आने वाले फलोदिया। अतः हमें इन भेदों पर अधिक चल नहीं देना चाहिए।

जो बातें मूलरूप से हमारी अच्छाई और भलाई के लिये थीं, हमारे उच्चत होने के लिये थीं वे ही हमारे लिये धातक सिद्ध हो गईं। आज तो हमारे में खराबी यहाँ तक घुस गई है कि हमारा वैवाहिक संबंध जहाँ तक हमारे ग्राम और नगर में हो दूसरे ग्राम में करने को हम तैयार नहीं होते। दूसरे प्रान्त वाले तो मानों हमारे से बहुत ही मिन हैं। साधारण खान-पान और वेप—भूषा और रीति-रवाजों के अंतर ने हमारे दिलों में ऐसा भेद

ज्ञान लिया है कि एक ही ज्ञाति के स्रोत प्रान्त वालों के साथ वैशाहिक संरचन करने में सहजते हैं। हीर, उन में तो असुविधायें भी आने आती हैं, पर एक ही ज्ञान में बदले याके औपचारल, पौरचाल और श्रीमालों में वो खान-पान, वेष-भूषा और रीति-रिवाजों में कोई अन्तर नहीं होता तो फिर वैशाहिक संरचन में अद्वचन क्यों। वास्तव में तो ऐसा संरचन बहुत ही सुविधावानक होता है। अपनी ज्ञाति के लकड़ों में भान लीजिये वय, शिशा, संपत्ति, पर-पराना आदि की इटि से जुलने में असुविधा हो, जूँकि बहुत थोड़े तीव्रित घरों में से जुताव करने पर मनचाहा योग्य वर मिलना कठिन होता है जब कि जरा विस्तृत दायरे में योग्य वर मिलने की सुविधा अधिक रहती है। इसलिये इन भेदभावों का अंत तो हो दी जाना चाहिए। भूमिका अत्यन्तव्यक्ता में अधिक लम्बी छोड़दें, अतः मैं अब अन्य शांतों का सोभ संवरण वर उत्पादन कर देता हूँ।

प्रात्मुत इतिहास के लेखक भी सोहाजी जी इटि ऐतिहासिक तथ्यों को प्राप्त वर प्रकाश में लाने की अधिक रही है। वास्तव में यही इतिहासकार का कर्तव्य होता है। अंवकार तो सर्वत्र व्याप्त है जी। उनमें से प्रकाश की चिन्मारी जहां भी, जो भी, जितनी भी मिल जाय, उससे लाभ उठा सेना ही विवेकी मनुष्य का कर्तव्य है। वैहानिक इटि गत्य की विज्ञासा से तंत्रित होती है। वह देव करने में से सार पदार्थ को व्यवस्था कर अध्यय-दृढ़ वर स्वीकार करता है। वैन ज्ञातियों का इतिहास-निर्धारण करना भी यहा यीढ़ भारी है। स्थान-स्थान पर मर्यादर जंगल जगे हुये हैं, इससे सत्य एवं प्रकाश की भूक्षी मंद हो गई होती है। उसमें से वर्ध्य को पाना यहा धृष्टसाध्य और सप्तयसाध्य दीता है। अभी उक ओपचारल, अप्रचाल, मार्देश्वरी और अन्य ज्ञातियों के भी इतिहास के बड़े २ पोंडे प्रकाशित हुये हैं, उनमें अधिकांश के लेखक इन मध्यवर्ती बंगलों के कारण मटक गये हो जाते हैं। झुँझ एक ने तथ्य को पाने का प्रयत्न किया है, पर शाखाओं की कमी, अप्रामाणिक प्रशादों और किंवदन्तियों का बाहुदृश्य उनको भारी प्रशास्त करने में कठिनाई उपस्थित कर देता है। लांदाजी को भी वे सब असुविधायें और कठिनाईयें हुई हैं; पर उन्होंने उनमें नहीं उत्सक्त कर फुँक सुलभे हुये भारी को अपनाया है यही उन्नेकनीय बात है।

साधनों की कमी एवं अस्त-अस्तवा के कारण इस इतिहास में भी कुछ वातें ग्रीक-सी मुस्तक नहीं सकी हैं। इसलिये निर्णान्त तो नहीं कहा जा सकता, फिर भी यह प्रवृत्त अवश्य ही सत्योन्हुखी होने से सराहनाय है।

अभी तामग्री बहुत अधिक विश्वरी पड़ी है। उन्हें जितनी प्राप्त हो सकी, एकत्रीकरण करने का उन्होंने भरतक प्रयत्न किया, पर भारी अभी बहुत दूर है, इसलिये हमें इस इतिहास को प्रकाशित करके ही मंतोष मान कर विराम ले सेना उचित नहीं होगा। हमारी शोध नित्यन चालू रहनी चाहिए और जद भी, जहां यही भी जो बात नहीं एवं तथ्यर्थ्य मिले उनको संग्रहित करके प्रकाश में लाने का प्रयत्न निरंतर चालू रहना आवश्यक है।

अन्त में अपनी स्थिति का भी कुछ सच्चीकरण कर दूँ। यद्यपि गत पश्चीम वर्षों से मैं निस्नर जैन-साहित्य और इतिहास की जीव एवं अध्ययन में लगा रहा हूँ और जैनज्ञातियों के इतिहास की समस्या पर भी विद्याशैष विचारणा, अन्वेषणा और अध्ययन चालू रहा है। हिर भी संतोकजनक प्राचीन सामग्री उपलब्ध नहीं होने से बेसी चाहिए रेती रक्खता अभी प्राप्त नहीं हो सकी। इसलिये विशेष करने का अधिकारी मैं अपने घाएको अभी अनुभव नहीं करता।

गत वर्ष मेरे यहां श्रीयुत् लोद्धाजी पधारे और इस इतिहास की भूमिका लिख देने का अनुरोध किया। मैंने अपनी अनधिकार और अयोग्यता का अनुभव होते हुये भी उनके प्रेमपूर्ण आग्रह को इसलिये स्वीकार किया कि इसी निमित्त से अपने अब तक के अध्ययन का परिणाम जैन विचार-थारा और अपने विचार प्रकाश में लाने का कुछ सुयोग मिलेगा ही। मुझको संतोष है कि मैं अपने उन विचारों को मूर्त्तरूप देने को इस भूमिका के द्वारा समर्थ हुआ हूँ।

मैं प्राग्वाट-इतिहास-प्रकाशक-समिति के इस सद्प्रयत्न की प्रशंसा करता हुआ उनकी सफलता की वथाई देता हूँ। उन्होंने जिस धीरज और द्रव्य के सद्व्यय द्वारा इस कार्य को मुचारु रूप से संपन्न होने में दबता बतलाई है वह अवश्य ही अनुकरणीय है। इतिहास का कार्य कोई फटपट और खड़ेदम करना चाहे तो वह इतिहास बनेगा नहीं, किंवदन्तियों और दकोसलों का एक संग्रहमात्र हो जायेगा। इसलिये पद्धति पर जिसके लिए साधन अपेक्षित हों, प्रमाण के बिना एक अद्वर भी लिखना कठिन हो उस इतिहास के साधनों को जुटाने, उनको सिलसिलेवार सजाने और उनमें से तथ्य को समझने में समय लगता ही है। उतावल और अधैर्य का यह कार्य नहीं है। समिति के संचालकों ने इस कार्य की गुरुता को समझ कर उसे सफल बनाने में जो सहयोग दिया है वह बहुत ही सराहनीय है।

श्रीयुत् लोद्धाजी के प्रेमपूर्ण आग्रह से मुझे यह भूमिका लिखने का सुयोग प्राप्त हुआ, इसलिये मैं उनको भी अन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। उनकी काव्य-प्रतिभा के साथ सत्य की जिज्ञासा और इतिहास की रुचि दिनोंदिन बढ़ती रहे यही मेरी मंगल कामना है।

नाहटों की गवाह
अमय जैन प्रन्थालय
वीकानेर
आधिन कृष्णा ५ सं० २०१०

—अगरचन्द नाहटा

पाठ्यक्रम में राजस्थानी को उचित स्थान मिले

—**कैः थी अगरचन्द्र जी चाहदा बोकाने।**—

(九百零六回)

सालाहान गे उको गौरव आपने
गमा बेट्या हाँ वो आपने माहमापा
द्वारा ही पाड़ो आ रहेजा । बोरता
और त्याग गे थो बाताबदण मानुषापा
रे साहित्य बिना आ ही थेती सके ।
दूसा रे भाषा सू आपने दृजा आ
ओगण महां ही ले लो गुण एक ही
होनो जे सका । अंगरेजी भण्ड
नक्की साध ही बढ़ाय । अंगरेजी ॥ १
बोगण पका ही लिया पका गुण बोई
लिये हाँै ? हिंदो पढ़ वासुपकु
सीरुड़ा । हिंदे सू आपने बूझ भक्तों
ही बढ़ रथाये, बेन्चन्द, और प्रसाद
पालधीयजी और दिवेशज्ञ कोने
परे उठो, पताप कीर पहम ली,
पुषीशज और जाठोहुखो, पेरा हुखण
धारु माहमापा ॥ बहरत है ।

राजस्थान किसे प्राप्त है जठे अविद्या
हो जो अमरारो है । मातृमापा सू
(जल) पश्चात् पक्ष वरस में हुये दिवो
दूधी मापा सुं इस वरस में ही को
हुयेनो । मातृतर्पं भेदे अन्तरेजी ने
चालाता स्त्री वरस नेडा हुण्ण लाग्या
पक्ष वैरा में आम किलाक भएयोहा
है । भी में इस ही जोनी । इने पासी
रस ने बेळो जठे आत सूं यीस परस
पेली ही में विद्यारुपे आदमी अल-
भण-अल्पपद हा । यीस ही वरस में
रस रो पक्षोऽप्क अदृशी भयोज्ञो
चौर अल्पपद आदमी अस उठे कोई
मापा जोग सूं ही लाखे तो कापे ।

अथ इयामी नरोत्तमदासजी के
विचार यो नोचे दिये जा रहे हैं।

प्राप्त सुधार जौ (प्राप्तियोजना का
कार्य राज्यालयों के धिना हो दी नहीं

सकता। जब हम हिन्दो लेका दैहित
ने जाते हैं और हम तम योखले हैं तो
इसाए बाकीय वस्तु हमसे दूर दूर
मालूम है। वे हमें अपना नहीं सम-
झते हमें परदेरी बेगमा बाहर के
आदमी बमलते हैं और हड्डते हैं जो
को अमेंडो छाटे हैं। उनका और
हमारा 'अंतर्द' नहीं भीतका हूँवयों का
मेल नहीं होता कि वे हमारी बात को
अपण बत दे क्षेत्र मुने हम इनकी
भाषा में गोलंगे तभी वे इसको बपना
समझता हमारी बात सुनेंगे।

सदमे बड़ी ममता शिला प्रधार
की एकमात्र साधन भासुभाषा है।
राजस्थान: भाषा का सहारा लेने के
प्रतिरिक्ष और कोई द्वय नदी विष
में राजस्थान ऐं गीम से सीधे शिल
का पश्चार हो पाके।

शिला का भवार सहसे अधिक
भावरक है। शिला के बिना न पाज
नीतित उत्तर हो सकते हैं न सारा
जिह और न सांकुलित। उत्तर हो
इये रीप्र से दीप शिलित बनाना है।
दिस भावा से यह कायं तथा से
यीम हो लें इस सभा को इये

ਰਿਹਾ ਕਾ ਮਾਘਸ ਬਲਨਾ ਹੋਗਾ । ਹੈ
ਅਥ ਖਾਨੇ ਦੇ ਸਤਤਵ ਹੈ ਦੇਡ ਗਿਨਨੇ ਦੇ
ਨਹੀਂ ॥

व्यंगेशी के द्वारा भारत द्वारा
वर्षों में सी गिरित नहीं दिया जा
सकता। हिम्बी के द्वारा राजायान को
गिरित बनाने का प्रयत्न दिया
जायगा तो लो वर्ष तो चाहिये ही।
इस इन्हें संघर्ष तक प्रतीक्षा कर
सकते हैं।

राजाधानी बालक को लाखार
परं दिन्हो सीधाने में ही लग जाते
हैं। उस पर वीरी वाचकी छला में
पहुँचता है तब छहीं दिन्हो समझने
योग नहीं होता है। अपने हाथ के माझों
को तो वह दिन भी ठोक ठोक पका-
दिया नहीं कर सकता। ऐसा गथा है
कि वीरों का नाम भी उख पक्सा है
मगेर बिना समझे, इत जेता है वही दुर्द
वाल जो अपने रखदों में नहीं कह
सकता पर वही बात यहि राज-
धानी के हात समझई जाती है तो
पुरुत समझ ही नहीं जेता किन्तु
अपने रखदों में दुर्दा मो सकता है।
यह बात दोटी कड़ाओं के पत्तेए
शिख 6 के देविक जन प्रभ की है।

म्यागदि मुनिवासिरी से भूतपूर्व
गाइस चासकर और राजपूताना मर-
वारात शिला बोर्ड के भूतपूर्व चेदभेन
इडा० पश्चलधन्द वस्तु इडा० बत्ते पर कि
जाज्यूताना और पश्चमात्र में जहाँ
की जिरीहाक हो जाता है वहा० यह
योक्षायत सुनवा है छि दिल्ली बहुत
बड़ान पड़नी है।

नित्यों और साधारण पक्षों के बीच व्यवहार के साथ भी गही जात होती है। ये लोग न लो हिंदू भाजपा के ठोक से उम्रक पाते हैं और न हिंदू में दिये दुर्लभ मापदण्डों और व्याख्यानों को ही। इनमें शास्त्राचार वसी ही उपलब्ध है जब इन्हें जायानी पै लिखे पुस्तकों दी जाएँ तब वे अचार जान देते ही पढ़ कर समझ जाते हैं।

इसी 'अप जनता में बाह्य अर्दे
में प्रवक्ता न पुढ़े पड़ा हीर गोदावनाथ,
१५ आदि बहादुमालो भी सतो ने
उनसे धर्मदेश साहित्यक भाषा का
व लोकाकर, जनता की भाषा में
ये भी इसी कारण उनके धर्मदेश
२ पृष्ठ सके।

मात्री भाषा में शिक्षा हो पह एक
नदी वाले सभी शिक्षा शान्ति को

WANTED (1) Senior Clerk:— Must be least passed matric or equivalent examination; must have thorough knowledge in reading, writing typing Hindi, must have experience in clerical work and accounts for at least five years; must be capable in correspondence in English and Hindi independently.

Salary Rs. 80-10-130 EB-130-10-180

(2) Assistant Chemist:— Must be at least First Class I. Sc. or any class of B. Sc., must be conversant in sampling and analysis.

Salary: Rs. 80-10-130-EB-130-10-180

In addition to the salary, the appointed candidate will be entitled to D. A., Provident Fund Free Unfurnished bachelor accommodation, medical aid & bonus in accordance with the Company's rules.

Apply to the Officer on Special Duty, Bikaner Gypsum Limited, Bikaner on or before 20th August, 1956, stating age, qualifications, experience etc. Interview of Selected candidates at their own expense.

Yours faithfully,
for Bikaner Gypsums Ltd.
Office on Special Days

का प्रत है। इस में इसीलिए दोटे २ लोकियों द्वारा भी शिक्षा की व्यवस्था है और इसीलिए यहाँ शिक्षा प्रचार बहुत अच्छी दी गया ग्रीष्म वेळियों में भी अच्छा साहित्य निकी होने वें वें भी अच्छा हो गया है।

राजस्थान के कुछ नेहायों आदि को जब पाठ्यक्रम में भय आज्ञायानी की स्थान देने को बहुत गम तो उहोने पाठ्यक्रम की पुस्तकों का आधार बताता था। वर वास्तव में पाठ्य पुस्तकों का बैनर होना न बहुत लम्बे समय का काम है और न इतना कठिन है। सरकार राज्यानी भाषा की पुस्तकों को स्वीकृत कर ले तो बहुत संकेतान्वयन में कूद आयेगा। हमने वापिसिक बच्चों में शिक्षा तो प्राप्त्यानी भाषा में ही हो इस पर लोर दिया तो बहोने कहा कि इसके लिए बाप वापिसिक पाठ्यपुस्तकों तैयार करिये। ऐसे तो भी राजकरणी भाषोंना ने मारवाड़ी पट्टी पुस्तक, दूधरोड़ी तथा तुमक तैयार करके संस्कृत, इंग्लिश में प्रधानक भी भी और झाघपुर की आवध समाने भी अपनी पाठ्यालालों में चालू कर दिया और अन्य जोनों ने भी अपनाई। इस लिए बनाई पाठ्य आवृत्तयां संस्कृत, इंग्लिश में प्रकाशित हुई। इस प्रकार उनका प्रचार होना सोकार का सुनक है जबका ने इनको अन्य नाया सरकार भी अवश्यानी तो आज राज्यानी भाषा की यह अवस्था नहीं रहती। इन पुस्तकों को प्रकाशित हुए ५०-५५ वर्ष हो एवं इस लिपि प्राप्ति ग्रन्ति से लिखी जाएगी भालो आवश्यक समझ बोकानेर में बाबी

निरोपदात्रों व बैठीप्रधानी साक्षियों में दो प्राप्तिक पुस्तकें तैयार की। जयपुर में भी बाबत सारखत ने उनकी बोल शिक्षा विभाग ने उनकी पूछ नहीं की इसकिए ये ही नहीं है। और आगे भी काम कर गया है।

इसी तरह योइ शिक्षा भी राज्यानी में हो सकती है और इसके लिए यहाँ तुम्हारा पुस्तक भी राजकरणी आधारों के हुए अंकों में केसर जयवास्त्रांग भी आधारों ने राजस्थान के नाम से हिल्ली है। विलये राजस्थान की भूमि इतिहास, आर्थिक विद्याएं और संस्कृति विषयमें जल्दी आदि भी विषय हैं युवार एवं चेत्य इत्य है। इस पुस्तक को भी योइ शिक्षाविधानी द्वारा स्वीकृत कराने का प्रयत्न चालू है पर लकड़वा नहीं मिली है।

राजस्थान में अधिकांश शिक्षा विभाग के अधिकारी और वायन-संचालक पाइर के रहे हैं। इसलिए जब भी राजस्थानी को अधिक व्याज देने का प्रयत्न आया, वह नहीं मिला है। अब हम पुनः राजस्थान सरकार द शिक्षा विभाग का नाम इस प्रदत्त-पूर्ण व आवायवर्यक कार्य को ओर आकर्षित करते हैं। आया है ये इस समरया पर गवर्नराता दे विचारकर जहाँ जहाँ व वितना अधिक राजस्थानी भाषा को स्थान दे सके प्रयत्न होंगे। प्राप्त हो राजस्थान के विचारविद्यालय का भी व्यास आर्थिक वाहाना में भी राजस्थानी भाषों को स्थान इत्या नाम। यान्त्र की शिक्षा व साहित्य की अनुभूति इसी के द्वारा शोष हो सकेगी इसे लिए जोर दे रहा है।

★ ★ ★ ★ ★
मुक्तिस के लिए मौसमे वरसात वला है।

(कवि—मस्तान)

पहला ये बेरा है, ये गुप है या पला है।
मुक्तिस के लिए मौसमे वरसात वला है।
दमबन नहीं जो ये बहुत बालत बहान में।
हुरानत में है जुओं भी हुरानत ज्यान में।
सामो तू कर दे बरबार बरबार में।
आदि वह मुमीयते पारिया यान में।
घोड़ों भी भाज देवे यार पासे बक्का है। मुक्तिस के

बारिया ने भाके बाल दो दलपल बहान में।
बूदों की जर आने क्षमी भाबाज बन में॥
बेठे हैं घर गरीब बच्चों के ब्याज में॥
सोने को जगह नहीं मेरे भवन में॥
ये ये हेठीयता का यह येता बना है॥ मुक्तिस के
अंतम में जो गहे ये छियापिंडि आदत॥
घोडे रहे ज्ञान में दुकाई को घोड़े कर।
गोला हुआ विश्व लो दुकाई भी दूर हो॥
दिलहुआ हूप बनकर तो जाने लगे अन्दर॥
अन्दर का दूर देखा तो रोदय के खिला है॥ मुक्तिस के
अफसोस गवय देख रह गंगी भक्तान ही॥
बढ़ों और यीधी ने गुह लीच लान ही॥
पांसी से तूर तर जो जड़ी दरमियान ही॥
मुक्तों पकी हुई भी अजग अपनी जान ही॥
तंगी को द्वा भी है भाहो जो हवा है॥ मुक्तिस के
बेट्हों से रह रह के हांगे भट्टने बद्दर॥

दंगों के बदन या जो छड़ी मेरे रहन पर॥

बद्दू तू द्वारे पैदा के विश्व ये दर बत॥

मेह घरका चार पटे तो दूर वर्ली रात भर॥

हिस रह रात छाटी गवाह इसका लुदा है॥ मुक्तिस के

शहतोर से जाने जानी दीवारे छिनार॥

बरबोर धा कुर्से जगा राहतीर बेचार॥

जन गिरते हो रहने जानी अलाहाद का नार॥

हमसाइयों ने जोर प्रवाय को यो मारा॥

बली का यो सर उजाए अविक्षिक हो गुण॥ है॥ मुक्तिस के

आया न कमो जीत यो वैगुमे नाजानी॥

दूमने तो गुजारी नहीं आराम ते कमी॥

एह दिल में रमना है तमना है गौत भी॥

चुचडा है तुके अस्ती नाजाम जीन्दी॥

जीता तो इसलिए है कि गर्जे में गजा है॥ मुक्तिस के

गर्जे द्वार अपने रही जान भक्ता त॥

प्रावाह नहीं सहलेंगे गुसीयक ये गुर्स बन॥

विलिस का वस्त्रमा तो है अद्वाह की रहना॥

दलान बाप जाप हो कूटी हुई निमत॥

हम मानते हैं अस्ता यह जौर बचा है॥ मुक्तिस के



जिसी मारवादी भाषा मारवाड़ी ही है इसी दूसरी नहीं

(पृष्ठ ४८, वर्ष) इस भाषा के विवाचों वर्षाई भाषे होने वाला भाषा की भोग्यों के प्रत्यक्षता देकर, पूरी उंचति, वर दीये है। गुबाहारी, भाषाओं हिन्दी, बंगाली इत्यादि भाषाओं की व्याकरण और विवाचों तो अचार योग्य वर्षों में पहुंचकर रेयर हुई है और तेर २ पाठशालाओं में पहाई जावे है। गुजराती में तो अटेताई से प्रभृत्य है कि गुबाहारी री अब विवाचों पदिया जिन नौकरी भी मिले। इसी तरह हिन्दी में पर्याप्त ही परिश्रृंख है। इसी वजह कि मारवाड़ी भाषा भी अब विवाचों वर्षों में काव्यों पोषक के। वज्र के लिए तुलक घेसो नहीं है कि जठर मारवाड़ी जोग नहीं और मारवाड़ी भाषा आपके व्यवहार मारवाड़ी भाषा में होने करे है। मारवाड़ी रा बही लाता, [भिट्ठी परी यारी जिल्ला की मारवाड़ी भाषा में बैही।

अब सेठाकुर रामपिंडी एम. प. नोडि शिक्षा विभाग के शास्त्रीकर रह जुके हैं और शिक्षा संघर्षी जिन्हें कार्यी अनुभव है। इन्होंने अपने विचार दिवाकपुर के खांखल-मारवाड़ी राजस्थानी साहित्य सम्मेलन के उम्मीदि भाषण में व्यक्त किये। शिक्षा संघर्षी भोग्यों द्वारा जायें तो आ मारवाड़ी भाषा रेत तो जैविकी जैविकी निकले, के वे न तो वे हिन्दी जिल्ला पट सके। और न मारवाड़ी पूरी किल पट सके। जिल्ला मने या दम्भेद है के जही

शिक्षा संघर्षी भोग्यों द्वारा जायें तो आ मारवाड़ी भाषा में व्यक्ति रेत जैविकी जैविकी निकले, के वे न तो वे हिन्दी जिल्ला पट सके। और न मारवाड़ी पूरी किल पट सके। जिल्ला मने या दम्भेद है के जही

हिन्दी में हृष्ण लागती। राजस्थानी में साहित्य-रचना रो भाषक अभाष तो जोनी हुये यह या दिनुरिन बहती ही गयी।

शिक्षा री (पहाई ही) भाषा भाषी और भनता ही भाषा न्यारी हुती। पठ्योड़ा में भाषके प्रकृत लागती है। जो भाषतरो दिन-दिन बधते ही गयो। शिक्षा और साहित्य योहा सा पठ्योड़ा जोनां जायी ही समित राज्या—जंगरां सूं बोरो लगाव जापक जाते रहो। पठ्योड़ा जोग साहित्य-रचना करता पर्याप्त भाषी रचनाओं में राजस्थानी जीवनी विशेषताओं जाते ही। राजस्थानी जीवनी पर्याप्त युक्तप्राप्त रे जीवन ने मिली। कुन आवे तो तुकुपान रा, पेह आवे तो तुकुपान रे, पही अवे तो तुकुपान रा। आप और छटव विकसी इण जोग और जेतहा आय ही को जापे नो। जेपन, और हन पणा २ ही हुका भरसे पर्याप्त मोरिया और कुरां रे सरस कलरव ब्रास ही तुलीजे तो तुलीजे। जेलझां रा पनोपान युक्तप्राप्त रे रंग में रंगोजान और ना राजस्थानियों नै। अंवतो

भी हियाने जद रेने रे असली जीवन सूं तुर भर योग्या सा लोगों रे पुठा-हाम और मार्यो दिकात भाव होले सूं जोबले रे जाई बेहो नारवानां भी जावेजावे कोनों लोगों।

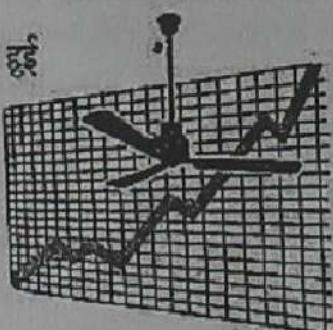
हिन्दी में लिखोड़ी पोथी भाषा-ए जनता और तुलाभा रे बहेवर में जोनी आवे। जोनीजो जो हुये जमता में जिया री बही कमी हुगी। राजस्थानी साहित्य रोप्राप्तप्रयो। राजस्थानी साहित्य नै जाने दिन-दिन गुजार जाताया। यहोड़ा मार्द मारवाड़ा ने गंदारो बोलो बताए लायवा जियो संकुल, अनेकी जयवा झारसी पड़वाहा आज भी हिन्दी—जिनी केवे है। पठ्योड़ा भाषाये ने आज मारवाड़ा सूं सरम आवे। आज इषा राजस्थाना भाषाव नाहा जाता नै हिन्दी दृष्टि जोकली जोनी आवे केवे भी जांकली हिन्दी में ही—राजस्थानी जोनां जात आवे। यारो इसों दोप भी जोनो। वे मारवाड़ा में जोली भी तो चट मारवाड़ी मार्द ही जारी दंबी उप व्यक्त लाग जावै।

राजस्थानी में जोनां ही जावे के। राज्यानी साहित्य नै तो भक्ता पदे हो यो? राज्यानी जलाकार चारण, माट, दारी योग्या रे राज्यानी गावी १०। बहर जहो रेहो सूं जाहित्य रोफक्का बंद हुए जागाये।

(कमश)

इस बदती हुई

उन्नति
के पीछे
कोई
गुप्त रहस्य नहीं



सिर्फ
ही
मामूली कारण है

- १ भारतीय और विदेशी दैनिक जीवन से अम तोर पर जैसा जाता है।
- २ येटर ट्रॉफ रे यक्कु बुल्है।
- ३ पंच भाषाव वही जात जियके होनो और जात जियिंग को हुए हैं।
- ४ तुम्हे जिन्होंने भले जैसे जैसे हुए हैं तो एक दूसरों दे एक्सेम बदले जा सकते हैं।
- ५ यात्रे के हर भीके पर यात्रा की सूची की परस होती है।
- ६ कलाये भी एवं तारकों यात्रा की है।

कैसेल्स, अनन्द,

लोगों और अनन्द वडे

ईन्डियन एक्सप्रेस (राजस्थानी) निविलेट, योर ब्रॉड १४१० रेल्वे ८८८३३३४५४

नोटिस वास्ते जाहिर करेन वजह

१ अदालत चिं० जबी पीकानेर सुखम योक्तामेर इन्द्राजाल सहाय पुत्र ५० रियनाव जनाम महाबोर चिं० व योमिह जात आदालत सा० पीकानेर

मुख्यमा न० २ सू० २५

दरहमात बाबत दिलाने दखल जायदाद जाहीर हुया पर

ब्रनाम	१ इन्द्राजाल पुत्र बुद्धानन जाव राज्यपूत सा० पीकानेर
	२ योमिह पुत्र जेडपल जाव राज्यपूत चाँ० वीकानेर
	पोरजा इन्द्राजाल हरया जाजी साहब रोक्यन जो जा० पाल

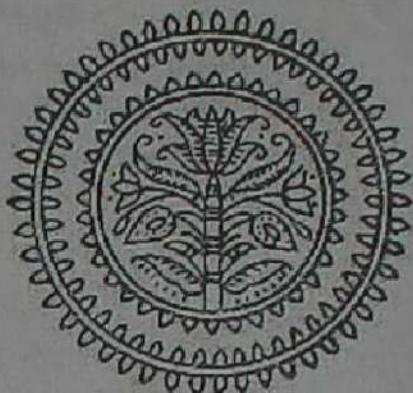
कोरिड सायक इन्द्राजाल उदाय ने इस अदालत में दरहमात पेश की है कि युम सायत जो जाहीर हुया जायदाद एवं कठपा गैर सायदान से दियाया जावे।

जिलाजा तुम्हो इसिजा ही जातो रे जिलारील ११ माह आगत सन् १९५६ वरोज राजियार १०। वजे दिन के अदालत हाजा में असाक्षत या बडालत हाजिर होकर दरहमात के जिलाक दरहम जाहिर को बरना दरहमात मन्दूरा इक्कत्ता सूनी रे जैसका भी जायेवी।

बसल मेरे दखलत एवं पोहर अदालत के भाज ए तारीख १५ माह ७ सन् १९५६ दो जारी किया गया।

ह० सिविल बज

प्राकृतभाषा का एक मात्र अलंकार-शास्त्र : अलंकार-दर्पण अनुवादक-भंवरलाल नाहटा



[प्राकृतभाषा का विपुल और विशिष्ट विषयक उद्दिष्ट प्रकाश में आया है हिन्दू नोड अलंकार ग्रन्थ अब तक प्रकाशित नहीं हुआ। प्रस्तुत ग्रन्थ के अतिरिक्त किसी अन्य ग्रन्थ का अस्तित्व भी विदित नहीं है।

इस ग्रन्थ में अलंकार सम्बन्धी जो विवरण दिया गया है उसके इसका निर्माण-काल ६ बाँ दो दो ११ वीं शताब्दी का माना जा सकता है। रक्षा से कर्ता का पता नहीं चलता। प्राकृत भाषा की अलंकार सम्बन्धी बहुत, एक ही रचना नैयरलमेर जे बड़े शानशाहीर में ताइपशीय प्रति में प्राप्त हुई है।

कवि ने प्रारम्भ में श्रूतदेवता को नमस्कार करके, वाक्य में अलंकारों का वौचिस्थ और उद्देश्य का वर्णन कर अलंकार-शास्त्र रचने की प्रतिज्ञा की है। पठचात् पद ५ से १० तक में वर्णित ४० अलंकारों के नाम कहे हैं। अनन्तर भ्रष्टेक अलंकार के लक्षण एवं उदाहरण दिये हैं। इसमें फलिपद अलंकारों के लक्षण मात्र हैं तो कृतिपद के उदाहरण सज्ज ही हैं। प्रस्तुत अलंकारों की संख्या ४८ होती है जबकि अन्यकार ने पद १० में ४० संख्या का उल्लेख किया है। यह प्रेमातिशय ने चुणोत्तर पर्यंत ६ अलंकारों को एक प्रेमातिशय के अन्तर्गत स्वीकार कर जैसे से ५० की संख्या का वीचित्र छहरता है।

इस ग्रन्थ में विस्तृप्त रसाक, प्रेमातिशय, दशोत्तर, फियोत्तर, गुणोत्तर, उपमाहृषक, उत्प्रेक्षागमक अलंकार अन्य लक्षण-ग्रन्थों में प्राप्त नहीं हैं। ये अलंकार नवीन विभिन्न हैं या किसी प्राचीन अलंकारशास्त्र का अनुसरण है, निश्चय नहीं कहा जा सकता।

१३४ ग्रामाओं की यह रचना जैसलमेर नंदार की ताडपधीय प्रति नं० १२६ में १३ पत्रों में लिखी हुई है। प्रति १३ वीं पत्राद्वीं के पुरावंडे में लिखी गई जान पढ़ती है। इसके साथ काढ़ादर्श भी लिखा हुआ है।

आगमप्रभाकर मुनि श्रीमुण्डविजयजी जय जैसलमेरमंडार का उद्घार एवं सुव्यवस्था कर रहे थे तब में अपने विहान निश्च नरोत्तमदासजी स्थानी के नाम वहाँ पहुंचा और स्थानीजी ने इस महत्वपूर्ण मन्त्र की प्रतिलिपि की। जिसे मुनि श्रीमुण्डविजयजी ने मूल प्रति से भिला कर संबोधित कर दिया। तदनगत भातपुर भंवरलाल ने इसकी लक्षण छाया और हिन्दू अनुवाद का कठिन कार्य ग्रामति सम्पन्न किया। अनुवाद में गुण और कामी रह सकती है। केवल एक नाम प्राकृत के अलंकारशास्त्र का सभी विद्वानों को परिचय हो जाय इसलिये यह किया गया है।

—भारतवर्ष नाहटा]

मंगल और अभिधेय

सुन्दरन्प्र-विष्णासं विमलालंकार-रेत्तिं-सरीरं

सुइदेविअं च कव्वं च पणविश्र पवर-वण्णदृढं ।१।

सुरदर-पद-किंवदं विमलात्मकारतेष्ठित (शोभित) जरीरम् ।

सुतदेवता च काव्यं च प्रणरप्य प्रदर-ब्रह्मदण्डम् ॥१॥

१. सुरदर पददिव्यत (अत्तरेकता के चरण और काव्य के पद) और विमल अलंकारों से सुधारित जरीर वाले शेष शब्दों में बड़ात (प्रधाग यज्ञनीय) सुनादेयता च काव्य की नमम्भाद एवं के सुन्दर पद-किंवदं (पैदों का रहना, गमन, गति) वाली और निषेध व्रतमार्गों (आभूतगों) तो शोभित धरीर वाली और व्येष्ठ वर्ण वाली व्रतदेवीं (ज्ञान की देवी उत्तरवती) को श्रीर मुन्द्र वदों के विन्यामदाले तथा निर्देश अलंकारों द्ये भूषित धरीर वाले और व्येष्ठ शब्दों वाले काव्य को प्रणाम करके—

सम्भाइ कव्याइ राम्याइ जेण होंति भव्याइ

तमलंकारं भणिमोइलंकारं कु-कवि-कव्याण् ॥२॥

सर्वीणि काव्यानि अव्याख्यि येन भविति भव्यानि

तमलङ्कारं नणामोइलंकारं कु-कवि-कव्यानाम् ॥२॥

२. जिसे अभी काव्य अथवा और भव्य (सुन्दर) हो जाते हैं उस अलंकार का वर्णन करते हैं, जो छुकति के काव्यों को गी अलंकृत (तुदीभित) करते चाला है ।

अचक्षतमुन्दरं पि हु निरलंकारं जणिमि कीरतं
कामिणि-मुहूं च कव्यं होइ पसण्णं पि विच्छाओं ॥३॥

गत्यन्त-सुन्दरमपि खलु निरलंकारं जने कियमाणम्
कामिणी-मुखमिव काव्यं भवति प्रसन्नमपि विच्छायम् ॥३॥

३.—जगतमाज में रक्षा (पदा) जाता रुक्षा काव्य, अलंकार रहित होने से अत्यन्त सुन्दर और प्रसाद गृण-पुक्त होने पर जो गिरण दी लोभा रहित होता है उसे सुन्दर स्त्री का पुत्र अलंकाररहित होने से अत्यन्त सुन्दर और विमल होने पर भी लोभा रहित होता है ।

ता जाणिङ्गण णिउणं लविलउज्जद वहूविहे अलंकारे
जेहि अलंकरिधाइ वहु मणिङ्गंति कव्याइ ॥४॥

ततः जार्वा निपुणं लश्यन्ते वहूविधा अलंकाराः

यैरलङ्घुतानि वहु मन्यन्ते काव्यानि ॥४॥

४.—उन्हें अचली तरह जान पर नामा प्रकार के अलंकारों के लक्षण पढ़ी कहे जाते हैं, जिससे अचलकृत दृष्टि वहूविधा वहूविहे होते हैं ।

अलंकारनाम

उवमा-कुवला-दीवअ-रोहाणुप्यास-अदसध-विसेसं
अलसेव-जाइ-वद्वेत-रसिय-गजाओ भणिभाओ ॥५॥

उपमा-कुपक-दीपक-रोधानुप्रास-अनिवाय-विदीवन्
आधेन-जाति-धर्मतिरेक-इतिक-पर्याया भणिताः ॥५॥

५.—उपमा, कुपक, दीपक, रोध, अनुप्रास, अनिवाय, विदीवन्, आधेन, जाति-धर्मतिरेक, इतिक, पर्याय कहे गये हैं ।





जहासंख (ज) समाहित-विरोह-संसद-विभावणाभावा
अत्यन्तरणासो-अण्णपरिवरो तह सहोती अ ।६।

यथासहृष्ट-समाहित विरोध-संशय-विभावना-भावा
अभिनन्दन्यासोऽन्यपरिवरहस्या सहोवितज्ज्ञ ।७।

६—यथा-संख, समाहित, विरोध, संशय, विभावना, भाव, अर्थान्तरग्न्यास, परिकर तथा सहोकित ।

उज्जा अवण्हयइओ पेम्माइसओ उदत्त-परिवर्ता
दबुत्तर-किरिउत्तर-गुणुत्तरा बहुसिलेसा अ ।८।

ऊर्जा अपहु नुति प्रेमातिशय उदात्त परिवर्ता:
द्रव्योत्तर कियोत्तर-गुणोत्तरा बहुइलेवाहच ।९।

७—ऊर्जा, आहनुति, प्रेमातिशय, उदात्त उरिवल, द्रव्योत्तर, कियोत्तर, गुणोत्तर बहुस्लेष (अलंकार) हैं ।

बयञ्जे- थुई (ह) समजोहआहम-अपत्थुअपसंसा अ
अणुमाण आयरिसो उपेक्षा तह अ संसिद्धी ।१।

ब्यपदेश स्तुति समज्योतिताविका प्रस्तुत-प्रशंसावच
अनुमानमादर्शः उत्प्रेक्षा तथा च संसिद्धिः ।१।

८—ब्यपदेश, स्तुति, समज्योति, अप्रस्तुत प्रश्नया, अनुमान, आदर्श एवं उत्प्रेक्षा तथा संसिद्धि ।

आसीसा उवमा-रुवअं च जाणह णिअरिसिं तह अ
उपेक्षा च अ (ओ) भेज वलिअ जमयेहि सजुत्ता ।१।

आशीर्वाणमारुपकं च जानीत निदर्शनं तथा च
उपेक्षा (वयवः) उद्दिद वलित च भेद वलित-यमकः संयुक्ता ।१।

९—आशीष, उपमा रुपक तथा निदर्शना एवं उत्प्रेक्षा, अभेद उपेक्षा (वयव) (उद्भव) वलित तथा यमक
सहित (अलंकार) जानो ।

बेतिअ-मित्ता एए कवेमु पडिट्ठिया अल कारा
अहिया उवक्कमेण वीसाओ दोणिं संखाओ ।१०।

एतावामात्रा एते काव्येषु प्रतिष्ठिता अलंकारा
आव्याता उपक्कमेण द्वाविशत्संद्याताः ।१०।

१०—काव्यो में इतने ये अलंकार प्रसिद्ध हैं, जो उपक्रम से वाईश अलंकार कहे गये हैं ।

उपमा अलंकार

उवमागेण जा देसकालकिरिधावरोहपडिएगं
उवमेअस्स सरिसअं लहइ गुणेण खु सा उवमा ।१।

उपमानेन या वेश-कालकियावरोध प्रतीकेन
उपमेयस्य सदृशतां लभते गुणेन ललु सा उपमा ।१।

११—जहाँ देश, काल, किया और अवरोध के प्रतीक रूप उपमाग के साथ उपमेय की गुण से सहजता
प्राप्त होती हो, वहाँ उपमा अलंकार होता है ।

परिवर्त्यु गुणकलिया असमा माला अ विउणहया अ
संयुक्ता, गूढा, संखला, सिलेसा, अ दरविअला । १२।

प्रतिवस्तु गुणकसिता अ-समा माला विगुण-हया च
सम्पूर्णा गूढा भूँखला च लेजा च दरविकला । १२।

१२—प्रतिवस्तु, गुणकसिता, असमा, माला, पिमुणहया, सम्पूर्णा, गूढा, शूखला, इलेपा, और दरविक(ग)ला।

अेयकलकमा, पसंसा, तलिल-डा, णिदिला, अइसआ अ
सुइमिलिथा, तह (अ) वि अधियमा अ सत्तरह उपमाओ । १३।

एककमा प्रशंसा तलिलसा निनिदिता अलिदया च ।
अुतिपिलिथा तथा (च) विकलिपका च सत्तदश उपमा: । १३।

१३—एकमा, प्रशंसा, तलिलपा, निनिदिता, अलिदया, श्रुतिमिलिथा तथा विकलिका में १३ प्रकार की उपमाएँ हैं ।

उपमा के भेदों का लर्णन

पठिव-यु अेसा उथमा जा होइ समाण-वस्तु-हया अ
इव-मिद-पिवाइरहिआ विसरिस-पुणपरचु (च) आहिंतो । १४।

प्रतिवस्तु एपा उपमा या भवति समानबस्तुहया च
इयमिवामि वादिरहिता विसदृग्गुणप्रत्ययेभ्यः । १४।

१४—प्रतिवस्तु उपमा यह है जो जगत् वस्तु रूप होती है । यठ इय, मिव, (प्राकृत में) अपि, या आदि तात्त्वव्याचक शब्दों से रक्षित होती है, तथा विवहया (उपमान) गुण वाले शब्दों के लाभित (संयुक्त) होती है ।

पठिवत्यूवमा जहा (प्रतिवस्त्रूपमा यथा)

संपत्तिवग्गमुहा थोवा पुहवीय होंति णरणाहा
महुर-फना-(य) सकुमुमा लिणिद्रूपता तरु विरला । १५।

संप्राप्तविवर्गमुहाः स्तोकाः पूयिव्यां च भवन्ति नहनाथाः
मधुरकलाइव सकुमुमाः लिनव्यपत्राहतरवो विरलाः । १५।

१५—इस पृष्ठी पर गुम्भर पुणा और मधुर कलों से युक्त यिकने पत्तों याले दल विरल ही होते हैं (वेदे ही) विवर्ण (धर्म-भवं-काम) के सुख को प्राप्त नरेन्द्र (राजा) नी पृष्ठी में थोड़े ही होते हैं ।

गुणकलिया सा भण्ड गुणेहि दोहि पि सारेसभा जत्थ
उपमेओ किर जीओ उपमाण होइ सा असमा । १६।

गुणकसिता सा भवते गुणः हयोरपि सदृशता यत्र
उपमेयः किल यथयुपनानं भवति साऽसमा । १६।

१६—गुणकलिया उपमा वह है, जहाँ (उपमेय और उपमान) दोनों के गुणों में गहरता हो । और जहाँ उपमेय उपमान को निश्चय ही जीत लेता है, (यहाँ) वह उपमा उपमा होती है ।

गुण-कलिआ जहा—(गुणकलिता यथा)—

धंपथलइव णवकुमुम-पुंदरा सहड विभकडइव
वच्छत्यलम्बि लच्छी तमाल-णीले-महु-महस्त ।१७।
चम्पकलतेय नवकुमुममुन्दरा झोभते चित्यकांउरिय
बक्षःस्थले सक्षी तमालमीले मधुमयस्य ।१७।

१७—विन्याचल की कटि में जये फूलों में मगोहर चम्पकलता की तरह, तमाल की तरह नील मधुमय (विम्ला) के वल्लथल के ऊपर लहरी गोभित होती है।

असमा जहा—(असमा यथा—)

जोष्टह-णिमल-लाअ-णवसरि चिवइयतयलभुआणा (इ)
तुह तुजभ व्व किसोआरि ! समाण-लआ जओ णरिथ ।१८।
ज्योत्तना-निर्मल-लायण प्रसारि चर्चित (विमूर्चित) सक्ल नुवना (नि)
त्वं तय इय कृशोदरि ! समानह्या जगति नास्ति ।१८।

१८—हे हुशोदरि, चन्द्रिका के समान चिम्ले लायण कंडा कर सारे जगत् की सुगोभित (प्रकाशित) करने वाली तेरे समान रूपवाली जगत् में (अन्य) नहीं है। तेरे समान तु ही है।

सा भाला उवमाणाण जत्थ चिविहाण झोइ रिछोली
वित्त लरिसोवभाओ विजिम्बिमआ विउणरूखिति ।१९।
सा माला उपमानानां यत्र चिविधानां भयत्यावालिका ।
विगुण लद्वोपसायां विनिविता विगुणरूपेति ।१९।

१९—जहाँ दिविधि उपमानों की आर्यलिका (उदूह) हो बहाँ मालोगमा होती है। विगुण वर्तु के उद्धर उपमा होने पर विगुणलगा उपमा बनती है।

वालोवभा जहा—(वालोपभा यथा—)

हरि-वच्छु व सुकमले गवण' व भयन्त-चूर-सच्छाअं
साअर-जल' व करि-मथर-सोहिं तुह पर-हार' ।२०।
हरियथ इव सुकोमले गवणसिव भयन्त लूर सच्छायं
सामरज्जलमिव करि-महर-शोभितं तव गृहद्वारम् ।२०।

२० तुम्हारे वर का द्वार हरि के वल्लथल की तरह नुवोमल (मुलायम) भयन फरती हृई सूर्य की बागा वाले आकाश की तरह कालियुक्त श्रीर हाथी तथा मगरान्धों में सुशोभित सगुडबल भी तरह है।

विउणरूपोवभा जहा—(विगुणरूपोपभा यथा—)

णिव्यावारीकथभुयणप्रडलो मूर-णासिअ-पआओ
णाह ! पओसञ्च तुमं पाउस-सरित्तत्तणं वहसि ।२१।
निव्यापारीकृतभूतमध्डलः गूर्धनाशितप्रगात्रः
नाथ ! प्रदोष इव एव प्रावृत्तसुदृश्यं वहसि ।२१।

२१—हे नाथ ! लाए भूमध्डल को कियाधून्य करने वाले और सूर्य के प्रगात्र को नष्ट करने वाले, अन्धेरी रात की तरह पावस (वर्षाकृष्ट) की सगानता धारण कर रहे हैं।

ण हु ऊणा ग हु अहिभा जा जावइ सा हु होड संपुणा
जा उण समास-नीणा सा गूढा भण्णओ उवमा ।२२।
न खलूता न खल्यधिका या जायते सा खल्नुब भवति सम्पूर्णा
या पुनः समासत्तीना सा गूढा भण्णते उपमा ।२२।

२२—जो न तो न्हून हो और न भविक हो, वह तथ्याणि उपमा होती है, जो समाधार्मित हो, वह गूढ़ा उपमा कही जाती है।

संपुणा जहा—सम्पूर्णा यथा—

सोहसि वबगेण तुमं केअइकभ्युलिलधासणाहेण
कमलेण वि पासटिठओण मुद्रथ (उ) अहं सेण पसवत्यि ।२३।
शोपसे बदनेन इव केतकी दणिका सनाथेन
कष्मेना अपि पासवैस्तेन भुग्नकहसेन प्रजस्तः (एव अस्ति) ।२४।

२३—मुख से प्रशस्त तुम ऐसे सुश्रोभित हो रहे तो जैसे केतकी और कनेर से गूँकत कमल के पास मुद्रथ हैं स्थित हो।

गूँठोवमा जहा—गूँठोपमा यथा—

कह पाडिहिसि किसोअरि दइअं थण-अजलत लेजणीससिरि
रंभा-गदभोहणिथ-द-भार-मसिणेण गमनेण ।२५।
कथं प्रतीक्षासे कुव्वोदार ! दयितं स्तनालस्थजेपथीतथीके !
शदभागज्ञोर्णानतम्भ-भारमगृणेण गमनेण ।२५।

२५—क्षदर्शी-गर्भ की तरह कोमल उन बोर निष्पत्र के भार ने कोमल गति के कारण रुतनों को आलस्यवश फिराने से गोवा प्राप्त है कृशाद्यि ! अपने प्रियतंत्र दी रुमों प्रतीक्षा कर रही हो ?

उवमा-वयेहि उत्ति दिडि (दि) रइअंहि संखला होइ
उवमिज्जइ उवमेओ जेसि लेसाण सा लेसा ।२५।
उवमा लचोर्नि: उदित्तर्विधिरचित्तः शृङ्खला भवति
उपमीयते उपमेवो येवा लेसानां सा लेबा ।२५।

२५—जहा विवि गुर्वेक रवे दूष (जमाए दूए) उपमा शब्दों से उक्ति कही जाय, वहाँ शृङ्खलोपमा होती है। वहाँ उपमेय इवेषों (विस्तृत शब्दों) दारा लगायित द्वाता हो, यहाँ इलेगोपमा होती है।

संखलोवमा जहा—शृङ्खलोपमा यथा—

सम्भस्स व कणअ-गिरी कन्चण-गरिणु व्व महिअलं होइ
महि वीडस्सवि भरवरणपच्चलो तह तुमं चेथ ।२६।
स्वगंस्येव कनकगिरि-फञ्चनगिरिणेव इव महीतलं गवतु
नहीपीठस्य अपि भरभरणप्रत्यलस्तमा त्वं चेव ।२६।

२६—(यह) मूत्रस्त्रयों की तरह फनकगिरि और कन्चनगिरि का-रा (शोता) हो जाय। (योंकि) तुम ही महीपीठ के भी भार को धारण करने में समर्थ हो।





लेसोबमा जहा—श्लेषोपमा यथा—

सो संसारो असमो चलपेन्मो जो जणो मुहूर्यो सो कि
भासह संसारां जव जो (व्यणवद) न रिद्धीती ।२७।
तः संसारोऽ समश्चतत्प्रेगा यो जन. मुभगः तः किः ?
भासते संसारे नवयोवनवतीनामावस्तिका ।२७।

२७— पह संसार (रास्तक सार बाला भी) वयम है (विषय है या विषम-शान्ति रहित है) जो मनुष्य चहित प्रेम बाला है, (जिसका प्रेम औस्तर) है तरह कौसे (मुहूर्त) भाग्यबाली है ? (उन्हें) रंगार में नवयोवता चिन्हों का मुण्ड ही (चारों ओर) दिखाई देता है।

सु (र) सरिसमा प्रेषेवं वियलइ सञ्चेव होइ दरविअला
अेवककमोवमाणेहि होइ अेवनावकमा णाम ।२८।
मुरसरित्समा प्रेषेवं विगलति सा चंव भवति दरविगला
अेकमोवमाणेस्यति एकमां ताम ।२८।

२८— (जो) गंगा के मध्यान डाली हुई चोज निगल जाती है (अपने अन्दर तमा लेती है) वह वर्विकला उपमा होती है। और जहाँ एक वर्ग से उपमान हो, वहाँ एकमां नामक उपनाम श्रोती है।

दर विघ्ना जहा—दर विकला यथा—

पीणतथणी सरुआ पहपेसिअलोक्रणा सह-कंठा (सउककंठा)
निहियव्व दारलग्ना ण चनह तुह दंसणासाए ।२९।
पीतस्तनी स्थरूपा पथप्रेषितलोचना सोत्कण्ठा
लिलितेव दारलग्ना न चलति तय दर्शगाज्ञाये ।२९।

२९— तुम्हारे दर्शन की आशा से पीतस्तनी, हृषवती, मार्ग में आखे चिछाई है, उत्कण्ठा (और) चिन लिखित की तरह द्वार पर संलभ (सिवर लड़ी हुई) नागिका विचालित नहीं हो रही है।

अेवकवकमा जहा—एकमां यथा—

एअह विमलाओ दोषिण वि विद्वृहजणे (हि) णिवुड़-करालो अ
ओ दककम सरिसाओ तुह कित्ती तिथससरिमा अ ।३०।
प्रहृति विमलादृपोरपि विद्वृहजनेः निवर्पस्ति-कराइच
अेकमप सदृशास्तव कीतित्विदगदवृजाश्च ।३०।

३०— प्रहृति से निमंल तथा दोनों लोक के विद्वृह (विद्वान् या देव) जनों द्वारा प्रकट की जाने भाली एक-अम के सदृश तुम्हारी कीतियाँ देवताओं भरी दी हैं।

णिराओ सतहिउजइ उवमेओ जत्य मा परासति
अणुहरइ अद्वारेण जा सत्य (चित्त) अ होइ तलिनच्छा ।३१।
निन्दया वित्त्वते उवमेयो यत्र सा प्रशंसेति
अनुहरत्यतिवयेन या सा देत् भवति तलिनसा ।३१।

३१— जहाँ उवमेय निन्दा के साथ इलिन होता है, वहाँ निनदा-वर्णंसापमा श्रोती है। यदि वह अतिशय हो तो तलिनसा उपमा होती है।

गिदापसंसा जहा—निन्दाप्रवासा यथा—

तुह संडस्त व णरवर ! भुजइ भिड्वेहि पाइडा लच्छी
हिभआइ काथरस्त व वधणिउजमओ ओमरइ ।३२।

तब वधुलये नरवर ! भुज्यते भूष्यः प्राकृता लक्षोः
हृदयेन कातरस्य दद्य वसनीय-वयेन अपसरति ।३२।

३२—हे नृपति ! हृदय से कायर नरुमाल की तरह निम्दा के भय से भासो भाषने पर तुम्हारे प्राकृत (नैसर्गिक) लक्षों का उपर्योग अनुचरों द्वारा किया जा रहा है ।

तलिलध्योवमा जहा—(तलिलध्योपमा यथा—

पाउसणिसामु सोहइ जलप्पहाणेहि पूरिआ पुहई
चलविज्जुवलय-वाडग णिवडिअ खण्ट (गवलत्त) सरिसेहि ।३३।
प्रावृद्धमिशामु शोभते जलप्रयाहिः पूरिता पृथ्वी
चलत्विज्जुत्वलयादननिलतितनधनवसदृशः ।३३।

३३—यथों की रात्रियों में चरन विजली रूपी कंकणों के दग्नने से निरतो हुए नक्षत्रों के समान जलप्रथान (मेघों) से पारपूरित पृथ्वी तूतोभित होती है ।

उवमेऽनो ण (गि) दिजड दुइ-ववअेसेग जत्थ सा गिदा
अहसअ भणिआ सन्त्विध अहस (इ) आ भण्यअे उवमा ।३४।
उपमेयो निन्दाते स्तुतिव्यपदेशेन यत्र सा निन्दा
अतिशाद गणिता सा वेव अतिशयिता भण्यते उपमा ।३४।

३४—जहा स्तुति के बहाने से उपमेय की निम्दा यही जाती है, वहाँ निन्दोपमा होती है । और जहाँ अतिशयोक्ति रूप से उपमा यो जाती हो वहाँ अतिशयिता उपमा कही गई है ।

सुअ-गिदोवमा जहा—श्रुतनिन्दोपमा यथा—

तंयोन-राअ-पिलिअ-जणेण अहरेण सोहसि पओसे
दरपरि (गि) णअ जंवूहलकनितसरिसेग पि 'ह' अतिथ ।३५।
ताम्बूलराममिलिताद्वनेन अवरेण शोभसे ग्रदोये
दरपरिणतजन्मवृक्षलकानितसदृशेवापि जलस्ति ।३५।

३५—तुग ताम्बूल (पान) के (लाल) रङ्ग के साथ अंगन (काढन विन्दु) मिले हुए थोड़े पके बामुनों (जमूनलों) की कान्ति के समान होठ से अंगरात्रि में (ही तरह) शोभायान हो रही हो ।

अइसइयउवमा जहा—अतिशायितोपमा यथा—

जोण्हाभअसरणाग्रतिगिरसमूहेहि णिजिभगिभकं
सेविजड वक्षणं सास-गौध-सुद्धेहि भरतेहि ।३६।
उथोस्त्वाभयवरय गततिनिरसमूहेनिजितम् गाद्यम्
सेव्यते वदनं इवासगाम्यतुव्यं भरतं ।३६।

३६—(तुम्हारा) चम्कया की ओसने वाला नुव चम्किला के हर से अन्धकार-नमूदू की सरण आए हुए ब्रात की यथा में लुध्य छमरों द्वारा सेवन किया जा रहा है ।

जा सरिसअंहि बड़मह सर्हि हि सा हि होइ गुइमिलिआ
ओ एकाणिकाचिअच्छणमेओण विलिपिआ दुविहा । १७।
या तद्वाः वस्ते धर्मः सा हि भवति शुतिमिलिता
एकान्तरक्षितहमेरेत विकलिपिआ द्विविहा । १८।

१७—यो उपमा समान तद्वाः इत्या यद्य होती है वह शुतिमिलिआ शांति है। एक अनेक वादि विकलिंगों के भेद ने विकलिपिआ दागा था प्रशार की है :

शुहमिलिलितोपमा यथा—

दद्धुण पर्यक्तं लंदो बहित्रं मणोहरं कव्यं
दिलज्जु खणो विअभद्र दूसद् दोक्षं अपेक्ष्यतो । १९।
शुहमिलिलितोपमा यथा—
स्तुत्वा वरकल्पय चक्षः प्रत्यं चतोहरं काव्यम्
स्तियते दद्धो विनुभवते दूषयति दोगमप्रेक्षमाणः । २०।

१९ शूबरे का व्यवहार परिवर्तनोद्धार नीकी देवदार दुर्द पुराण (उर्मि प्रकार) विना होता है, (वित प्रकार) शूबरोद्ध ननोद्धार गायत्र वो देवद दुर्द दुर्द याता है। यह (विंसि प्रकार आ) दोप न देवते हुए भी दोप निकालता है और यशस्ता (यहा) है।

अक्षत्यविधिविश्वोपमा यहा— एकम विकलिपिलोपमा यथा—

परिभ्रमण वहि गिवृचित्त लंपोडिअ वहुलरेभुणिलद (? न) अं (आ) वा
पहु अण्ड वंसा 'अ (ए) व' वाआवता मुणित्तर्ति । २१।

परिभ्रमण धर्मी (?वाचु) निर्वृत्ति तम्पीहत्याकृतरेषुनिधदा या
नव्यसि वादतश्चंगा एव वातावत्ता मःवन्ते । २२।

२१ चरदार मारते हुए वागु दागा गिलार्दत गीत वहुत यो वालू के द्वे यो उम्मीदित करते हुए भनम धोय ही आकाश में (पगनपुर्मो) शानावत्ते (अन्यत) माने जा रहे हैं।

बहुहा विअवित्तवदा यहा— शूहरा विकलिपिकोपमा यथा—

सुरभिष दाव जल इव्व त्रोलित णहयरं वभरसं य
परिभ्रम (?-न्दि) जिगिअरेण य तमेण कसिणीकवं राथसं (ल) । २०।
मृद्ये दाव जलधिरिव धूलितो नभव्यरं वज्जरतमिव
विचमनिताकरेण तमसा कृष्णोकृतं लक्ष्यम् । २१।
उदमा अभ्युप रामां— उपमा लक्ष्य रामाठम् ।

२०—दिलुकी रामि के जिगादार के अन्वदार ने मानो गवको काला पर दिया है, ठीक उसी प्रकार जीते चूर्म में दामालि वाले शहुड दो लक्ष्य आदावदारी धारत को उच्चे दिया है।

हृषक अनंतकार

उवमाणेषुवभेदन्स जं च रविउभ्ये विरुद्धिं सु
दद्य-गुण-सम्प्रभं तं नर्णति इह रुद्धं कद्दो । २२।

उपमेन उपमेयस्य यत् च इच्छिते विषयितं तत्
द्वय-पूणसम्मतं तत् भगवित इह संषेकं कल्पः ।४१।

४१—जहाँ उपमान के द्वारा उपमेय या प्रत्यरूप सम्मत स्वरूप निरूपित दिया जाता है, उसे लिख लकड़ कहते हैं।

तं चित्तं दुविहं जाग्र इ समस्थपत्वविरजएऽबणिर्ज
पट्टां वीरं अवकेदक देसवारसंठिं होइ ।४२।
तच्चेय द्वि-चित्तं जावसे समस्तगदायेऽविरचनाजनितम्
प्रथमं द्वितीयं अकेकं देश परित्यन्तितं भवति ।४२।

४२—वह (लकड़) दो प्राप्तार का डोता है, एक समक्षा परार्थ-रचना से जनित होता है और दूसरा एक-एक देश (वंच) रचित होता है।

मेघा एगमेहिं चित्तं हरितन्दाएहि रुद्र आणक्या
अत्थो लगिज्जह छित्रं सथसे अर रुद्र आहि तो ।४३।
भेदनासूस्तिचर्चयं हरितचद्धायेः स्वयकाणां कृताः
अथो लस्यसे चेय सकले तर रुपके रतः ।४३।

४३—हरितन्दायाधाराने (सुन्दर प्रभावाने) नामों के द्वारा रूपकों के अंतर को लिख दिये जा रहे हैं। इसमें एक नाम (सर्वांग) और विरुद्ध (एकांग) रूपकों के द्वारा अंतर पाया जाता है।

सअलवत्यू रुअथं जहा—सकलवृत्तुरुपकम् यथा—

गवण-सरोयं पेच्छह पाउसमिम तमुकिरणकेसरसदाहं
ताराकुमुम मिवदणं महभरणमउन् समदकगद ।४४।
गगनसरोवं प्रेसस्व श्राव्युषि तमुकिरणकेसरसनाथम्
तारा कुमुमसिव यन्महाभरण मुहुलं सनातनति ।४४।

४४—यर्पोन्दृतु नै नूठन (पञ्चमे) किरण रुद्री के प्रमाण से गुप्त गवगल्पी सरोज तो देखो, जो महाभूदण का गुकुल (कली) के समान सारा रुद्री फूलों के बन को आकांक्ष कर रहा है।

अेकेकदेसरुद्रम् जहा—अेकैकदेशरुद्रकं यथा—

धविरथं पसरिय शाराणि या अणिट्ठविभं पंथिथ-मूमूहो
मारिहइ मं सदहअं पि शिक्किवो पाउस चितावो ।४५।
धविरतप्रमृतधारां निपात निश्चापित विकदमूहः
मारयिष्यति मां सदपितप्रदि निष्कृपः प्रावृष्ट किरातः ।४५।

४५—निरस्तर फैलती हुई (झपती) जलधाराओं के निरात ने गविहों के सूर्य को रंक देने वाला चिरंय पायत-रुद्री किरात गुणे विषयन गर्हित (साथ होते हुए वी) मार द्यावेत :

दोपक अलंकार

दीविज्जति पथाइं अेकाशे चेभ जत्य निरिआओ
मुहूर्मञ्चलग (आ) एवं भवणह दीवि (?व) थं ति-विहं ।४६।



दीप्यन्ते पदानि एकदा चंच यत्र क्रियता
मुखमध्याक्षरतेन भृपते दोषकं त्रिविधम् ।४६।

४६—जहाँ नक़ ली किया से असेक पद दोषित (जांभित) किये जाते हैं, वहाँ दोषक अलंकार होता है। गुच्छ, मठय और अन्त के भेद से दोषक नीत प्रकार का कहा गया है।

मुह-शीवर्ज जहा—मुखदीपकम् यथा—

मूर्सिजंति गञ्चाम भवेण सुहृदा उ असिपहारेण
गद्यतुरथेण तुरआ सोहरगगुणेण नहिलागी ।४७।
भूषयन्ति गजेभ्रा भवेन सुभ्रात्तु यतिप्रहारेण
गतिरपरितेन तुरगाः सौभाग्यगुणेन महिताः ।४७।

४७—जाथी पद के कारण गुणोग्नित होते हैं, मुख तलवार के प्रद्वार से विशुद्धित होते हैं, प्राणे तेज पति के कारण और महिलाएँ सौभाग्य दूष के कारण सूक्ष्मोभित होती हैं।

मञ्जदीपकं जहा—मध्यदीपकं यथा—

नु-कवीण जसो सूराण वी (वी) रिमा, ईहिअं णरिदाणं
केण खलिज्जह विसुणाण दृप्मई भीरयाण नअं ।४८।
सुकवीनी यजा शूरापां वीरता (धीरता) ईहितं नरेद्राणाम्
फेन स्वास्त्यते पिशुनागां दृष्टिं भीहद्यानां यदेः ।४८।

४८—सुकवीनों का यथा, शूरवीरों की वीरता (धीरता) नरेन्द्रों की लेष्टा, चुनतधोरों की दुर्वृद्धि और इरपोकों का इर कोन मिटा नकरा है?

अन्तदीवि(व)अं जहा—अन्तदीपकम् यथा—

सत्थेण बुद्धा दाणेण पतियवा गुरु-तवेण जइ-एिवहा
रण-साहसेण सुहृदा मही-भले पाअडा होति ।४९।
शास्त्रेण बुद्धा दानेन पाविदा गुरुतपता पतिनिवहा:
रणसाहसेण सुसटा महीतले प्रायता भवन्ति

४९—शास्त्र के द्वारा विद्वान्, दान से राजा, उग्र तप ते संयमी पुरुष, युद्ध में साहरा ते सुभट भूतल पर द्वा जाते हैं (व्यापक बनते हैं)।

रोध अलंकार

बद्ध-भणिअं शिरुभद्व जस्ति जुत्तीअ होद्द सो रोहो
पद-बण्णभेदभिन्नो जाथइ नु-विद्वो अणुप्पासो ।५०।
अद्वंभणितं निरध्यति यस्तम् पुकितश्च गवति स रोधः
पद-वर्णभेदभिन्नो जायते द्विविद्युप्रासः ।५०।

५०—जहाँ आधा कह कर सक जाता है, वीर जिसमें द्वितीय होती है, वहाँ रोध अलंकार होता है, पद और वर्ण के भेद से अनुप्राप्त दो प्रकार का होता है।

रोहो जहा—रोबो यथा—

को ण वलइ तेण विणा मा भएसु अ पुलइथेहि पासेहि
अह रहस जंपिआइ हवति पच्छा अपत्याइ ।५१।
को न बन्नति तेन विना मा भणत अपुलकिते: पाईँ. (सह)
अति रहस्य लिपितानि भवन्ति पक्षाद् अपत्यानि ।५१।

५१—उसके सिवाय कौन नहीं बोलता ? अर्थात् सभी बोलते हैं, अप्रसन्न पढ़ोसियों के पास में रहने वालों के साथ यह बोलो । मतलब, प्रसन्न पढ़ोसियों के साथ जफर बोलो । अत्यन्त रहस्य युक्त कथन वाद में अकल्याणकारी होते हैं ।

पा(प) आणुप्यासो जहा—पदानुप्रासो यथा—

ससिमुहि मुहस्स लच्छां यणसालिणि यणहरि पि वेच्छांती
तणुआभइ तणु ओअरि हलिसु ओ कहसु जं जुत्त ।५२।
शगिमुदो मुखस्य लक्ष्मी स्तनशालिनी स्तनधरमपि प्रेक्षमाणी
तनुतातितनुतोवरि हलीमु जोः कथय यत् युक्तम् ।५२।

५२—हे नग्नमुखि, गुद्ध की शोभा को, हे स्तनशालिनि स्तनधर (बाइल) को देखती हुई अत्यन्त कृप्त उदर-वाली, तू सखियों को जो उचित हो, वह रह ।

वण्णामुप्यासो जहा—वणनुप्रासो यथा—

वाथति सजल जलहर जल लव संबलणि सीअल-फंसा
फुल्ल धुअं धुअ कुसुमच्छलंत गंधु दुरा पवणा ।५३।
वान्ति सजल जलधर जल लव संबलन शीतल स्पर्शी
कुलितान्धुक कुसुमच्छलत् पन्धुदुराः पवनाः ।५३।

५३—जल से परिपूर्ण घेवों के जलकणों के गिरने से शीतल स्पर्श वाली एवं खिले हुए अन्धुक के फूलों से निकलती हुई सूखन्ध से परिपूर्ण हवाएं वह रही हैं ।

जरथ णिमित्ताहिन्तो लोआ अेकन्त गोअर वजणं
विरहज्जइ सो तस्स अ अइसअ-णामो अलंकारो ।५४।
यत्र निमित्तेऽरोका अकान्त गोचरं यच्चनम्
विरचयन्ति स तस्य च अतिशय नाम अलंकारः ।५४।

५४—जहाँ किन्हीं निमित्तों से लोग एकान्तगोचर शब्दों की रचना करते हैं, उसका नाम अतिशयालंकार समझो ।

अतिशयालंकारो जहा—अतिशयालंकारो यथा—

जह गंध मिलिअ (अं) भमराण होइ अवअंसा (सं) चंपअ-पसूअं
ता केण विभाविज्जइ कउहल मिलिअं पहं तिस्सा ।५५।



यदि गंध मिलितं भ्रमराणं वावतंसं भवति चम्पकं प्रसूतम्
तस्मात् केन विभाव्यते कुरुहतं मिलितं पथा तस्य ।५५।

५५—एवं सुगंध मिला हुआ चम्पा का फूल अगरों का अमृतण हो जाता है, तो कौन जानता है, उसका (भी) मार्ग कुरुहत मिलित हो ।

विगते विषवत्त देसे गुणंतरेण तु संवु (शु) ई जर्थ
कीरद विसेसपअडणं कज्जेण सो विसेसोति ।५६।

विगते विषक्षदेशे गुणान्तरेण तु संस्तुतिर्यज
क्षिते विशेष प्रकटनं कार्येण सो विशेष इति ।५६।

५६ जहाँ विगत और विषक्षदेश में गुणान्तर ने, स्तुति की जाती एवं कार्य के द्वारा जहाँ विशेषता प्रकट की जाती है वह विशेषालंकार द्वारा होता है ।

विसेसालंकारो जहा— विशेषालंकारो यथा—

जवि तह णिसानु सोहङ विआण तंबोलराकपावदओ
जह पिअथमणीओ पंदुरो वि अहरो पहाअमिम ।५७।
नावि तथा निसानु शोनते प्रियाणां ताम्बूलरामप्रवक्तिः
यथा द्वियतमणीतो पष्टुरोऽपि अधरः प्रभाते ।५७।

५७— प्रियाणों के ताम्बूल (पान) के (लाल) रङ्ग से यक्षत प्रधर (होठ) रात्रि में वैते सुशोभित नहीं होते, जैसे प्रभातकाल में प्रियतम द्वारा पान किये हुए पाण्डु (हलके पान) रङ्ग के अधर सूजोभित होते हैं ।

जर्थ एसेहो व्व स (सं) सी हिंड कीरद विसेस तथा
सो अक्षेवो दुविहो होन्ता अवकंत भेलेण ।५८।
यत्र निषेध इव संसिद्धय द्विते विशेष तृण्या
स गालेपो द्विविदो भवन्त-एकान्त भेदेन ।५८।

५८— जहाँ द्विषेध (वारा ग्रकट करने) की लालता से मिठ करके नियंत्र-स (किया जाता है, वहाँ आदेश-लंकार होता है, जो प्रवन्त योर एकान्त के भेद से वा ग्रकार का है ।

होतव्येथो जहा— भवन्ताधोपो यथा—

जइ वच्चसि ता वच्चसु महु गश्च-दा (दी) ह-विरहमिं-ताविअ तणूजे
वच्चइ तइ समयं चिअ अहवा कह जंपिअ असा ? ।५९।
योद यज्ञसि तदा यज्ञतु मधु गुरुक दोर्घ विरहामिं तापित तनुक !
प्रज्ञति ते समयं चेत् अववा कथं जहिपतमेतत् ।५९।

५९—मनुमात्र (चंद्र) की गारी दीर्घ द्विविदिन के तान से शरीर को सफ्स करने वाले, यदि तुम्हारा समय बीत रहा है और जाना जाहते हैं तो जले जाओ अथवा यह यक्षास दरो ?

अ-क्षकन्तव्येथो जहा— अ-क्षकन्ताधोपो यथा—

लग-पद्मार-दह-दलिअरिउ दजिअ-कुभ-वीहरय
तुअ गदिय अन्त को महिहराण सचालणो होज्ज ।६०।

सद्ग्रहार दृढ़ालतरिपुदलं च कुम्मीठस्य
तद नास्ति अन्तकः महोधराणां संचालनो भवतु ।६०।

६०—तत्त्वार के प्रहारों से दृढ़ालतरि पुदल को और द्वाखियों को पीछों को दलन करने वाले हैं राजन, त्रृष्णारा अता रुद्रे वाता कोई नहीं है। (अतः) तुम राजाओं के संचालक बनो।

होइ सहानो जाई वेरगो (वइरेओ) उण विसेसकरणेण
उथणेण मगेही सआ अन्नेण कुञ्जह कईहि ।६१।

नवति स्वभावो जातिः वेरायः अतिरेकः पूनः विशेष करणेन
कुजनेन मन्यते सवाङ्गयेन बुद्धिते कविनिः ।६१।

६१ स्वभाव जाति घटकार होता है, उसमें कुछ विशेषता पैदा करने से अतिरेकालंकार हो जाता है, उसे पूर्णे ये जनसाधारण हमेशा मानते हैं, और दूसरे से कवि लोग (मनोदो) भमजते हैं।

जाई जहा जातियंथा—

चिर-धरिथ-कलस तोलि (गि) रावाहा जुञ्जलाइ गामतदणीबे
नण्णाइ विलासदिट्ठो भडिट्ठां (ओ) पामरो पुहर्वि ।६२।
विरो धृत-कलस-तूणीर याहुयुगलया ग्रामतदध्या
मन्यते विलासदृष्टो भट्टः पामरः पृथ्वीम् ।६२।

६२—सिर पर कलग भारण की हुई, तथा दोनों भुजाओं में सूणीर सी हुई ग्राम तरणी मानती है कि विलास (कामना) से देखने वाला पामर पृथ्वी पर गिर गया।

वइरगो (वइरेओ) जहा— उत्तिरेको यथा—

दूसह पवा (मा) व पसरो सोमो स (ज)इ अरवलिअपहो तासि
तिव्व जडाउण दोऽण वि रवि रज (ह) र अह अच्छाहा ।६३।
युस्तह प्रभाव प्रसरः तोमो यद्यस्तिवधस्तेवाम्
तोक्त जटायूदां हयोरपि रविरथ रजो हतच्छाया ।६३।

६३—चन्द्रमा यदि कुम्ह प्रभाव फेलाने याता और अस्त्विलित पथवाला यता है तो (उसका कारण) उन तीव्रगामी जटापुओं में दोनों (स्पृह चन्द्र) में से गुर्प के रथ की उड़ने वाली रज की दाया हो है।

पुडिसिगाराइ रसो रसिबो अह मण्णबे अनंकारो
अण्ण ववअेस भणिये विविम्मितो होइ पञ्जाओ ।६४।
रकुट शृंगारादि रसः रसिकः अन नम्यते इलंकारः
अग्न व्यपदेश भणिते विविम्मितो भवति पर्यायः ।६४।

६४—विसमें शृंगारादि रस इषट (प्रगट) हों, यह रसिकालंकार कहलाता है और उसमें किसी दूसरे का व्यपदेश कहे जाने पर (अन्य के विषय में कहे जाने पर) पर्यालंकार यनता है।

रसिग्रो जहा — रसिको यथा—

दूई-विश्वद्ववअणागु वंवाइभर विअंभित्त थदा
पड़इ सउग्णास्त उरे रसन्त रसणा कुरंगन्धी ।६५।



दूती विवाध वचनामुवदा इतरं वित्तमितुं स्तव्या
पतति सपुष्यस्य उरसि रसना कुरञ्जासो ।६५।

६५—दूती के चतुर धनरों से वंची दुई और दूसरे को रोकने में स्तव्य (यमण्डी) रसीली जबान वाली मुगनयनो (नायिका) (किसी) पुण्यशाली के वक्षःखल पर गिर जाती है।

पञ्जाओ भणइ जहा—पर्यायो भणति यथा—

गृहआण गो (? थो) रिलाए रमन्ति (ति) पभडे रथरसं कत्तो
मा कुणसु तस्स दोसं सुन्दरि ? विसमटिठ्ये कउजे ।६६।
गुरुकानों गौर्वम् रमन्ति प्राकृत रतिरसं कृतः
मा कुरु तस्य दोवं, सुन्दरि ! विषमस्थिते काढ्ये ।६६।

६६—गुरुजनों की (बड़े आदमियों की) सुन्दरी में शंखर आदमी ही रतिरस (का सेवन) करता है। इससे है सुन्दरी (ऐसे) विषम परिवितिवाले कार्य में उसको दोष मत दे।

जह णिअं भणइ वहुआ परिवाही पभडणं जहा संसं
कि पुण विज्ञ त्तिगुणं चउगुणं होइ कव्यम्मि ।६७।
यथानोत्तं भण्यते वहुधा परिषाटी प्रकटनं यथासंख्यं
कि पुतः द्विगुण-त्रिगुण-चतुर्गुणं भवति काढ्ये ।६७।

६७—यथासंख्य अलंकार वह कहलाता है, जहाँ वथा कम से वहुधा (प्रायः) परिषाटी (श्रेणी) पूर्वक (शब्द)
प्रकट किये जाते हैं और तो बया कहें ? काव्य में यथासंख्य अलंकार द्विगुण, त्रिगुण और चतुर्गुण (यों तीन प्रकार
का) होता है।

द्विगुणो जहा—द्विगुणो यथा—

हंस-ससि कमल-कुवलय-भसल-मुणालाए णिजिजआ लच्छी
तिस्सा गइ मुह-करमल-नोयण-धमेल्ल-वाहाहिं ।६८।
हंस-शशि कमल कुवलय अमर मुणालानो निज्जिता लक्ष्मीः
तस्या गतिमुखकरतसलोचनवस्त्रिमल्लवाहुभिः ।६८।

६८—उसकी गति, मुख, करतल, नेत्र, केशपाश तथा मुजाओं ने कमशः हंस, चन्द्रमा, कमल, कुवलय, अमर
और मुणाल (कमलदण्ड) की लक्ष्मी (शोभा) को जीत लिया।

तउणो जहा—त्रिगुणो यथा—

जो वहइ विमल वेल्लहल कसण सिअ सरिसिआ विसमिभंको
मुढ़द्य रथणीकर मउसिसंसिथे तं सिवं णवह ।६९।
यो वहति विमल यित्वदल कृष्ण सित सरीसृपान विषमिधाङ्कु
भद्राहिं रजनीकर मौलि संश्रितः तं शिवं नमत ।६९।

६९—जो निमेल विल्वपत्र, काले और सफेद सांपों तथा कालकूट विष और चन्द्रभा को धारण करता है,
जिसके मस्तक के अङ्गभाग पर चन्द्र ल्पी मुकुट आधार पाए हुए है, उस महावेद को नमन करो।

चउम्मणो जहा—चतुर्गुणो यथा—

तीओ सम मठअ-दीहेहि एिम्मला-इङ्ग्रंब धवल सोहेहिं
डसणा हर णवगेहि जिआइं मणि जवय कमलाइं ।७०।

तथा सम सृष्टुक दीर्घः निम्लाताइ धवल शोभः
वशनाधर नयनैः जितागि कणिकावक कमलानि ।७०।

७०—उग (नायिका) ने अपने राम (एक दरीचे) कोगल और दीर्घ, निम्ल लाल और श्वेत छोड़ा वाले दांत, होठ और नेत्रों ते (क्रमशः) बवन नाम की गणि (यीर बहूटी पा चिनुटी) तथा कमलों को जीत लिया।

आःन (णवै) विख्यात पत्र (वन्न ? पत्त ?) सहायसंपत्ताओं समाहितो होइ
गुण-किरिथाण विरोहेण थेस भणिओ विरोहोति ।७१।

अनपेक्षित प्राप्त लहाय संपदा समाहितो भवति
गुण कियाणो विरोधेन एव नणितो विरोध इति ।७१।

७१—जहाँ अनपेक्षित राहायता की सम्पदा प्राप्त होती हो, यहाँ समाहित अलंकार होता है। तथा गुण और क्रियाओं के विरोध के कारण यह विरोधालंकार कहलाता है।

समाहितो जहा—समाहितो यथा—

अस्त्वन्त कुवित्रिविभ अव (म) पसायणत्थं पअड़माणीओ
उइयो चंदो वि ततो अपसरिओ मलवगंधवहो ।७२।

अस्त्वन्त कुपित प्रियतम प्रसादनार्थं प्रवृत्तमानाया-
उदितश्चन्द्रोऽपि तत अपनृतो मलवगंधवहः ।७२।

७२—अस्त्वन्त कुपित प्रियतम को प्रसादन करने में प्रदृष्ट हुई नायिका के भास्य से चन्द्रमा का भी उदय हो गया और मल्याचल की हृषा भी चली गई।

विरोहो जहा—विरोधो यथा—

तुङ्म जसो हरससहर समुज्जलो सअल (य) व(य ?) एिअ दिठ्मवि
मइलं (इ) ण (ह) वइ वर वेरि वीर वहु वअण कमलाहः ।७३।

तव यशः हर लक्ष्यपर समुज्ज्यते सकल प्रवणित दृष्टमपि
मलिनं न भवति (?) वर वेरिवीर वधू वदन कमलावै ।७३।

७३—नुम्हारा थ्रेष्ठ वेरियों की वीरांगनाओं के पुका कमल के समान यश महादेव के (ललाट पर स्थित) चन्द्रमा के समान उज्ज्वल है, वह समस्त जनों की निर्दाओं से दृढ़ होने पर भी मलिन नहीं होता।

उवमाणेण सरूपं भणिऊणं भस्सजे जाहि भेओ
दुइ करणेण संदेहसंसिओ सो हु संदेहो ।७४।

उपमानेन स्वरूपं भणिस्या भाव्यते यत्र भेदः
स्तुति करणेन संदेहं संभितसस्त तु संदेहः ।७४।

७४—उपमान के द्वारा स्वरूप बताकर जहाँ भेद (प्रथमकरण करके) कहा जाता हो, स्तुति करने में जहाँ संदेह का आश्रय लिया गया हो, वही यह संदेह अलंकार कहलाता है।



संदेहो जहा— संदेहो यथा—

कि कमन मिंग (जो) तं सकेसर कि ससी य तत्य मध्ये
दिट्ठं सहि ? तुङ्ग मुहं संसंसरं अज्ञ तदणेहि । ७५।
कि कमलमिंदं ? तत्त्वेसरं ? कि शशी ? न तथ चूयः
दृष्टं साधि ! तय मुहं संसंशयं आयं तदणेः । ७५।

७५—क्या यह अपमल है ? (यह) यह पराग के सहित होता है । तो यथा यह अन्दमा है ? (पर यही यह
तो नहीं है, हे उमि, (इस प्रकार) तुम्हारे मुह को जायं तदणों ने संवेष्ट के भाव देता ।

नित्यं विद्वेऽत्रो किरिद्वा रसिअस्ता वि होइ जच्च फल रिद्वी
भण्णएइ विभावणा सा कव्यलं कार इत्तेहि । ७६।
नास्ति विभेदः पिया रविकस्याऽपि भवति यज्ञ फल रिद्विः
भव्यते विभावणा सा काव्यालंकारविदेः । ७६।

७६—जटीं विभेद (गुणकरण) न हाँ विशारदिक की भी जहाँ फल रिद्वि होती हो, उसे काव्यालंकारविद
विभावणा (बलंकार) कहते हैं ।

विभावणा जहा— विभावसा यथा—

यद्वद्व असितमूलो अणुप (? अ) अरंताह पसरइ एहृमिम
सम्यं गडो (अस्स) वि अकरहो थघो अ विमलो जसो तुङ्गः । ७७।
यद्वत्तेऽसितमूलमनुष्टरान्तमपि प्रसरति नभसि
(स्वर्प) गतस्यापि अकृष्णं अद्यद्व विमलं यशस्तय । ७७।

७७—तुम्हारे इदं जाने पर जो, तुम्हारा अध्येत्तमूलक और अस्तीम यथा आवाय में बढ़ रहा है, (यह)
फेल रहा है, और नीचे (पस्तंकोक में) भी नविन ओर देखत है ।

आनो चिअउ तरहिलअ आज अ सा बाद तं संसज्जिउं
डि (इ) विहो होइ जह तहा साहिं तं णिशामेह । ७८।
अन्यः त्यज्ञु तरडिगि रतां च आझनवादि तं सः संज्ञतिर्तु
द्विविधे भवति यथा तथा साधितं तं निशामय । ७८।

७८—तुमरे चाहे भावरूप को छाँटें, आवायादी उसे करने के लिए सेयार रहता है । (यह) जैसे हो प्रभार
का होता है उसे उस प्रकार सिद्ध किया यथा, उसे सुनो ।

कतद व व्रणाइ चहि अनुओहि उतरेहि णज्ञति
सोउहि तरन्म उद्दि अगृद भावो सआ उतो । ७९।
कति वलवानि पद अधृतं वत्तर्दि तावन्ते
सोऽध्यमत्तरेः यहि अगृद भावः सदा उवतः । ७९।

७९—जटीं कुछ रचन विना उत्तर मुने दृए हो आभ्यमार तकों ढारा जात हो जाए हो, यही यह सदा
अनुद्वान बहुताता है ।

जस्स हण्डीहि अण्णए प इणो पअदिअ जअे जहि अथो
अण्गावथेस-गामो (सो) सिद्धो अत्य आर्गहि ।८०।
यस्य हन्ति हुभ्यो नान्यं प्रकटितं जगति यवार्थं
अव्याख्यपदेश नामा सः सिद्धो अर्थकारे ।८०।

८०—जहाँ जितका अथ अथं जगत् में प्रकटित (प्रसिद्ध) अर्थ का हनत नहीं करता (हटाता नहीं) वह अर्थकारों को टटिट से अन्य व्यपदेश अलंकार नाम से प्रसिद्ध है।

आतुर अलंकारो जहा— अतुरालंकारो यथा—

हा हा विहूध करभलालहिं सुनं इडं
पडिआ गोलातुरेण सरसेण मिसेण हलिअ सो-हा ।८१।
हा ! हा ! विधूत करतला लव्यं सुतं दःधम्
पतिता नद्यामातुरेण सदृशेन मिषेन हलिकरनुपा ।८१।

८१—हा ! (जब) किसान को पुरवधु ने पुन दो जला हुआ पाथा तो हाय डिलाती हुई समग्र बालुर (रोग) के बहाने नदी में गिर पड़ी।

अण्णावथे सो जहा— अय व्यपदेशो यथा—

अण्णे संबंध भोइणि यबवच्छ असेण्णं वइलस्स
आलोओ वत्त (? मेत्त) सुहवो ण कज्जकरणक्षमो लेसो ।८२।
अथे सम्बंधमोगिनि नव वत्सो उसदृशः वलोवहृस्य
आलोक मात्र सुखदः न कार्यकरणक्षमः एषः ।८२।

८२—अन्य में सम्बन्ध का उपभोग करने वालों । वैल का यह असहता नथा बछड़ा सिक्के देखने में मुश्किल है, कार्य करते में समर्थ नहीं।

पुव्य-भणिअसरिसम्मि वत्युणिं भणनं तह अण ? परिअरो
ण स परिअरिओ अत्यं (त) व (र) णासो जहा
पूर्वं मणित सदृशे वस्तुनि भणनं तथा च परिकरः
न स परिकरितः अर्थान्तर न्यासो यथा ॥

८३—पूर्वे कही हुई यदृश वस्तु का वैसा ही कथन करना अन्य परिकरालंकार कठुलाता है। अगर वह परिकरित (उमी अर्थ का कथन) नहीं है तो उसे अर्थान्तरन्यास समझना चाहिए।

विष्कुरइ रवी उअबा अलम्मि णहु अत्थ भहिहर सिरत्थो
ते अंसिणो वि तेअं लहंति ठाणं लहेऊण ।८३।
विष्कुरति रविः उद्याचले नहि वस्त महीधरचिरःस्यः
तेऽस्त्विनोऽपि तेजः लभन्ते स्वानं लव्या ।८३।

८३—सूर्य उदयाचल पर हो चमकता है, अस्ताचल के बिनार पर रहा हुआ नहीं। तेजस्वी पुरुष योग्य रथान पाकर ही तेज पाते हैं।



अणपरिभरो जहा—अन्यपरिकशो यथा—

तुरियाइ (तु) रियगमणो णिअंवभरमन्धराइ खलिपथो

मगेण तीअ वच्चइ पेल्लावल्लीअ तहिंजणो ।८४।

त्यरितातित्यरितपसनो नितम्बभरमंयरातिस्ततिपदः

मगेण स्त्रीः वजति पीड्यन तरणि(ण) जनः ।८५।

८४—शोध्यातिशीघ्र गमन करने वाला, और नितम्ब के भार से मर्द और अनिश्चलित चरणबाला तद्दण जन गांग में रित्यों को धवका ढुक्को करते हुए जा रहा है। ?

वहु वत्तु च्चिभ किरिआ समकालपवासणं स होउत्ति

गुरुवीर जाइ रहओ जाअह उज्जा अलंकारो ।८५।

वहु वस्त्राचितकिदा समकालप्रकाशनं सहोवितः

गुरुवीरजातिरचितो जायते ऊज्जलिंकारः ।८५।

८५—अनेक वस्तुओं के योग्य कियाओं को एक ही समय में प्रकट करना सहोवित कथन होता है। जहाँ महान् दीरों के स्वभाव का कथन होता हो, वहाँ ऊज्जलंकार होता है।

उज्जा (? द्वा) लंकारो जहा—ऊज्जलिंकारो यथा—

दीसत्थ च्चिभ गेण्हसु वह वि (रि) अणा वेग णिविडिय खगं

पहरंतं पडिथ पहरणं मुण्ड करेसु णाससमत्यं ।८६।

विश्वस्तं चेय गृह्णात् वेरिजनावेष-निपोडितं खद्गं

प्रहरान्तं पतित प्रहरणं मन्यते करोतु नाशसमर्थम् ।८६।

८६—वेरीजनों के हीसलों को पराहत करने वाली तत्त्वार्थ विश्वस्त होकर पफड़ो। एक पहर तक गिरे हुए पर प्रहार करो, (वह) नाय करने में समर्थ माना जाता है।

सहोत्ती जहा—सहोवित यथा—

णिद्वाइ समां लज्जा सरीर सो (स्मा) न्ता (भा) इ सह गआ कित्ती

समजे तुह अणुरथणी तीअे वद्धन्ति णीसासा ।८७।

निद्वया समं लज्जा झरीरस्यान्तेन शोभया (?) सह गता कीर्तिः

समये तद अनुरजनी अतीते वद्धन्ते निद्वासाः ।८७।

८७—निद्वा के साथ लज्जा चली गई, झरीर के अन्त के (झरीर शोभा के) साथ कीर्ति चली गई। प्रस्त्रेक रात्रि को समय के दीत जाने पर तुम्हारे निद्वास बढ़ते जाते हैं।

उबमा इत्य णिहविभ णिअडासा अवण्हुई होइ

पीई अह्सयेण पेमाइसबो भणेबव्वो ।८८।

उपमा अत्र (पत्र) निहविता निकटा सा अपहूऽतिर्मयति

प्रीर्यतिशयेन प्रेमातिशयो मणितव्यः ।८८।

८८—जहाँ निकट की उपमा छिंगा दी गई हो, वहाँ अपहनुति होती है। जहाँ प्रीति की अतिशयिकता का ब्रणन हो, उसे प्रेमातिशयालंकार करना चाहिए।

अबण्हुई जहा—अपहूँति यथा—

एहु उच्च विडब संठिभ पहिठकलथंठि कलरवप्पसदो
सुव्वइ वणविलसिअ पुष्पनावमहुरो रवो वेसो ।६१।
त तु उच्च विटप संस्थित प्रधृष्टि कलकणिठि कलरयप्रसरः
धूयते वनविश्वसित पुष्पचाप नधुरो रवो एषः ।६२।

६३—यह ऊंचे गेह पर वैशी हृषि द्वीप (धृष्ट) कोयल के कलरय का प्रसार नहीं है, फिन्तु वन में विलास लाने वाले यामदेव का यह मवूर रव (जगद) सुनाई देता है।

पेमाइसओ जहा—प्रेमातिशयो यथा—

सहसा तुथभिमि दिट्ठे जो जाथो तीथे प (र) हरिसाइसओ
सो जड़ पुणोवि होसइ सुन्दर तुअ दंसणु च्चेअ ।६०।
सहसा त्वयि दृष्टे यो जातः स्त्रिय प्रहर्वातिशयः
स पर्वि पुनरयि भविष्यति मुन्दरं तय दर्शनं चेत ।६०।

६०—सहसा तुम्हें देखने पर स्त्री का जो हृषीतिशय हुआ है, वह यदि पुनः होगा तो तुम्हारा दर्शन सुन्दर ही है।

रिद्धो-महाणुभावत्तणेहि दुविहो वि जाअइ उदत्तो
सो परिअत्तो घेष्पड जत्थ विसिट्ठं णिअ दाउँ ।६१।
ऋद्धिमहानुभावस्त्वाभ्यां द्विविहो इव जायते उद्धत्तः
स परिवर्त्तो गृह्णाते यत्र चेष्टितय तिजं दातुम् ।६२।

६१—ऋद्धि और महानुभावता के भेद से उद्दर्तालिंकार दो प्रकार का होता है। और परिवर्तालिंकार वह कहलाता है, जहां अपनी विषेषता देकर (वताकर) आकृष्टि किया जाता है।

रिद्धो-उदत्तो जहा—ऋद्धि उद्धत्तो यथा—

तुह णर-सेहर ! विष्फुरिथरभणकरिण (किरण) णिवरणासिथतमाइ
भिच्चाणवि दीव-सिहामइलाइ ण होंति भवणाइ ।६२।
तव नरयोवर ! विष्फुरितरत्तकरणनिकरमाजिततमासि
भृत्यानामपि दीप जिला भलितानि न नवनित भवनानि ।६२।

६२—हे नरयोवर ! मुम्हारे भवत चमकती हूई रत्न-किरण राशि से अन्यकार को नष्ट करने वाले होने से अनुचरों (फे वर) की शीर शिखाओं से मतिन नहीं होते।

महाणुभाव जाइउदत्तो जहा— (महानुभाव जाति उद्धर्त्तो—

बेललहल रमण (णि) थणहर पडिपेलिथ विभड वच्छ पीढावि
ण चलंति महा-सत्ता मवणस्स सिरे पथं काउँ ।६३।
विलपकलरमणिस्तनधरप्रतिपीडितविकटवृक्षपीठा अपि
न घलन्ति महा सस्वा मवनस्प शिरसि पदं कर्तुम् ।६३।



प्राकृत-हिन्दो कोश के महान् प्रणेता : पं० हरगोविन्ददास

धी अगरचन्द नाहदा

बीसवीं शती के जैन विद्वानों में पं० हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ ज्ञानाम चिरस्मरणीय रहेगा। 'पाइअहमदमहणग्रो' नामक प्राकृत भाषा का शब्दकोश आपकी अमर कृति है। हिन्दी में प्राकृत शब्दों का यह एकमात्र कोश है। इसके निर्माण में पंडितजी ने बढ़ा कठिन परिश्रम किया था। कलकत्ता विश्वविद्यालय में आपने २० वर्षों तक अध्यापन कार्य कर सुनान् प्राप्त किया। आपका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

गुजरात के सुप्रसिद्ध लेखक श्री जयभिक्षु ने पंडितजी को संक्षिप्त, पर बड़ी ही सुन्दर जीवनी लिखी है जो वशोविजय जैन ग्रन्थगाला, भावनगर से प्रकाशित हुई है। आपका जन्म गुजरात के राधनपुर में सेठ त्रिकमचन्द की पत्नी प्रधानबाई की कुक्षि से संवत् १९४५ की वैशाख सुदी ६ को हुआ था। आपके लघुभ्राता सुनि विशालविजयजी ने साधु-धर्म का पालन कर अपने चंश का गोरक्ष बढ़ाया। उनके भी कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चके हैं।

आचार्य विजयवर्गसूर के प्रयत्न से बनारस में जैन विद्वान् तैयार करने का उल्लेखनीय प्रारम्भ हुआ था। पं० हरगोविन्ददासजी उसी प्रयत्न के महान् सुरक्षा थे। तेरह वर्ष की आयु में बुद्ध-परीक्षार्थ बालक हरगोविन्ददास को सूरजी ने 'अभिधानचिन्ताभणि' के पाँच द्व्याकृ कण्ठस्थ करने को दिये थे। आपने इन्हें पौन घण्टे में कण्ठस्थ करके सुना दिया। इसको सूरजी के हृदय इष्ट अञ्जो छार पड़ो। इन्होंने प्रसंग आगे चलकर आपको महान् विद्वान् बनाने में कारणोभूत हुआ।

आजीविका और व्यापारिक शिक्षा के लिए आप खम्भात गेजे गये। वहाँ सेठ की प्रसन्नता प्राप्त कर वे वम्बई पहुँचे। इवर विजयवर्मसूरजीने बनारस में विद्यालय स्थापित किया तो आपको शोन्ह वहाँ आकर

बन्ध्ययन करना पा। ताप्तरा भणा। सामाजिकसंघ उत्तराखण्ड
द्रव्योपार्जन की बृत्त से हटाकर बनारस (संवत् १९६०) पहुँचा दिया।
आपने बड़ी लगन से विद्याभ्यास चालू किया, इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त की। आपके सहपाठियों में पं० सुखलालजी, पं० बेचरदासजी, न्यायविशारद न्यायतीर्थ मुनिश्री न्यायविजयजी, पं० लालचन्द भगवानदास थे। इनमें से न्यायविजयजी तो स्वर्गवासी हो गये, बाकी आज विद्यमान हैं। प्राकृत, संस्कृत भाषा व दर्शनशास्त्र पर आपका पूर्ण अधिकार था। गुजराती, हन्दी, बंगला पर भी आपका अच्छा अधिकार था। आप न्यायतीर्थ व व्याकरणतीर्थ परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। थोड़े ही दृष्टियों में आपकी प्रतिभा चमक उठी। फलतः पं० बेचरदासजी के सहसंपादन में दिशेषादश्यकभाष्य जैसे गम्भीर एवं विशाल ग्रंथ का आपने सम्पादन किया। पांच दृष्टियों में सम्पादन-कार्य की अद्भुत प्रतिभा छटा दिखाकर पाहनात्य विद्वानों से भी आपके प्रशंसाप्राप्त की।

आचार्य दिज्यधर्मसूरिजी, पं० बेचरदासजी आदि आपकी निःश्वास से बहुत प्रसन्न थे। संवत् १९६६ के लगभग महामहोपाध्याय श्री सतीश चन्द्र दिद्याभूषण के साथ उन दोनों को सिहल (Ceylon) द्वीप भेज दिया गया। बौद्ध-ग्रंथों और पालि भाषा का दिशेष अभ्यास ही इस दिया गया। बौद्ध-ग्रंथों में बौद्धकार्य सुनिश्चित व्यवस्था ही शई। बौद्धन्देश में बौद्धकार्य सुनिश्चित व्यवस्था ही शई। आठ महीने रहकर आपने पालि भाषा के साथ सिहली भाषा का भी आठ महीने रहकर आपने पालि भाषा के साथ सिहली भाषा का भी अभ्यास कर लिया। वहाँ रहते हुए आपने एक-दो बौद्ध भिक्षुओं को प्राकृत वा अभ्यास करवाया और जैनधर्म सम्बन्धी भाषण दिये। वहाँ से लौटने पर बनारस में विविध साहित्य ग्रंथमाला की योजना की और सुरसुन्दरीचरिय (सं० १९७२), सुपाश्वनाथचरित (सं० १९७४-७५) विदेव मंजरी, दिनोदक्षा, सप्तसंधानमहाकाव्य आदि ग्रंथों का सुसम्पादन कर उनका प्रकाशन किया। इससे आपकी रुप्याति देश में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी फैली। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी इन ग्रंथों में से कई ग्रंथों को रक्षान मिला। आपके सम्पादित ग्रंथों की प्रस्तावना दिशेष सहत्यपूर्ण होती थी। इससे मानो आपकी कीर्ति गग नम्रता ज्ञान शरण। सं० १९७० में आपने हरिभद्रसरिचरित्र संस्कृत

इसमें समय कलकत्ता विश्वविद्यालय में पालि और प्राकृत के प्राध्यापक की आवश्यकता पड़ी। अतः सं० १९७४ में इस पद पर आपको नियुक्ति हो गई। कलकत्ता के विद्वत्समाज में आपने अच्छी खगति प्राप्त की। संस्कृत कॉलेज को मैनेजिंग कमेटी के भी आप सदस्य चुने गये।

सं० १९७५ में सुभद्रादेवी के साथ आपका विवाह हो गया। योग्य सहकारिणी बनाने के लिए आपने उसे गुजराती व धार्मिक अभ्यास के साथ संस्कृत की भी शिक्षा दी। कलकत्ता में रहते हुए हो आपने “पाइथ्र-सद्महण्णवो” नामक कोश तैयार किया। इसके निर्माण में अत्यधिक श्रम करने के कारण आपको संग्रहणी और क्षमा को बीमारी लग गई। इस कोश की विस्तृत प्रस्तावना बहुत ही महत्वपूर्ण है। कोश के कार्य से निवृत्त होकर आपने जैन पारिभाषिक शब्दकोश की तैयारी प्रारम्भ कर दी। उसकी पांडुलिपि मित्र शुभकरणजी बोयरा के पास देखने को मिली है। इधर योग को ओर आकर्षण बढ़ा। इसके लिए आप उत्तर में कश्मीर व दक्षिण में तीलगिरि पहुँचे और सन्तोष प्राप्त न होने से नेपाल, भूटान जाने का विचार किया। पर शारीरिक अस्वस्यतावश यह निर्णय कार्य रूप न ले सका।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में आपने २० वर्षों तक शिक्षण-कार्य करके सुनाम प्राप्त किया। अवकाश-नगदृण के समय सर्व सहकारियों व मित्रों को आपके वियोग का कष्ट अनुभव किया।

इधर रोग बढ़ने लगा, पर वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होती गई। अध्यात्मिक ग्रंथों का वाचन-मनन करने के साथ आपने एकान्त में मध्य रात्रि के समय ध्यान करना प्रारम्भ किया। डॉक्टरों ने आपके रोग का निदान करते हुए आपके गले के कैंसर को भवानक बताया। आप बम्बई गये। वहाँ से आप मिरज गये। आठ महीने तक वहाँ चिकित्सा करवाई, पर ‘टूटी की बूटी नहीं’। हजारों रुपये पानी की तरह खर्च हुए। धर्मपत्नी सुभद्रादेवी ने आपकी परिचर्या में कोई कसर नहीं रखा। इसी समय आपने २००० लोकों का आत्मभावना-युक्त स्तोत्र रचा। दवा लागू न पड़ने से मिरज से आप बम्बई लौट आये और इन्सुर के यहाँ रहे। अवस्था दिनोंदिन बिगड़ती गई, पर शांति अखण्ड रही। सं० १९९७ को आषाढ़ वदी १३ को आप का निधन हो गया।

गये। आपकी स्थूल देह तो अब नहीं रही, पर अक्षर-देह से आप जीवित हैं और रहेंगे।

हमें भी अपने साहित्य-सेवा के प्रारम्भकाल में पंडितजी से बड़ी मदद मिली। ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह के प्राचीन काव्यों के प्रूफ-संशोधन में पंडितजी ने जो सौजन्यपूर्व सहायता की, वह अविस्मरणीय है। विद्वत्ता के साथ ऐसे सौजन्य तथा ओदार्य का मेल निश्चय ही दुर्लभ है। उसी प्रसंग में हमें पंडितजी के सम्पर्क में आने का सुभवसर मिला और हम उनसे बहुत प्रभावित हुए। वीकानेर के खरतरगच्छार्य श्री पूज्य जिनसूरिजी के पंचप्रतिकुंज का संपादन व उसका हिन्दी भाषा-नुवाद भी आपने ही किया था जो बहुत उत्तम हुआ है। मैंने आपके रचित महावीर-प्रार्थनाशतक स्तोत्रों को हिन्दी अनुवाद के साथ जैन भारती में प्रकाशित करा दिया।

हमारे गम्भीर चिन्तन-यात्रा के मित्र श्री शुभकरणजी बोथरा आपके निकट सम्पर्क में आये और आपसे बहुत प्रभावित हुए। उन दिनों इन दोनों को योग और अध्यात्म का बहुत शौक था। पंडितजी के कई पत्र श्री शुभकरणजी के पास हैं जो आपके तत्कालीन मनोभावों को व्यक्त करते हैं। पंडितजी के वे पत्र प्रकाशित होने चाहिए। पंडितजी के भी भी पत्र जो उनके जीवन और मनोभावों पर प्रकाश डालते हैं, जिनके भी पास हों, प्रकाश में आने चाहिए। जैन पारिभाषिक कोश के गुजराती अनुवाद तथा पंडितजी के अधूरे ग्रंथों को पूर्ण करके प्रकाशित करना आवश्यक है। पंडितजी का परिवार बड़ा धर्मनिष्ठ रहा है। पंडितजी के पिता सेठ त्रिकमचन्द के भ्राता जूठमल जैनमुनि हो गये थे, जिनका नाम जयविजय था। पंडितजी के भाई वृद्धिलाल ने विजय-धर्मसूरिजी से दीक्षा प्राप्ति की थी जो विशालविजय के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने भी जैन साहित्य की बड़ी सेवा की है। इसी प्रकार आपके दादा के भ्राता मोतीचन्द के परिवार में भी अमरचन्द और रमणीकलाल जैन मुनि हुए जिनका नाम अशोकविजय और रमणीकविजय है।

पण्डितजी की पत्नी सुभद्रायहिन भी बड़ी धर्मनिष्ठ थीं। पण्डितजी अपने पीछे ४० हजार की रकम ढोड़ गये थे। इसे सुभद्रायहिन ने पण्डितजी की भावना के अनुरूप अच्छे कार्यों में व्यय किया।

प्राकृत-हिन्दो कोश के महान् प्रणेता : पं० हरगोविन्ददास

धी अगरचन्द नाहदा

बीसवीं शती के जैन विद्वानों में पं० हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ ज्ञानाम चिरस्मरणीय रहेगा। 'पाइअहम्महणवो' नामक प्राकृत भाषा का शब्दकोश आपकी अमर कृति है। हिन्दी में प्राकृत शब्दों का यह एकमात्र कोश है। इसके निर्माण में पंडितजी ने बढ़ा कठिन परिश्रम किया था। कलकत्ता विश्वविद्यालय में आपने २० वर्षों तक अध्यापन कार्य कर सुनान् प्राप्त किया। आपका संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

गुजरात के सुप्रसिद्ध लेखक श्री जयभिक्षु ने पंडितजी को संक्षिप्त, पर बड़ी ही सुन्दर जीवनी लिखी है जो वशोविजय जैन ग्रन्थगाला, भावनगर से प्रकाशित हुई है। आपका जन्म गुजरात के राधनपुर में सेठ त्रिकमचन्द की पत्नी प्रधानबाई की कुक्षि से संवत् १९४५ की वैशाख सुदी ६ को हुआ था। आपके लघुभ्राता सुनि विशालविजयजी ने साधु-धर्म का पालन कर अपने चंश का गोरक्ष बढ़ाया। उनके भी कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चके हैं।

आचार्य विजयवर्गसूर के प्रयत्न से बनारस में जैन विद्वान् तैयार करने का उल्लेखनीय प्रारम्भ हुआ था। पं० हरगोविन्ददासजी उसी प्रयत्न के महान् सुरक्षा थे। तेरह वर्ष की आयु में बुद्ध-परीक्षार्थ बालक हरगोविन्ददास को सूरजी ने 'अभिधानचिन्ताभणि' के पाँच द्व्याक कण्ठस्थ करने को दिये थे। आपने इन्हें पौन घण्टे में कण्ठस्थ करके सुना दिया। इसको सूरजी के हृदय इष्ट अञ्जो छार पड़ो। इन्होंने प्रसंग आगे चलकर आपको महान् विद्वान् बनाने में कारणोभूत हुआ।

आजीविका और व्यापारिक शिक्षा के लिए आप खम्भात गेजे गये। वहाँ सेठ की प्रसन्नता प्राप्त कर वे वम्बई पहुँचे। इवर विजयवर्मसूरजीने बनारस में विद्यालय स्थापित किया तो आपको शोन्ह वहाँ आकर

बन्ध्ययन करना पा। ताप्तरा भणा। सामाजिकसंघ उत्तराखण्ड
द्रव्योपार्जन की बृत्त से हटाकर बनारस (संवत् १९६०) पहुँचा दिया।
आपने बड़ी लगन से विद्याभ्यास चालू किया, इसमें पूर्ण सफलता प्राप्त की। आपके सहपाठियों में पं० सुखलालजी, पं० बेचरदासजी, न्यायविशारद न्यायतीर्थ मुनिश्री न्यायविजयजी, पं० लालचन्द भगवानदास थे। इनमें से न्यायविजयजी तो स्वर्गवासी हो गये, बाकी आज विद्यमान हैं। प्राकृत, संस्कृत भाषा व दर्शनशास्त्र पर आपका पूर्ण अधिकार था। गुजराती, हन्दी, बंगला पर भी आपका अच्छा अधिकार था। आप न्यायतीर्थ व व्याकरणतीर्थ परीक्षा में उत्तीर्ण हुए थे। थोड़े ही दृष्टियों में आपकी प्रतिभा चमक उठी। फलतः पं० बेचरदासजी के सहसंपादन में दिशेषादश्यकभाष्य जैसे गम्भीर एवं विशाल ग्रंथ का आपने सम्पादन किया। पांच दृष्टियों में सम्पादन-कार्य की अद्भुत प्रतिभा छटा दिखाकर पाहनात्य विद्वानों से भी आपके प्रशंसाप्राप्त की।

आचार्य दिज्यधर्मसूरिजी, पं० बेचरदासजी आदि आपकी निःश्वास से बहुत प्रसन्न थे। संवत् १९६६ के लगभग महामहोपाध्याय श्री सतीश चन्द्र दिद्याभूषण के साथ उन दोनों को सिहल (Ceylon) द्वीप भेज दिया गया। बौद्ध-ग्रंथों और पालि भाषा का दिशेष अभ्यास ही इस दिया गया। बौद्ध-ग्रंथों में बौद्धकार्य सुनिश्चित व्यवस्था ही शई। बौद्धन्देश में बौद्धकार्य सुनिश्चित व्यवस्था ही शई। आठ महीने रहकर आपने पालि भाषा के साथ सिहली भाषा का भी आठ महीने रहकर आपने पालि भाषा के साथ सिहली भाषा का भी अभ्यास कर लिया। वहाँ रहते हुए आपने एक-दो बौद्ध भिक्षुओं को प्राकृत वा अभ्यास करवाया और जैनधर्म सम्बन्धी भाषण दिये। वहाँ से लौटने पर बनारस में विविध साहित्य ग्रंथमाला की योजना की और सुरसुन्दरीचरिय (सं० १९७२), सुपार्श्वनाथचरित (सं० १९७४-७५) विदेव मंजरी, दिनोदक्षा, सप्तसंधानमहाकाव्य आदि ग्रंथों का सुसम्पादन कर उनका प्रकाशन किया। इससे आपकी रुप्याति देश में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी फैली। विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में भी इन ग्रंथों में से कई ग्रंथों को रक्षान मिला। आपके सम्पादित ग्रंथों की प्रस्तावना दिशेष सहत्यपूर्ण होती थी। इससे मानो आपकी कीर्ति गग नम्रता ज्ञान शरण। सं० १९७० में आपने हरिभद्रसरिचरित्र संस्कृत

इसमें समय कलकत्ता विश्वविद्यालय में पालि और प्राकृत के प्राध्यापक की आवश्यकता पड़ी। अतः सं० १९७४ में इस पद पर आपको नियुक्ति हो गई। कलकत्ता के विद्वत्समाज में आपने अच्छी खगति प्राप्त की। संस्कृत कॉलेज को मैनेजिंग कमेटी के भी आप सदस्य चुने गये।

सं० १९७५ में सुभद्रादेवी के साथ आपका विवाह हो गया। योग्य सहकारिणी बनाने के लिए आपने उसे गुजराती व धार्मिक अभ्यास के साथ संस्कृत की भी शिक्षा दी। कलकत्ता में रहते हुए हो आपने “पाइथ्र-सद्महण्णवो” नामक कोश तैयार किया। इसके निर्माण में अत्यधिक श्रम करने के कारण आपको संग्रहणी और क्षमा को बीमारी लग गई। इस कोश की विस्तृत प्रस्तावना बहुत ही महत्वपूर्ण है। कोश के कार्य से निवृत्त होकर आपने जैन पारिभाषिक शब्दकोश की तैयारी प्रारम्भ कर दी। उसकी पांडुलिपि मित्र शुभकरणजी बोयरा के पास देखने को मिली है। इधर योग को ओर आकर्षण बढ़ा। इसके लिए आप उत्तर में कश्मीर व दक्षिण में तीलगिरि पहुँचे और सन्तोष प्राप्त न होने से नेपाल, भूटान जाने का विचार किया। पर शारीरिक अस्वस्यतावश यह निर्णय कार्य रूप न ले सका।

कलकत्ता विश्वविद्यालय में आपने २० वर्षों तक शिक्षण-कार्य करके सुनाम प्राप्त किया। अवकाश-ग्रहण के समय सर्व सहकारियों व मित्रों को आपके वियोग का कष्ट अनुभव किया।

इधर रोग बढ़ने लगा, पर वृत्तियाँ अन्तर्मुखी होती गईं। अध्यात्मिक ग्रंथों का वाचन-मनन करने के साथ आपने एकान्त में मध्य रात्रि के समय ध्यान करना प्रारम्भ किया। डॉक्टरों ने आपके रोग का निदान करते हुए आपके गले के कैंसर को भवानक बताया। आप बम्बई गये। वहाँ से आप मिरज गये। आठ महीने तक वहाँ चिकित्सा करवाई, पर ‘टूटी की बूटी नहीं’। हजारों रुपये पानी की तरह खर्च हुए। धर्मपत्नी सुभद्रादेवी ने आपकी परिचर्या में कोई कसर नहीं रखा। इसी समय आपने २००० लोकों का आत्मभावना-युक्त स्तोत्र रचा। दवा लागू न पड़ने से मिरज से आप बम्बई लौट आये और इन्सुर के यहाँ रहे। अवस्था दिनोंदिन बिगड़ती गई, पर शांति अखण्ड रही। सं० १९९७ को आषाढ़ वदी १३ को आप का निधन हो गया।

गये। आपकी स्थूल देह तो अब नहीं रही, पर अक्षर-देह से आप जीवित हैं और रहेंगे।

हमें भी अपने साहित्य-सेवा के प्रारम्भकाल में पंडितजी से बड़ी मदद मिली। ऐतिहासिक जैन काव्यसंग्रह के प्राचीन काव्यों के प्रूफ-संशोधन में पंडितजी ने जो सौजन्यपूर्व सहायता की, वह अविस्मरणीय है। विद्वत्ता के साथ ऐसे सौजन्य तथा ओदार्य का मेल निश्चय ही दुर्लभ है। उसी प्रसंग में हमें पंडितजी के सम्पर्क में आने का सुभवसर मिला और हम उनसे बहुत प्रभावित हुए। वीकानेर के खरतरगच्छार्य श्री पूज्य जिनसूरिजी के पंचप्रतिकुंज का संपादन व उसका हिन्दी भाषा-नुवाद भी आपने ही किया था जो बहुत उत्तम हुआ है। मैंने आपके रचित महावीर-प्रार्थनाशतक स्तोत्रों को हिन्दी अनुवाद के साथ जैन भारती में प्रकाशित करा दिया।

हमारे गम्भीर चिन्तन-यात्रा के मित्र श्री शुभकरणजी बोथरा आपके निकट सम्पर्क में आये और आपसे बहुत प्रभावित हुए। उन दिनों इन दोनों को योग और अध्यात्म का बहुत शौक था। पंडितजी के कई पत्र श्री शुभकरणजी के पास हैं जो आपके तत्कालीन मनोभावों को व्यक्त करते हैं। पंडितजी के वे पत्र प्रकाशित होने चाहिए। पंडितजी के भी भी पत्र जो उनके जीवन और मनोभावों पर प्रकाश डालते हैं, जिनके भी पास हों, प्रकाश में आने चाहिए। जैन पारिभाषिक कोश के गुजराती अनुवाद तथा पंडितजी के अधूरे ग्रंथों को पूर्ण करके प्रकाशित करना आवश्यक है। पंडितजी का परिवार बड़ा धर्मनिष्ठ रहा है। पंडितजी के पिता सेठ त्रिकमचन्द के भ्राता जूठमल जैनमुनि हो गये थे, जिनका नाम जयविजय था। पंडितजी के भाई वृद्धिलाल ने विजय-धर्मसूरिजी से दीक्षा प्राप्ति की थी जो विशालविजय के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने भी जैन साहित्य की बड़ी सेवा की है। इसी प्रकार आपके दादा के भ्राता मोतीचन्द के परिवार में भी अमरचन्द और रमणीकलाल जैन मुनि हुए जिनका नाम अशोकविजय और रमणीकविजय है।

पण्डितजी की पत्नी सुभद्रायहिन भी बड़ी धर्मनिष्ठ थीं। पण्डितजी अपने पीछे ४० हजार की रकम ढोड़ गये थे। इसे सुभद्रायहिन ने पण्डितजी की भावना के अनुरूप अच्छे कार्यों में व्यय किया।

प्राकृत भद्रबाहुसंहिता का अर्धकाण्ड

श्री अगरचन्द नाहटा

दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में समाचर रूप से मान्य १४ पूर्वधर अंतिम श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहु की रचनायों के विषय में दोनों सम्प्रदायों की प्राचीन परम्परा और अधुनिक विद्वानों में मतभेद है। श्वेतो परम्परा के अनुसार वृहत्कल्पसूत्रादि और दस आनन्दों की नियुक्तियाँ भद्रबाहु द्वारा रचित हैं, जिन्हें दिगम्बर सम्प्रदाय मान्य नहीं करता और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के भी कई विद्वानों की रख में नियुक्तियाँ श्रुतकेवली भद्रबाहु-रचित नहीं हैं, अपितु किन्हीं अन्य भद्रबाहु की हैं। श्वेतो सम्प्रदाय में 'उपसर्गहरस्तोत्र' भी भद्रबाहु का माना जाता है। दिगम्बर सम्प्रदाय में उसका प्रचार नहीं है। पर 'भद्रबाहुसंहिता' नामांत्रण भवति पाठों दोनों सम्प्रदायों में आयोजित है, वर्धमान नामांत्रण किशोरजी मुख्तार आदि की मान्यता है कि उपलब्ध संस्कृत 'भद्रबाहुसंहिता' काफी पीछे की (१७वीं शताब्दी की) रचना है। संभव है, भद्रबाहु के नाम से जो प्राचीन प्राकृत भाषा की 'भद्रबाहुसंहिता' दोनों सम्प्रदायों में मान्य थी वह लूप हो गई हो और उसी नामबाली संस्कृत भद्रबाहुसंहिता ज्योतिष के परबतीं किसी जैन विद्वान् ने रचकर उनके नाम से प्रसिद्ध कर दी हो। संस्कृत भद्रबाहुसंहिता की प्राचीनतम प्रति सं० २५०४ की लिखी हुई है, जिसमें २६ अध्याय हैं और इलोकों का परिमाण १५६४ है। मुनि जिनविजयजी ने रिघी जैन ग्रंथगाला से इसका प्रकाशन किया है। इसका गुजराती संस्करण इससे बहुत पहले मेघजी हीरजी, वन्द्य, ने प्रकाशित किया था। पं० जूनलकिशोरजी मुख्तार ने इस भद्रबाहु-

'किञ्चित् प्रास्ताविक' में इसे कम से कम १२वीं शताब्दी जितनी प्राचीन बतलाया है। उनके अनुसार इसकी ताड़पत्रीय प्रति जीर्ण हो चुकी थी जिस पर से रां० १५०४ में कागज पर प्रतिलिपि की गई थी।^३

जैन परम्परा के अनुसार भद्रवाहु नामक एक आचार्य ज्योतिष के श्राहूण विद्वान् वराहमिहिर के भाई थे। वराहमिहिर ने अपने एक ग्रन्थ में जो रचनाकाल दिया है उसके आधार पर कई विद्वान् उन्हें छठी शताब्दी का मानते हैं, यद्यपि "कादम्बनी" के दिसम्बर '६६ अंक में प्रकाशित एक लेख में वराहमिहिर-लिखित शक संवत् को प्रचलित संवत् से भिन्न बतलाकर वराहमिहिर और भद्रवाहु को प्राचीन माना गया है।

जहाँ तक 'भद्रवाहुसंहिता' का प्रश्न है, जब कि भद्रवाहु की सभी प्राप्त रचनाएँ प्राकृत भाषा में उपलब्ध हैं तो 'भद्रवाहुसंहिता' भी प्राकृत में ही होनी चाहिए, इसका समर्थन १८वीं शताब्दी के महान् विद्वान् भेघ-विज्यरचित् 'भेघमहोदय' ग्रन्थ से होता है। यह महत्यपूर्ण ग्रन्थ प०० भगवान्दास जैन के हिन्दी अनुवाद सहित रान् १९२६ में प्रकाशित हुआ है। इस संस्करण के प०० ४२६-२७ में 'भद्रवाहुसंहिता' से उद्वृत नीं प्राकृत गाथाएँ हैं। ये गाथाएँ तीक्ष्ण दी जा रही हैं। ये गाथाएँ संस्कृत 'भद्रवाहुसंहिता' में नहीं गिलती, पर मेघविजय उपराध्याय जैसे किंशिष्ठ विद्वान् न उनका नद्यवाहुषाद्वान् ॥५५॥ ना ६१८ ॥५६॥ ६१९ ॥५७॥ ही ध्यान देने योग्य वात है।

यदाहुः श्री भद्रवाहुगुरुणामः —

रेहाहि कित्तियाइ अद्वादीसं पि ठवह पंतोए ।

निष्पाइऊण ताहि सत्तहि नाढीहि सह भोई ॥५०॥

नाढीइ जत्थ चंदो, पावो सोसो य तत्थ जइ दोचि ।

हुंती तहि जत्थ युट्ठी, इय भासइ भद्रवाहुगुरु ॥५१॥

एसोवि य पुण्चंदो, संजुत्तो केवलोव जइ होइ ।

केवल चंदो नाढीइ, ता नियमा दुद्धिंग कुणई ॥५२॥

एयाणं पि य मज्जे असियाहु तिए जलासओ अहिओ ।

तुरियाए वायमिस्सो, सेसासु समीरणो अहिओ ॥६३॥
जइ सब्बाणवि जोगो, गहाण असियाहु तिगे अनाकुट्टी ।

अट्ठार १८ बार १२ छ ६ द्विण, सेसाणु फलं जहा पत्रं ॥६४॥
विजला वि बाउनाडो, देइ जलं सोमखद्व वहु जोगा ।

जल नाढो तुच्छ जलं, पावाहिद जोगओ देइ ॥६५॥
जइ बाउ नाढो पत्ता, सजिभोमा किनवि नहु जल दिति ।

सोम जुआ तेउ जलं, अइसय जोएण घरिसंति ॥६६॥
विस्तयर कुंभमीणा, सोहो कक्षकडवविच्छिय तुलाओ ।

सबलाओ रासीओ, सेसा सुक्का विद्याणाहि ॥६७॥
रविसणि भोमंसुक्का, चंद विद्वापो य वहुगुरु सुक्को ।

एए सजला गिच्चं, णायद्वा आणुपुव्वोए ॥६८॥

—इति भद्रवाहुसंहितायाम् ।

संस्कृत भद्रवाहुसंहिता तो निश्चित रूप से श्रुतकेवली भद्रवाहु की
कृति नहीं है, क्योंकि उसकी रचना की शैली भी पीछे की है और विषय
वराहसिंहिर से काफी प्रभावित और प्रलिपादनशैली काफी हीन-कॉटि
की है। जवह-जगह पर 'भद्रवाहुवचो यथा' शब्दों का प्रयोग है,
इससे भी वह रचना भद्रवाहु के वचनों को लेकर किसी अन्य की सिद्ध
होती है। बाराहीसंहिता से डा० गोपानो ने जो तुलना की है उसे
देखते हुए यह तो निश्चित है कि प्रकाशित भद्रवाहुसंहिता किसी उच्च-
कॉटि के ज्योतिष विद्वान् को नहीं है तो श्रुतकेवली भद्रवाहु की रचना
तो हो ही नहीं सकती। तब प्रश्न यह रह जाता है कि प्राचुर भाषा
की जो प्राचीन रचना भद्रवाहु की थी और जिससे नी गाथाएँ मुनि
मेघविजयजी ने उद्धृत की हैं वह मूलग्रन्थ कथ से लुप्त हुआ और उसका
कुछ अंश अन्य भीं किसी जैन विद्वान् ने उद्धृत किया है या नहीं और
वह मिलता है या नहीं। यह प्रश्न बहुत अधिक सोज की अपेक्षा रखता
है। पहली बात तो यह है कि भद्रवाहु नामक ज्योतिर्विद् जैन विद्वान् थे,
यह तो उच्च-वीं शताब्दी के ग्रन्थों से भलीभाँति सिद्ध है, अतः उन्होंने
निमित्तशास्त्र सम्बन्धी कोई ग्रन्थ अवश्य लिखा होगा और वह प्राचुर
में छोड़े गए हैं। मनि जिनविजयजी ने भी वज्री उच्च शरणे

अन्य आचार्य पूर्वे थई गयेला छे, जे निमित्तशास्त्रना ज्ञाता होई नैमित्तिक तरीके प्रसिद्धि पाम्या हता। तेमना विशेना केटलाक उरलेखो छवाँ-ट्वाँ शैका जेटला प्राचीन जैन प्रन्थोमा मली आवे छे। ... ए भद्रबाहु आचार्य जेम आवश्यकादि नियुक्ति ग्रन्थोनी रचना करी छे, तेम निमित्त-शास्त्र विषयक कोई ग्रन्थनो पण पद्मरूपे के गद्यरूपे प्राकृतमां रचना करी होय ए सर्वथा संभव छे। मेघविजय उपाध्याय पोताना वर्षप्रबोध अपरनाम 'मेघमहोदय' मां भद्रबाहुना नामथी केटलीका प्राकृत गाथाओ उद्घृत करेली छे जे कदाचित ए गूल ग्रन्थमाणीज परमपरा टारा उद्घृत चली आवी थती होय।"

कुछ वर्ष पूर्व कलकत्ता ज्ञाने पर बहाँ के जैन भवन की एक प्रति में भद्रबाहुसंहिता के अर्थकाण्ड की १९ प्राकृत गाथाएँ मिली थीं। वह प्रति सं १८९५ की थी। अतः अब हमारे संग्रह की प्राचीन प्रति से उनको प्रकाशित किया जा रहा है।

ठँ

भद्रबाहु स्वामि उपदिष्ट अर्धकांड

तिय सिद नरिद नघं, पणमित्तु जिणेतर महाथीरं ।

युच्छामि अनधकंडं, जह कृहियं जिल्लर्विदेष ॥ १ ॥

कत्तिय पुञ्जिन दिवसे, दत्तिय रियसं जइ होई लंपुन्जं ।

ता चत्तार विमाता, होसु नियसं त्र रत्तसाणं ॥ २ ॥

अह भरणी तद्विवसे, हक्किज चत्तारि पहर संपुञ्जा ।

ता जाणह सुदुन्निवसं, चत्तार विमाता धन्नाणं ॥ ३ ॥

अह भरणी दो पहरा, दुक्कवि पहराइ कत्तिया होइ ।

ता जाणह अघ हाणी, वेमाता रूण रूपासा ॥ ४ ॥

अह कत्तिय देएहरा, उद्धं तह चेव रोहिणी होइ ।

वेमाता सुक्कालं, दो चासा होइ दुक्कालं ॥ ५ ॥

अह पुञ्जिनाइ दिवसे, नहखत्तं होइ रोहिणी पुष्टा ।

ता सब्ब सस्त हाणी, लोह दव्याणय रसाणं ॥ ६ ॥

इति कान्तिक पूर्णिमा विचार

कम्पुन पुञ्जिन दिवसे, रह नवलत्तं हयइ जइ कहचि ।

वेष्पहर होइ पुन्निमि, मह नवखलतं हविज्ज जइ कहवि ।
 ता जाण सु वेमासा, होइ सुभिवलं न संदेहो ॥ २ ॥
 फलगुन पुन्निम दिवसे, पुब्या फलगुनि हविज्ज जइ कहवि ।
 चत्तार चि पहराइ, चत्तार विमास धन्नाण ॥ ३ ॥
 अह दुश्वि पहराइ, पुब्य फलगुणि हविज्ज नवखलतं ।
 उचरि उत्तर फलगुणि, वेष्पहरा होइ जइ कहवि ॥ ४ ॥
 ता पढमा वेमासा, होइ सुभिवलं न इत्य संदेहो ।
 उचरि भया वेमासा, सस्स विणासोय दुखकाल ॥ ५ ॥
 जइ पहरा चत्तारि चि, कह चिह भुजेइ उत्तराफलगु ।
 ता धन्नाण हाणी, सब्ब रसं लोह दव्याण ॥ ६ ॥

इति फालगुन पूर्णिमा विचार

आसाढ़ पुन्निमाए, भुजइ चत्तारि पहर जइ मूलं ।
 ता चत्तार विमासा, दुभिवलं होइ रस हाणी ॥ १ ॥
 अह भुजइ वेष्पहरा, मूलं जइ कहवि होइ नवखलतं ।
 दुभिवलं वेमासा, अविरहियं सब्ब देतेमु ॥ २ ॥
 अह उचरिम वेष्पहरा, पुब्यासाढा हविज्ज नवखलतं ।
 ता होइ दुन्नि मासा, होइ दुभिवलं न संदेहो ॥ ३ ॥
 आसा पुन्निमाए, पुब्यासाढा हविज्ज बगराई ।
 ता चत्तार विमासा, खेमं सुभिवलं सुवासं च ॥ ४ ॥
 अह भुजइ वेष्पहरा, पुब्याउटुमि उत्तरासाढा ।
 उचरिमया वेमासा, होइ सुभिवलं न संदेहो ॥ ५ ॥
 अहवा उत्तरासाढा, भुजइ चत्तारि पहर तम्मि दिणे ।
 अविवारियं वियाणसु, दुभिवलं मास चत्तारि ॥ ६ ॥
 ईय अर्थं कंड सारं पुन्निम भिह रित्व संग्रहं मुणह ।
 काल पथोगं जागइ, सो तव्वन्नू न संदेहो ॥ ७ ॥

इति अर्धकांडं थीभद्रवाहुस्यामिना उपदिष्टम्

प्राकृतिक चिकित्सा सस्ती और सरल है

अगर चरद नाहटा

स्वस्थ रहना मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है, यह उतना ही सच है, जितना लोकमान्य तिलक का, 'स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है' यह विनित्र सा लगता है कि मनुष्य की अपेक्षा जिन पशु-पक्षियों की बुद्धि और विचार का विकास नहीं हुआ है, वे प्रोयः स्वस्थ रहते हैं। और मनुष्य बुद्धि का निधान होने पर भी अधिक अस्वस्थ रहता है। कारण स्पष्ट है कि पशु-पक्षी आदि धुद्र प्राणी प्राकृतिक जीवन बीताते हैं अर्थात् प्रकृति के अधिक नजदीक रहते हैं और मनुष्य प्रकृति के विपरीत या विरोधी कार्य अधिक करता रहता है। अतः उसकी सजा भुगतनी यानि रोग के रूप में उसके लिए कष्ट उठाना जरूरी हो जाता है। वे रोग उसकी स्वयं की गलती से ही होते हैं। यदि वह अपनी बुरी आदतें और प्रकृति विरोधी आचरण को छोड़ दें, तो अवश्य ही बहुत कुछ लाभ तो स्वयं मिलने लगता है। अर्थात् बहुत से रोग तो सहज एवं स्वयं ठीक हो सकते हैं, यदि वह जिन गलतियों के कारण वे रोग उत्पन्न हुए हैं, उन गलतियों को सुधार लें और स्वास्थ्य के नियमों का ठीक से पालन करें। यही प्राकृतिक चिकित्सा का सन्देश है, ताकि वह नाना प्रकार की दवाइयों से अपने शरीर में विष और विकृति को न बढ़ाने एवं उपचास तथा जाने-पीते के पदार्थों में सही बदल करने के साथ-साथ शुद्ध वायु का सेवन करें। मिट्टी, जल आदि प्रकृति प्रदत्त पदार्थों से अपने रोग को सदा के लिए भगा दें। इसके द्वारा होने वाले कष्ट से मुक्ति पा लें। यह प्रकृति का उपचार सबसे सस्ता व सरल हैं। अतः प्रत्येक व्यक्ति को अपने रोग के कारण व उसके सहज निवारण का शिक्षण मिलना ही चाहिए, जिससे रोग उत्पन्न होने का मौका ही न मिले। और यदि किसी गलती के कारण रोग हो जाय, तो उसकी चिकित्सा वह सहज एवं स्वयं कर सके।

अधिक पुरानी बात नहीं है। मेरे बालकपन के समय आज से

करीब ६०-६५ वर्ष पूर्व में यह देखता आया हूं कि बैद्य, डाक्टर बहुत ही कम या प्रायः नहीं थे। असाध्य रोग हो जाने पर ही लोग उनके पास पहुंचते थे। मैंने स्वयं देखा, सुना व अनुभव किया है कि ८०-९० वर्ष के बहुत से बूढ़े यह कहा करते थे कि तुम लोग आज के छोरे, कभी पेट दुखता है, कभी माथा दुखता है, कभी बुखार आ गया आदि कहते रहते हैं। पर हमने तो अपने जीवन में पेट व माथा कैसे दुखता है, इसका कभी भी अनुभव नहीं किया। कभी कोई विशेष कारण से सर्दी-गर्मी हो गई या बुखार आ गया हो, वह तो तीन दिन में अपने आप ठीक हो जाती है। खाना खाना छोड़ दो, तो पहले की पेट में जो खराबी है, गन्दगी है, सशांघ है, वह तो स्वयं पचकर निकल जायेगी। इसके लिए कोई भी दवा लेने की आवश्यकता नहीं। बालकों को हुजन्मने के बाद जन्म घूटी दी जाती एवं हरड़ों को घिसकर पिलाया जाता, जिससे पेट साफ रहता। और अधिकांश रोगों की जड़ पेट की खराबी में ही है। माताओं को यह परम्परागत शिक्षा मिलती रहती थी व ज्ञान था, जिससे बच्चों को प्रायः रोग नहीं होते और होते, तो घरेलू चिकित्सा से ठीक कर दिये जाते। आज की तरह थोड़ा सा कुछ हुआ और डाक्टर के पास भागे। उनके चक्कर में पड़कर सेंकड़ों-हजारों रुपये वर्दी करो। यह उस समय न तो सम्भव था और न आवश्यक ही।

शहरों की अपेक्षा गांवों के लोग तो अधिक स्वस्थ रहते ही हैं, क्योंकि उनका खाना-पीना, रहना प्रवृत्ति के अधिक नजदीक है। शारीरिक-श्रम भी उन्हें अधिक करना पड़ता है। अत; वे अधिक बलवान होते हैं। साधारण रोग, कोई रोग हो भी जाय, तो उसकी वे कुछ परवाह नहीं करते, क्योंकि रोग का आक्रमण निर्वलों पर ही अधिक होता है। बहुत से रोग तो स्वयं ही ठीक हो जाते हैं, यदि ठीक नहीं हुआ, तो वे अपने आसपास की पैदा हुई जड़ी-बूटियों से उससे मुक्ति पा लेते। गांव में कोई बैद्य तो रहता ही नहीं था, बड़े-बूढ़े अनुभवी व्यक्तियों की सलाह से जो उपचार किया जाता, वही उनके लिए पूरा कामयाब होता।

शहरों में और कभी कहीं बड़े गांवों में कुछ बैद्य या जानकार लोग होते थे, वे भी कोई फीस नहीं लेते एवं रात-दिन काम आने वाली घरेलू चीजों से ही उपचार करते। अधिक हुआ, तो पंसारी के यहाँ से जड़ी-बूटियां लाकर विधिवत् उपयोग करने की सलाह दे देते। साधारण रात-दिन काम में आने वाली जड़ी-बूटियां व औषधियों को कूट-पीसकर

बपने पास रहते और उसको पुढ़िया बांधकर रोगी को दे देते और अनुमान बतला देते। हमारे यहाँ की चिकित्सा पद्धति इतनी सस्ती व सरल थी। आज की चिकित्सा में जो समय, श्रम व लम्बा खर्च पड़ता है, उससे सोचियों को बड़ी भारी परेशानी उठानी पड़ती है, उसका खर्च तो बहुत से लोगों के बद्रीश्वत के बाहर है। यद्यपि सरकारी अस्पताल बहुत खुल गये हैं, पर उनमें दवाइयाँ बहुत ही कम दी जाती हैं, लम्बे-लम्बे नुस्खे, जिसमें एक नहीं अनेक औषधियों की लिस्ट होती है। बाजार से खरीदकर इलाज करवाने को कहा जाता है। अतः जितने रूपये औषधालयों में सरकार के खर्च होते हैं, अनेक गुना व्यक्तियों के अपने खर्च होते हैं। उनका हिसाब लगाया जाय, तो करोड़ों रूपये की दवाइयाँ आती हैं। उनमें अधिकांश भारत से ही भेजे गए जड़ी-बूटियों आदि पदार्थों से बनाई हुई होती है। जिनका मूल्य साधारण सा होता है, पर विदेशों में बनकर आने से सौ गुना, हजार गुना लग जाता है। अतः भारत सरकार को सबसे पहले तो स्वस्थ कैसे रखा जा सकता है, रोग के उत्पन्न होने के कौन-कौन से कारण हैं? उनके इलाज मनुष्य स्वयं कम खर्च में कैसे कर सकता है। इसका शिक्षण अनिवार्य रूप से करना चाहिए। हकीकत यह है कि भारत में प्राप्त जड़ी-बूटियों का अधिकाधिक अन्वेषण व परीक्षण किया जाय। और नियन्त्रित औषधियों का निर्माण भारत में किया जाय और सस्ते मुर्ख में सुलभ की जांय, इस ओर तुरन्त ध्यान दिया जाय। इससे अरबों रु० की वचत होगी और लोगों का स्वास्थ्य सुधरेगा। प्राकृतिक चिकित्सा, चुम्बकीय चिकित्सा, यौगिक चिकित्सा का प्रचार करें। स्वस्थ रहने के उपाय पाठ्यक्रम में भी सिखाया जाय, चिकित्सा सही सरल व सुलभ हो।

पंजाबी बाग दिल्ली में प्राकृतिक चिकित्सा शिविर

दिनांक 5 मार्च से 19 मार्च तक दिल्ली की प्रमुख बस्ती पंजाबी बाग के अग्रवाल भवन में एक प्राकृतिक चिकित्सा शिविर का आयोजन किया जा रहा है। शिविर का संचालन देश के अनुभवी-प्राकृतिक चिकित्सक डॉ० गोरी शंकर मिथा तथा संयोजन A-12, भगवानदास नगर (दिल्ली) निवासी श्री हरिकृष्ण गुप्ता आयकर सलाहकार कर रहे हैं।

प्राकृतभाषा का हस्तलिखित ग्रन्थ : कोष्ठकचिन्तामणि

◎ श्रीअगरचन्द नाहटा

भारतीय भाषाओं में संस्कृत के बाद प्राकृत ही सर्वाधिक उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण भाषा है। भारत की दो प्रधान संस्कृतियों में वैदिक संस्कृतियों के संस्कृत में प्रधान रूप से साहित्य-निर्माण किया। इसी तरह अमण-संस्कृति के पीयोंने जनसाधारण की प्राकृत-भाषा में प्रचुर साहित्य-निर्माण करके प्राकृत-साहित्य को विशाल एवं समृद्ध बनाया है। अमण-संस्कृति में भी जैनों की इस विषय में तब्दील विधिक रैक है। वर्षोंकि, बौद्धवर्म का प्रचार विदेशों में अधिक हो गया और उन-उन देशों की भाषाओं में बोद्ध साहित्य का अनुवाद एवं मौलिक ग्रन्थों की रचना अधिक होने लगी। शुनों के चातनकाल में संस्कृत का हतना प्रभाव बढ़ा कि उस प्रभाव से बोद्ध तंस्कृति वय नहीं सकी और महायान-गम्प्रदाय की भाषा एक तरह से संस्कृत हो गई। प्राचीन विविटक आदि-ग्रन्थों के बाद बीड़ साहित्य, संस्कृत, तिव्यती, जापानी, चीनी आदि भाषाओं में अधिक प्राप्त है, जबकि जैनों ने संस्कृत एवं लोकभाषाओं में साहित्य-निर्माण करने के साथ-साथ प्राकृत-भाषा में भी विविधविषयक साहित्य-निर्माण की परम्परा बालु रखी। इसमें गत २५०० वर्षों में हनके रचित प्राकृत-रचनाओं की संख्या का परिमाण बहुत विशाल है और प्रत्येक शती में वह सजंत-परम्परा जारी रही है। बाज श्री कई लेनाचार्य एवं मुनि प्राकृत-साहित्य के निर्माण में संलग्न हैं।

प्राकृत-भाषा के साहित्य-सम्बन्धी दो दितिहास प्रकाशित हो चुके हैं। प्रथम ३०० जगदीशचन्द्र जैन का और दूसरा ३०० नेमिचन्द्र शास्त्री का। फिर भी, प्राकृत-साहित्य अभी बहुत कम प्रकाशित हुआ है। इस्तलिखित सामग्री का उपयोग करना इनके लिए सहज नहीं था, इसलिए इन दोनों प्राकृत-साहित्य के इतिहास-ग्रन्थों में कई महत्वपूर्ण प्राकृत-रचनाओं का नामोस्तेक तक नहीं हो पाया है।

जैनधर्म के दो प्रधान सम्प्रदाय हैं—श्वेताम्बर और दिग्म्बर। इनमें से दिग्म्बर-सम्प्रदाय में धार्मिक विषयों के तो अनेक रूप प्रधानतया शोरसेनी-प्राकृत में लिखे गये हैं, पर श्वेताम्बरों ने जैन महाराष्ट्री-प्राकृत में विविधविषयक जितना विशाल प्राकृत-साहित्य का निर्माण किया, वह दिग्म्बर प्राकृत-साहित्य में बहुत अधिक और महत्वपूर्ण है। मध्यकाल में मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र का भी प्रचुर प्रचार और प्रभाव रहा और जैनों ने भी इस प्रभाव को बात्मरात् किया, पर अपनी मर्यादा और विवेक के साथ। जैन पति कम्भो किसी काल में ब्रह्मचर्य, संथम, तप-नियम आदि से विचलित नहीं हुए।

रोगियों को रोगमुक्त किया जाता है। मन्दिरों में संवाद, पीतल, चाँदी आदि के अनेक यन्त्र, पूर्ति की तरह ही पूजे जाते हैं। अनेक वस्त्रों का प्रभाव यैने स्वयं देखा है। मारत्वपूर्ण की मन्त्र, तन्त्र और यन्त्र की विद्याएँ बहुत ही चमत्कारपूर्ण थीं, जिनके प्रति आज के इस भौतिक युग में कोई आस्था नहीं रह गई है क्योंकि विद्याएँ आज लुत्र होती जा रही हैं। इस्त-लिखित प्रतियों में बहुत ही अनुभूत प्रयोग और मन्त्र-तन्त्र आदि लिखे मिलते हैं, जिनसे जात होता है कि एक समय यहाँ इस विद्या का प्रधाव और प्रचारखबूत रहा है।

यन्त्र अनेक प्रकार के होते थे, जिनमें पञ्चहरिया एवं दीसा (पञ्चह और बीस लंख्याधाले कोष्ठक) को अलेक प्रकार से लिखा जाता था। इन यन्त्रों के कोष्ठकों के सम्बन्ध में आगमगच्छीय श्रीदेवरत्न सूरि के शिष्य धाचनाचार्य श्रीलसिंह ने प्राकृत-भाषा में एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ रचा है, जिसका नाम है 'कोष्ठकचिन्तामणि'। मूल ग्रन्थ प्राकृत-भाषा की १५१ गायामों में रचित है। इन गायामों पर ग्रन्थकार ने स्वयं संस्कृत-भाषा में विस्तृत वृत्ति लिखी है, जिसका परिचाण तीन हजार छलोंकों से भी अधिक है। वृत्ति में मूल ग्रन्थ को चार वक्षस्लन्तरों में विभक्त कर दिया गया है। मूलग्रन्थ की दस्तलिखित प्रति ११ पश्च की है और टीका-सहित कुल पत्र १०१ है। दोनों प्रतियों एक ही व्यक्ति की लिखी हुई हैं। अक्षर बड़े तथा सुन्दर और सुवाच्य हैं। दोनों प्रतियों आगमप्रभाकर श्रीपुण्ड्रविजयजी के संग्रह की हैं। ये अभी लाल भाई दलपत भाई भारतीय संस्कृति-विद्या-मन्दिर, अहमदाबाद के महत्वपूर्ण संग्रह में सुरक्षित हैं। हमने दोनों प्रतियों की अपने ग्रन्थालय के लिए प्रतिलिपि करवा ली है। ग्रन्थ का परिचय नीचे दिया रहा है :

कोष्ठक चिन्तामणि मूल ग्रन्था १५१.

आदि : सिरि बीर जिपां नृभिञ् बहु विह जंतं कलिहण करणाइ

अह भणइ सील सिहौं अरमिउ वायणायरिउ ॥१॥

चउरं स्वट्ठार्थं या ? दुविहा अंकाणणंतियानैय ।

चट्टा तत्थदुभेया गङ्गा किष्ण रहियस हियाय ॥२॥

चउरं सान्निय विसमा समाय लब काढि सोलकुटिठ सुहा

विसमाण तत्थ जंतापि, मोडि करणाइ हुतिकसा ॥३॥

अन्त : विसम सम बहु जंता, समासओ एवं मित्य जे भणिया

तेसि विहि महिमा इय, मैय संच गुरु पसाया ॥१५०॥

सिरि देवरयण गुरुबह गुण लंकिय सील सालि मुणिसियो

तस्सीमु कुट्ठ पूरण, सूरपणि गथं इमं खलाइ ॥१५१॥

इति कोष्ठक चिन्तामणि ग्रन्थः। साहूशतकरूप संपूर्ण

श्री श्री आगमगच्छीय श्री देव रत्न सूरिवर शिष्य

वाचनाचार्य पं० श्रीलसिंह कृतिरियं चिरजीयात् ।

लेखक पाठकयो शुभं खवतु ॥

अब वृत्ति का परिचय दिया जा रहा है। प्रथम वक्षस्कार 'विषम कोष्ठकाविकार' नामक है।

कोष्ठक चितामणि , सादृशतकस्यादचूर्णि लिख्यते
सर्वज्ञ परम ब्रह्म ध्यात्वानत्वाच्चंत गुरु ।
कोष्ठ चितामणि चंथं , विद्वगोमिनागंह ॥
अत्र मूत्र ॥ सिरि ॥ व्याख्या ॥

श्री चीरजिनं श्री बद्रभान स्वामिनं । नत्वा प्रणत्य । अहु प्रकारेषु षट् त्रेषु
कोष्ठ केषु । अंक लिखनस्य करणानियुक्ति इहं गणित शास्त्रे । भाति कथयति ।
शीलसिंहः आग्यिको वाच्चत्वाचार्थः । अत्र गाथायाः ॥ मंगल चाभिध्येव, सर्वधश्व
प्रयोजनमित्येत चतुष्टय लघ्यमेव विलोक्नीश मिति गाथथि, पूर्वतापयंत्र भेदानाह ।
वड० । चड० ॥

अनयोन्याख्या । अकानां यंत्रा एवं यंत्र काः । कोष्ठका द्वि विधाज्ञैयाः ।
चतुरसा वृत्त भेदात् । एके चतुरसाऽन्ये वृत्ताश्च ! तत्थति । तत्र वयोर्भैर्धे वृत्त
कोष्ठका द्विभेदा द्विप्रकाराः । एक भक्षी केन सहितः । और सति । चतुरसा अपि
चक्रराद् द्विभेदाः । विसमा समाश्चः विषमा सिहि, पंक्ति त्रितिप सेश्चा । के
निर्मिता स्ते यंत्रा विषमाः नव कोष्ठी मुखा । नवानां कोष्ठाना सनाहारी नव
कोष्ठी त्रिगृह यंत्रः । मुखे शब्दात् पञ्चत्रह यंत्राद्योपि ।

प्रथम वक्षस्कार में विषमकोष्ठक यत्त्र-प्रकारों का वर्णन मूल की गाथा ५० तक
में है। द्वितीय वक्षस्कार में समकोष्ठक-करण का अधिकार गाथा ११३ तक में है। ये दो
अधिकार ही सबसे लड़े हैं। इनमें भी पहले से हँतरा अधिकार बड़ा है। प्रथम अधिकार की
टीका पत्रांक ३२वें में समाप्त होती है, और दूसरे अधिकार की टीका पत्रांक ८०वें में।
तीसरे अधिकार में चतुरसा अन्त्र-करण का १२३वीं गाथा में यमापन होता है और चौथा
अधिकार वृत्तकोष्ठकाधिकार है, जिसमें वृत्तयन्त्रों के लिखने की विधि है। १४६वीं गाथा
में यह समाप्त होता है। अन्तिम २ गाथा उपरंहार-जश्चित के रूप में है। टीका में जागम-
गच्छ के देवरत्न सूरि को ज्यानन्द मूरि का पद्मलवार बताया है। अन्वकार शीलसिंह
देवरत्नसूरि का शिष्य था। ग्रन्थ में रचना का सम्म भी नहीं दिया गया है। पर, शीलसिंह
१४वीं शती के जान पड़ते हैं। अपने विषय में यह ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण है।

शीलसिंह की अन्य रचनाओं की खोज भी की जानी चाहिए। और प्रस्तुत ग्रन्थ को
हिन्दी-अनुवाद-सहित प्रकाशित करना चाहिए। ग्रन्थकार ने कहीं-कहीं किस यन्त्र से क्या लाभ
होता है, यह भी लताशा है। इन विषय में अन्त जिसी ग्रन्थ में विशेष विवरण मिलता हो,
तो उसके साथ तुलना/त्वक अध्ययन दिला जाना चाहिए। समूचे भारतीय साहित्य - विशेषतः
प्राकृत और जैन साहित्य में अपने ढंग का यह एक ही ग्रन्थ है।

ताहटों की गवार, बीकानैर

प्रतिपत्तिका

प्राकृत साहित्य की विविधता और विशालता

श्री अगरचन्द नाहटा

मानव की स्वाभाविक बोल भाषा की भाषा का नाम 'प्राकृत' है। यह भाषा देश-कास के भेद से अनेक रूपों और नामों से प्रतिष्ठित है। आगे चलकर यह कुछ प्रकारों में विभक्त हो गई और उन्होंने के लिए 'प्राकृत' संज्ञा लड़ हो गई। जैसे — अट्टमागधी, महाराष्ट्री, सीरसैनी, पैशाची आदि। बोली के स्वर में तो प्राकृत काफी पुरानी है पर साहित्य उसका इतना पुराना नहीं मिलता। इसलिए उपलब्ध ग्रन्थों में सबसे पुराने 'बेद' माने जाते हैं, जिनकी भाषा वैदिक तंस्कृत है जो प्राकृत के काफी निकट है।

भगवान् महाबीर और बुद्ध ने जन-भाषा में धर्म प्रचार किया। दोनों ही समाजों महापूर्ण ये और उनका विहार याने विचरण प्रदेश भी प्राप्त: एक ही रहा है। पर दोनों की वाणी जिन भाषाओं में रूपरूप है, उनमें भिन्नता है। 'पाली' नाम प्रथमि भाषा के स्वर में प्राचीन नाम नहीं है पर बोद्ध त्रिपिटकों की भाषा का नाम 'पाली' प्रतिष्ठित हो गया। भगवान् महाबीर की वाणी जो जैन आगमों में प्राप्त है उसे अद्यंमागधी भाषा की संज्ञा दी गयी है। क्योंकि भगव जनपद उस समय काफी प्रभावशाली रहा है और उसकी राजधानी राजगृह एवं निकटवर्ती नामन्दा में भगवान् महाबीर ने बोद्ध चौमासे किये थे। उसके भास्त-नास के प्रदेश में भी उनके कई चौमासे हैं। इसलिए सारधी भाषा की प्रधानता स्वाभाविक ही है। पर यद्य जनपद में भी अन्य प्रान्तों के लोग आते रहते थे और कुछ तो बहु गये थे, तथा भगवान् महाबीर भी अन्य प्रदेशों में पश्चारे थे। अतः उनकी वाणी सभी लोग समझ सकें, इसी कारण मिसी-जूतो भाषा का प्रचार पश्चिम और दक्षिण की ओर विविक होने लगा, तब एवेतांवर सम्प्रदाय के जो ग्रन्थ रखे गये, उनकी भाषा को महाराष्ट्री प्राकृत और दिमांबर सम्प्रदाय के ग्रन्थों की भाषा को 'सीरसैनी' प्राकृत कहा गया। प्राकृत का प्रभाव कई भाषाविद्यों तक बहुत अच्छा रहा। पर भाषा तो एक विकसनशील तर्फ है,

अतः उसमें परिवर्तन होवा गया और गोविंदठी गान्धारी में उम 'अपब्रंश' की सजा प्राप्त हुई। अपब्रंश में भी जैन कवियों ने बहुत चढ़ा साहित्य लिखा दिया है। अपब्रंश से ही आगे चलकर उत्तर भारत की सभी शासियों विकसित हुई, उसमें से गान्धारानी, गुजराती और हिन्दी ने भी प्रचुर जैन साहित्य रखा गया।

प्राकृत के प्रचार और प्रभाव के कारण ही संस्कृत के बड़े-बड़े कवियों ने जो नाटक लिखे, उनमें जगताधारण की भाषा के रूप में करीय आधा भाषा प्राकृत में लिखा है। कालिदास भास आदि के माटक इसके प्रमाण हैं। शिल्प लेखों में बहुत में लेख प्राकृत भाषा में उत्कीर्ण भिसती है। इसमें प्राकृत भाषा के बड़े हिस्से और लिखान की अच्छी जानवारी मिल जाती है। यहाँ प्राकृत में साहित्य-रचनाएँ जैसी रूपों में रही; इसी अन्य विरी परमं सम्प्रदाय या समाज ने नहीं रही परं जैनतर दिशानों ने भी प्राकृत भाषा के व्याकरण बनाये हैं और कुछ काव्यादि रचनाएँ भी उसी भिसती हैं। इसे बिन्द होता है कि रचनाएँ का प्रभाव वह जाते पर भी प्राकृत संवेदों उपेक्षित नहीं हैं वहीं जैनतर लेखक भी इसे अपनाते रहे।

प्राकृत साहित्य विविध प्रकार का और बहुत ही विवाद है। अभी तक बहुत सी छोटी-छोटी रचनाओं की तो पूरी जानवारी भी प्रवाल में नहीं आ पाते हैं। वामदाय में छोटी होने पर भी वे रचनाएँ उपेक्षित नहीं होती चाहिए। यांत्रि इसमें से तो बहुत ही सार गमित और प्रेरणादायी है बड़े-बड़े ग्रन्थों में वो दास्ति विस्तार हो पाई जाती है, उनमें से जल्दी और काम की वास्ते छोटे-छोटे प्रवाल रचनों और कुलकों आदि में गृह्ण सी गई है। उनका उद्देश्य या कि बड़े-बड़े ग्रन्थ याद नहीं रहे जा सकते और छोटे प्राचीयों या प्रकरणों को याद कर नेता नुगम होता। अतः — साम्भूत वासि ब्रह्माने एवं समझाने में सुविधा रहेगी। ऐसे बहुत से प्रकरण और कुलक अभी तक अप्रकाशित हैं। उनका संघर्ष एवं प्रकाशन बहुत ही जल्दी है, अन्यथा कुछ समय के बाद वे अप्राप्त हो जाएंगे। कुटकर पत्रों एवं संग्रह-प्रतियों में ऐसी रचनाएँ काढ़ी पाई जाती हैं हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची बनाते समय उनकी उपेक्षा कर दी जाती है, पर संग्रह-प्रतियों, कुटकर पत्रों और गुटकों की मी पूरी सूची बनानी चाहिए, जिससे प्रसिद्ध रचनाओं के अविरित अप्रकाशित एवं अवातर रचनाएँ कोन सी हैं? इनका ठीक से वर्ता चल जाए।

प्राकृत भाषा का स्तोथ-साहित्य भी उत्केवनीय है भ्रतः प्रकरणों, कुलकों, स्तोत्रों, मुभायित पद्यों के स्वतन्त्र संघर्ष-ग्रन्थ प्रकाशित होने चाहिए। मैंने जैन कुलकों की एक सूची अपने लेख में प्रकाशित की थी उसमें जाताधिक कुलकों की सूची दी गई थी।

प्राकृत जैन साहित्य को कई प्रकारों में विभक्त लिया जा सकता है। जैन आगमिक-अंग, उपाय, छन्द-सूत्र, मूल सूत्र आदि तो प्रसिद्ध हैं। दार्शनिक साहित्य में गम्भाति प्रहरण आदि अनेक ग्रन्थ हैं। भ्रोपदेशिक गाहित्य में 'उपदेशमाला' जैन ग्रन्थ की एक लम्बी परम्परा है। प्रकरण-साहित्य में जीव विचार नवतत्वे दण्डक खेत्र समाज, संघर्षी, कर्म-

५२५ आदि संकड़ों प्रश्नण दग्ध है। चरित-वाय-महादुर्गों से सावन्धित हंकड़ों परित काय्य प्राप्त है। कपा प्राय एवं और पर में अनेक संकड़ों छोटी-बड़ी कपाएं (वत्तम रूप से और टीकाओं भादि में लाई जाती है)।

गर्वजनोपयोगी साहित्य इवाचरण, उन्नद, कोप, अलंकार भादि काव्याचारणीय शंखो का प्रयोग होता है। प्राकृत के कई कोण इर्ष्या लम्ब पर प्रयोगित हो चुके हैं। पाइयतच्छी नामानामा और जयशामन उन्नद पर्यन्त तो प्रगिद है। भवत्वार इस एकमात्र प्रथा अलंकार दण्डण, जीसलम्बर अन्डार को ताटपत्रों प्रति ने मिला था। चिरे पेरे भतीजे भवरसास ने इन्होंने अनुवाद के मध्य 'पहचार' के सभी अधिनन्दन प्रथा में प्रकाशित करवा दिया है। भौवरसास ने प्राकृत में गुण पर्यों की रचना भी यही है और 'जीयदया प्रकरण' नामानुवादक प्रकरण और यासपोष प्रकरण को भी हिन्दी अनुवाद तट्टित हमारे 'अमरजैन प्रथा भासा' से प्रकाशित करवाया है। ठाकुर कल्की 'शाहोत्पत्ति' गू० वी० हिस्टोरिकल जनस में सानुवाद दा० वासुदेव चरण अवधार के द्वारा प्रकाशित करवा दी है। 'द्रव्य-परीक्षा सानुवाद' के टिप्पणी सिखने के लिए ड० दशरथ जर्मा को दिया हुआ है। इसी तरह बाँगड़ा शजवंग सम्बन्धी एक महारंगी पूर्ण प्राकृत रथना का भी भवरसास ने अनुवाद किया है उस पर भी ऐतिहासिक टिप्पणिय-दा० दशरथ जर्मा लिख देंगे, तब प्रकाशित की जायगी। प्रकाशित भासा व सुभवित प्रथा अनुपवर्धन प्रकाशित है, प्राकृत के कई उपोतिप द्वय मध्य भासा जैन मुनि दाप चुके हैं।

अनुपवर्धन प्राकृत रचनाएं

प्राकृत का यहूत दा० साहित्य अव अनुवादधृत है। उदाहरणार्थ :— स्थानीय शूद्र में दश 'दशाओं' के नाम व भेद मिलते हैं। उनमें से यहूत से श्रेष्ठ अव प्राप्त नहीं है। इसी प्रवार 'नन्दी शूद्र' में सम्बन्ध शूद्र और विभाषामूल के अन्तर्गत जिन शूद्रों वे नाम मिलते हैं, उनमें से भी कई वंश अव नहीं मिलते हैं। जैसे महाकल्प, महाप्रब्लवा, विज्ञाचारण-विज्ञ-इष्टओं, लायवितोहो, खुड़िजायिताणपति भी दहृ-मिटा दिलायितभटी, अपच्छियः, वन्द-पूषिय, विवाहनूलिया अक्षयोदयाः, यहायोदयाः, युहलोदयाः, धरमोदयाः, वेसामोदयवाए वेसंप्रदोषवाए, देविदोषवाए, द्वाषुमुन, समुद्र यहूय, नामपादायिदःक्षो, आसीदिदःक्षःइणाण दिदिदिक्षिभावाणाण, हुमित्यभावाणाण, महायुमित्यभावाणाण, लेयायित्यनिरुभाणं परिद शूद्र में भी इनका उल्लेख मिलता है। 'ध्यवहार' शूद्र आदि में भी जिन आवश्यक ग्रन्थों का उल्लेख है, उनमें भी कुछ प्राप्त नहीं है।

प्राकृत भासा के कई मुन्दर कथा-प्रव जिनका उल्लेख ही मिलता है अव नहीं मिलते हैं। उदाहरणार्थ पादलित मूरि भी 'उद्ग लहंगश' उपर चित्तेनावश्यक भास्य आदि में उल्लिखित 'वरयाहृनदसा' रहा। यमधेना, यमददही, इसी दृढ़ ११६३ दत्तात्री के चित्तेनवर मूरि भी लंगावर्डादा, भी नाम नहीं है। उन् पर्यन्त में दाचीन ग्रन्थों के नाम नहीं मिलते हैं, पर वे शीखों के रखे हुए हैं; जिन उद्ग लहंगान्दृ, दाचीन याद वा उल्लेख मिलता है पर वह नप्राप्त है। प्रश्ननामस्त्र के गति 'योनिपादुर्गी' की एक मात्र अद्यूषं प्रति भवदारकर

ओरिंगटन इंस्टीटियूट पूरा में संवत् १५८२ की लिखी हुई है। इसी दूसरी प्रति की ओज प्रकाशित करना पाहिये।

प्रथम व्याकरण सूत्र भी अब मूल रूप में प्राप्त नहीं है बिसक। इस विवरण सम्बन्धीय और नवीन गृह में मिलता है। इसी तरह के जाल वाम सूत्र वेषाल की राजकीय लालूरी में है। मिसे इसी नवाल प्राप्त करने के लिए प्रेरणा की भी और उत्तराखणी गुनिया! नवयन वी के अधिकारी गृह योगलाल और उत्तराखणी वी रामलालगी गोलडा वा नवाल के बहुत बड़े जैन आपारी हैं, उन्होंने नाम करवा दे नगवा दी भी है पर भीष्मी गाफ़ से देखने में नहीं आई। अतः गाँठ और जैसलमेर भण्डार में प्राप्त 'जगदाहु' और प्रगत व्याकरण से वह किसी मिलता रहता है, पर यह विवा निलान किये नहीं रहा जा सकता;

प्रेसाव के जैन अड़खी वा, पर हमनगर-दिल्ली के श्वेतांबर देव मन्दिर में अच्छा समझ हो रहा है। उसमें शोध करने पर मुझे एक अज्ञात बिन्दु पश्चिमी प्रति प्राप्त हुई है। फिर इसकी एक और प्रति निवापन शान भण्डार, जगदुर में भी मिली है। मैंने इस अन्नात सूत्र के संबंध में 'दग्धण' के बून ७१ अंक नं चंद्रिक प्रदान किया हूँ। इसका सम्पादन करने के लिए मुनि धीनयमन और कोइसकी लापी दी गयी है। प्राकृत वा यह गृह न्यून छोटा वा है पर हमें इससे यह प्रेरणा मिलती है कि बन्ध जान-भण्डारों में भी खोजने पर ऐसी अन्नात रखताएँ और भी मिल रहेंगी।

इसी शारी के अंतर्वार्त ब्रन-भद्रि तूरि के 'दारादण' नामक धर्म का प्रगाढ़क-चरित्र आदि में ही उल्लेख मिलता था पर उसकी किंवद्दी भी भण्डार में कोई भी प्रति प्राप्त नहीं थी। हमें की बात है कि इसकी एक प्रति मैंने लोज निकाली है। वैसे बहुत वर्ष पहले इसकी यह प्रति अश्रीयगंगा में यति ज्ञानवन्द जी के पास मैंने देवी दी पर फिर प्रयत्न करने पर भी वह भित नहीं लगी थी। गत वर्ष अचानक वीकानेर के श्री पूज्यगी का संज्ञान, जो कि राजस्थान प्राष्ठविष्णा प्रांतपाल की वाकानेर शावा में दे दिया गया है, उसमें यह प्रति मिल गई, तो इसका विवरण मैंने 'रीरवाणो' में तत्काल प्रकाशित कर दिया। उसको सूचता पढ़ते ही मुझे डॉ० १० एवं १० उपाध्याय ने पत्र लिखा और उन्होंने फोटो-प्रति करवा ला है।

इसी दरह १० घण्टे पूर्व प्राकृत भाषा के जैनेतर कामशास्त्र को एक मात्र अवृण्ड प्रति मुझे मनूर गंगाकृत लालूरी वीकानेर में प्राप्त हुई थी। प्राकृत भाषा के इस 'एक मात्र कामशास्त्र' का नाम है 'मदन मुकुट'। यह गोसल ग्राहण ने दियु के तीरवर्ती 'मालिक' महापुर में रखा था। इसका विवरण मैंने तीस वर्ष पहले 'भारतीय विद्या' वर्ष २ अंक २ में प्रकाशित कर दिया था। उस समय की प्राप्ति में सीजरे परिच्छेद की पोनतीस गाथाओं तक का ही अन्त मिला था। जभी दो-पीन वर्ष पहले जय में मा० ८० भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद का संग्रह देख रहा था तो मुझे इसकी युगे प्रति प्राप्त हो गई। जो संवत् १९६६ की लिखा हुई है। वभी हमार सप्तह में ६ दिन १० अंक दे इसके अनुसार यह प्राकृत कामशास्त्र ६ परिच्छेदों में पूर्ण होता है। जैनेतर व्यवि के रौचत प्राकृत के इस एक मात्र कामशास्त्र को योग्य ही प्रकाशित करना चाहिये।

प्राकृत की भाँति अपन्नंश साहित्य का कई दृष्टियों से बहुत ही महरय है। पर अभी तक उन तर दृष्टियों से गण्यतरन् परं गुल्मान नहीं फिला गया है। अन्यथा जिस प्रकार प्राचीन भारतीय संस्कृति, साहित्यिक परम्परा और भाषा विज्ञान की दृष्टि से संस्कृत साहित्य का आजीवनात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन किया गया व किया जा रहा है। उसी तरह प्राकृत एवं अपन्नंश साहित्य का होता तो जैसा कि पहले बतलाया गया है, लोक भाषाओं का उत्तर-प्राकृत भाषा में ही है, हजारों लोक प्रचलित शब्द प्राकृत से अपन्नंश में होते हुए बतेमान रूप में आये हैं और कई शब्द तो ज्याँ के त्यों ढाई हजार वर्षों से प्रयुक्त हो रहे हैं। उनकी जानकारी मिल जाती कई व्याकरण के प्रत्यय आदि भी प्राचीन भाषा में प्राकृत से संबंधित सिद्ध होते हैं इस सम्बन्ध में कभी एक विस्तृत निवाख 'श्रमण' में छपा है। 'जन भारती' में प्रकाशित लेरा दयो ताठों के लेख में श्रो ८० वेचरदासजी आदि के ग्रन्थों में ऐसे संकड़ों शब्द उद्भूत किये गये हैं जिनका गूल संस्कृत में न होकर प्राकृत में है। जैन आगमों में प्रयुक्त हजारों शब्द सामान्य परिवर्तन के भाव आज भी प्राचीन भाषाओं में बोले जाते हैं।

प्राकृत, जन-भाषा भी, इसलिए जनता में प्रचलित अनेक काव्य-विधाएँ एवं प्रकार अपन्नंश और प्राचीन भाषा में अपनाये गये। सेहड़ों व हजारों कहावतें एवं मुहावरे भी प्राकृत ग्रन्थों में निलंते हैं एवं आज भी लोक अवहार में प्रचलित हैं। प्राकृत ग्रन्थों की कहावतें, जो राजस्थान में अब भी बोली जाती हैं, उनके सम्बन्ध में डा० कन्दूयालाल का गोष्ठ-प्रबन्ध दृष्टव्य है।

प्राकृत साहित्य का सांस्कृतिक महरब सर्वाधिक है। क्योंकि जन-जोवन का जितना अधिक वास्तविक विषय प्राकृत-अपन्नंश साहित्य में मिलता है, उतना संस्कृत साहित्य में नहीं मिलता। क्योंकि संस्कृत के विद्वान् अधिकांश राज्याधित एवं तथरों में रहने वाले थे। अतः गौवों और साधारण नागरियों का स्वाभाविक भिषण ये अधिक नहीं कर पाए। अलंकारों आदि से संस्कृत के महाकवियों ने अपने काथरों को बोझल बना दिया क्योंकि उनका उहेश्य पर्वों-प्रदर्शन ही अधिक रहा है, जबकि प्राकृत साहित्य के प्रधान-निमित्ता जैन मुनिगण, गौवों में और जन साधारण में आने साहित्य का प्रवार अधिक करते रहे हैं, इस दृष्टि से वे लोक छति को व्याप में रखते हुए लोक-कथाओं, दृष्टान्तों की सरल भाषा में लिखते का प्रयास करते थे जिससे साधारण लोग भी अविकाशिक लाभ उठा सके। डा० मोतीचन्द जी आदि ने प्राकृत-साहित्य की प्रशंसा करते हुए 'कुवस्यमाता' आदि का सांस्कृतिक महत्व पहुत अधिक बतलाया है। प्रतः भारतीय जन तीव्र और लोक प्रनवित गीति-रिचाज विश्वास आदि के संबंध में प्राकृत गीति-रिचाज तथा प्रतः ही रहती है।

प्रदूत कम लोगों ने यह मान्यता होना तक पायाल ने संस्कृत एवं लोक भाषाओं का इतना अधिक प्रभाव बहु जाने पर भी प्राकृत नाहित्य के निर्भाग जो परम्परा निरंतर

चलती रही है। जिसी भी जातावदी का कोई चरण शाब्द ही ऐसा भिले, जिसमें थोड़ी बहुत प्राकृत रचनाएँ न बनी हों। वर्तमान में भी वह परम्परा चालू है। यहां सात आवायें 'विजय-पदमधुरि' ने प्राकृत में काफी लिखा है। विजयकस्तुरि सूरि ने भी कई संस्कृत ग्रंथों को प्राकृत में ल्पान्तरित किया है। तेरापंथी मुनि व्याधन मुनिजी रचित प्राकृत 'रमणवालकहा' अभी-अभी प्रकाशित हुआ है और जयाचायं का प्राकृत जीवन-विरच 'जैत भारती' में निकाला रहा है। और भी कई साधु साड़ी प्राकृत में लिखते हैं तथा भाषण देते हैं। तथा प्राकृत के अभ्यास में निरत्तर लगे हुए हैं। पर अभी कोई ग्रन्थ ऐसा नहीं लिखा गया, जिसमें प्रत्येक जातावदी में उनी ही रचनाओं की काल-कमानुसार सूची दी गई है। नेत्री रथ में ऐसा एक ग्रन्थ शोध ही प्रकाशित करना चाहिए। जिससे ढाई हजार वर्षों की प्राकृत साहित्य की प्रगति और अविच्छिन्न प्रवाह की ठीक से जानकारी मिल सके।

प्राकृत के महावालीन बहुत से ग्रन्थ अप्रकाशित हैं। उनके प्रकाशन की योजना बनानी चाहिए। कुछ प्राकृत साहित्य परिषद् से प्रकाशित हुए हैं। पर भेरा मुभाव यह है कि हमसे पहले प्राकृत की ठोटी-ठोटी रचनाएँ जितनी भी हैं, उनका संग्रह 'काव्य माला' संस्कृत सिरोज की तरह प्रकाशित किया जाय। अभ्यास वे थोड़े समय में ही लुप्त हो जाएंगी। अभी तक न तो उनकी जानकारी ही ठीक से प्रकाश में आई है त उनके संग्रह ग्रन्थ ही अधिक निकलते हैं। १२वीं जातावदी से ऐसी अनेक संग्रह-प्रतियाँ मिलने लगती हैं और फुटकर प्रतियाँ में भी हजारों को संब्या में मिलती हैं जो बचावधि संवंधा उपेक्षित सी रही है।

प्राकृत से अपभ्रंश और उससे प्रांतीय भाषाएँ निकली। यह भी विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि परवतीं हिन्दी, राजस्थान, गुजराती रचनाओं में उन रचनाओं की भाषा को कवियों ने स्वयं 'प्राकृत' बतलाया है। वही 'प्राकृत' शब्द का अर्थ 'जन भाषा' ही अभिप्रेत है।

अपभ्रंश के दिगम्बर चर्चित-काव्य तो कुछ प्रकाशित हुए हैं और उनकी जानकारी भी ठीक से प्रकाश में आई है पर एवेतांकर अपभ्रंश रचनाओं का समुचित अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया है। जितनी विविधता, एवेतांकर अपभ्रंश साहित्य में है। उतनी दिगम्बर अपभ्रंश साहित्य में नहीं है अतः हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती, काव्यरूपों या प्रकारों का अध्ययन करते समय मैंने प्रायः सभी की परम्परा 'बपद्मांश' से जोड़ने या बतलाने का प्रयत्न किया है। विविध विधाओं एवं प्रकारों की मूल अपभ्रंश रचनाओं का संग्रह भी प्रकाशित किया जाता आवश्यक है। हमने ऐसी रचनाएँ अपने एतिहासिक जैन काव्य 'संग्रह' दादाजिन दत्तसूरि, 'मणिधारी जनचन्द्रसूरि आदि ग्रंथों' में तथा विविध लेखों में प्रकाशित करने का प्रयत्न किया है। हमारा अभी ५८ ऐसा संग्रह-ग्रन्थ मुनि ला० द० भारतीय संस्कृति विद्या भान्दिर अहमदाबाद रे ७१ रहा है। इससे प्राचीन काव्यों रूपों और भाषा के विभास के अध्ययन में अवश्य ही सहायता मिलेगी।

□ श्री अवश्यनक जी नाहदा
[मुद्रात्मक नामहस्ताक्षर]

प्राकृत साहित्य की विविधता और विशालता

भाष्यकार की स्थानांशिक विविधता को खोया गया गम पड़ता है। यह व्यापक विविधता के बीच में अनेक रूपों और नामों से डिस्ट्रिक्ट है : जैसे ग्रन्थकार यह एक विविधता है जैसे और उन्हीं के बिंदु प्राकृत संग्रह स्वृ॑हि गद्दे हैं। जैसे व्रचंसामधी, महाचंद्री, बोटामी, चंगापी आदि । यांतों के लिए में दो प्राकृत वाक्यों पुरानी है । एक साहित्य उत्तरांश इसना पुराना नहीं लिखता । उत्तरांश उपलब्ध एवं नों में सदसे प्रसारे 'पद' माने जाते हैं, जिन्हीं वाक्यों ने दिक्षांग-प्राकृत । भगवान् पश्चात्यांश और वृद्धि वृद्धि में धन्वन् प्रधार किया । रोमों दी तमाहान्तरं तमाहान्तरं सहायुषा वृद्धि और उत्तरांश विभरण वृद्धि नीं प्राप्तः एक हो सहा है । परं दोनों यी वाक्यों जिन सापाङ्कों में उपलब्ध हैं, उनमें भिन्नता है । यासी नाम यथापि भाषा के लिए मापीन भास नहीं है, परं दोहर विविट्कों की भाषा का नाम यासी प्रसिद्ध हो गया । भगवान् भगवान्नीर यी वापी जो जैन आनंदों पे प्राप्त है, उने 'भर्त्यमापी' भाषा की संसा दी गई है । व्याख्यक मग्न्य जग्न्य उत्तरांश वसान्यान्ति रुद्धि ॥ ३६ ॥ याको नामान्ति 'नामान्ति' वृद्धि भगवान् भगवान्नीर ने भी इसी वीदासे किये । उसके अस्य-भास के प्रदेश में भी उनके कई वांमासे हुए । इसीलए भगवान्नी भाषा यी प्रधानता स्थानांशिक ही है । एह गग्न्य जग्न्य में भी वृद्धि प्राप्तों के लोक आत-नाते रहते ये और वह गम्य ये तथा भग्न्य भग्न्य भग्न्य भग्न्य में वृद्धारे ये अनः उनकी वर्णी भग्नी लोक तमाह भग्न्य, इति कारण भिज्जै-त्रुद्धि होते ये उसको 'अव्यवत्त्वं' कहा गया है । आगे भलकर जैन-धर्म का प्रधार परिवर्त्तन और दक्षिण की ओर लंबिक होने लगा एवं रवेदाम्बर सम्प्रदाय के जो प्रस्तुत रखे गये, उनको भाषा को महाराष्ट्री प्राकृत घोर दिग्नवार सम्प्रदाय के प्रन्थों की भाषा को 'प्रोरसेनी' प्राकृत कहा गया । प्राकृत का प्रभास ऐसे यतान्त्रिकों वसा वहूत अस्त्रा रहा । परं अस्त्रा तो एक विक्रमनवीय तस्व है । अतः उसमें परिवर्तन देखा गया और योन्हीं उठावी उदाददों में उमे 'अपद्धति' यी लम्हा प्राप्त हुई । धर्मभृता में भी जैन कवियों ने वहूत वृद्धि साहित्य-निर्माण किया है । धर्मभृता में ही अस्त्र भलकर उत्तर-भारत की तभी वौलियों विकसित हुई । उनमें से नावरुद्धी, गुजराती और हिन्दी में भी प्रचूर जैन-साहित्य रक्खा गया ।

प्राकृत के प्रचार और भ्रमाद के कारण यी संस्कृत के वृद्ध-वृद्धि कवियों ने जो नाटक लिख, उनमें अन-साधारण की भाषा के लिए वृद्धि भ्रमाद के जो नाटक लिख, उनमें अन-साधारण की भाषा के लिए वृद्धि भ्रमाद के जो नाटक लिखा है । कालिदास, भास, आदि के

नाटक इसमें प्रमाण है। गिनवेलों में जी दुम से लेकर प्राकृत भाषा में उल्लिखि भिजते हैं। इसमें प्राकृत भाषा के कई लाभी और दिक्षास को बनाए जानावारी बिल जाती है। वद्यवि प्राकृत में सार्वजनिक रचना की परम्परा ऐसी जैवी से रही, जैवी व्याख्या विश्वासी परम्पराओं का आधार में नहीं रही, पर जैवतर विद्वानों ने भी प्राकृत भाषा के व्याकरण अनुयाय है जो उस कुछ काव्यादि रचनाओं भी उनको भिजती है। इससे सिद्ध होता है कि नस्कृत का प्रभाव यह था कि भी प्राकृत रचना डंगित मही हुई और जैवतर जैवक भी इस अपराह्न रहे।

प्राकृत वार्तिक विविध द्रष्टव्य का भी यह इसी से जुड़ा है। जैवी तक सूक्ष्मी दोहो-दोहो रचनाओं की भी पूरी जानकारी भी प्रकृत में नहीं प्राप्त है। वास्तव में जौही जैवी की व्याकरणीय उपस्थिति नहीं हुई तो भी भावित है। जैवीक इनमें से कई की व्यूह है जानकारिकी भी नहीं प्राप्त होती है। वैसे-वैसे यन्मों में जो वास्तविकतर की जाती जाती है, उनमें से अबर्दी और कर्म की व्यूह अद्यतीत व्याकरण-व्याकरण और कुलदीनी आदि में यूक जी रहे हैं। उनका उद्देश यही था कि यह उद्देश ग्रन्थ सब नहीं रहे जो जा सकते और छोटे ग्रन्थों का व्याकरण की वाद कर लेना गुणम हीना, अतः सारमूल वाले व्यक्तिगत में सुविधा रहेंगे। ऐसे व्यूह में प्रकरण आदि कुलदीनी जैवी तक अप्रकाशित है। उद्यम संघर्ष एवं अपाराह्न व्यूह हो रही है—जानकारी कुछ समय के बाद एवं प्रकाशित हो जाएगी। ऐसी अवश्यकता व्यूहदाता द्वारा दर्शायी गयी है। इसस्मिति ग्रन्थों की नूरी यातांत्र यथा भी इनकी उद्देश्य के लिए जाती है। पर यद्यपि प्रतिग्रन्थों भी भी पूरी नूरी यातांत्र व्याकरण आहित, विद्यमें प्रोत्तिष्ठा रचनावारों के भवित्वित अप्रस्तुति एवं अभाव स्वयंसारे दीप्ति-की है। इनका दोहों ने यह लक्ष नहीं।

प्राकृत भाषाओं का 'सोन-वाहित्य' भी इतिहासीय है, अवश्यक भक्तिगान, गुरु-गीत, भास्त्राचार, गुरुगीति पद्धति के स्वतन्त्र तथा हृष्ट-द्रव्य व्रक्तिगत होने वाहित्य। जैवी जैन कुलदीनों की एक नूरी भृपति लेख में प्रकाशित की गई, उनमें प्राकृतिक कुलदीनों की गृहीं दी गई थी।

प्राकृत वैत-वाहित्य को अद्य दोहों में विवेक दिया जा सकता है। अद्य—भाग्यमिदा, अम-उपासा, छन्द, सुख-द्रव्य वाहित्य की प्रतिष्ठा है। वार्तिक वार्तिक में सम्पत्तिप्रकरण भारी अनेक ग्रन्थ हैं। ओपेंट-गिक साहित्य में 'इरादेश भावना' जैवी ग्रन्थों की यूक जान्दी प्रकाशित है। प्रकरण वार्तिक में भौद-विद्यार, नवतत्त्व, द्रव्यदाता, क्षेत्र नृपत्व, नृपत्वशी, वस्त्रवाच भास्त्र जैवी ग्रन्थ है। नहागृहीं ये सम्बन्धित दोहों वित्त काम्य ग्रन्थ हैं। काम्यान्वय ग्रन्थ और वय म है। संदर्भ लोक-वर्णी ग्रन्थ एवं और दीक्षामों आदि में पाई जाती है।

संबंधित ग्रन्थोंगी साहित्य में व्याकरण, छन्द, काम्य, असंकार आदि काम्यवास्त्रोंय ग्रन्थों का समावेश होता है। प्राकृत के कई कोप-एवं छन्द ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। 'पाइय लच्छी नाममाला' और 'जगदामन छन्द' प्रसिद्ध हैं। असंकार का एकमात्र द्रव्य 'असंकार द्रव्य' जैसलमन भगवार यही ताङ्ग-प्रदीप ग्रन्थ में दिला था, जिस नंद नहानंज भवदलाल ने इस्या अनुवाद के साथ मराठकेतरी अभिनवद्वन ग्रन्थ में प्रकाशित करवा दिया है। असंकार का प्राकृत में कुछ ग्रन्थों की रक्षा जी चुके हैं और जीववृत्ता

प्रस्तुत, जासा वृगुक इकारण और जानवों प्रकाश को की। इसी अनुवाद सहित हमारे "अभय चेन्न-प्राच्यात्मक" में अकादित लक्षणों का अनुवाद किया गया है। उसमें से "जनवरों का अनुवाद" और "विवाहों का अनुवाद" भी उसमें हिस्टी अनुवाद किया है। उसमें से "जनवरों का अनुवाद" को ज्ञान "अभय चेन्न प्राच्यात्मक" से जानकारी हो चुकी है। आमतौर पर, ए. हिस्टी अकाद जगत के जानकार इस वास्तुदेवताओं अद्वाल के द्वारा प्रकाशित करता है है। "द्वच-नालिया" मानुषाद टिप्पत्ति लिखने के लिए इस द्वच नालिया को की दूर है। इसी तरह जानकार जानवों सम्बन्धी एक वास्तुदेवता रखता का भी अद्वाल ने अनुवाद किया है। उस पर ऐतिहासिक टिक्कियां दी दीर्घ बासी राजा, तथा प्रकाशित की जायेगी।

अनुपसंधि प्राकृत रघुनामे, प्राकृत का उत्तरवाच गालिय यह अनुपसंधि है। उत्तरवाच—उत्तरवाचन्द्र में दो ट्राक्टों के नाम पर ऐसे विलें हैं। उनमें से यहाँ से पत्ते अब अपाप्त नहीं हैं। इसी प्रकार वर्णोंगुप्त के नामों त्रृत और विद्या गृह के वर्णोंगुप्त के नाम विलें हैं। उनमें सी कई प्रम्य अब नहीं विलें हैं। ये—नहाक्का वहारनवग्न, विहाराचार्त, विविधाचार्त, आदिविभार्त, खुट्टिद्वाविभार्तविभार्ती, यहुलिया विवाच विवाची, लंगवृत्तिया, शानकुलिया, विवाह-नृलिया अद्वाल-ववाए, वसुचोपवाए, युद्धोपवाए, धर्मोपवाए, वेष्ठोपवाए, वेत्तप्रोपवाए, देविदोपवाए, उद्गुणगुप्त, समुद्राजन्मुप्त, नागपरियावचियांभो, आहाराक्षानालग्नान, दिन्दिविभाववाचान, युविभाववाचान, वहारुनिवाचवाचान, तेयामिनिवाचान। पाठिक गृह में भी इनका उत्तरवाच विलें है। अवधार सूत्र अवार्द में भी विवाच आगम प्रम्यों का उत्तरेत है, उनमें से भी कुछ जाप्त नहीं है।

प्राकृत भाषा के कई गुन्दर अध्यात्मिक जितका उत्तरवाच विलें है, अब नहीं विलें। उत्तरवाच—पात्तिलिङ्गुर को "दर्शनवर्द्धकदा" जाना विवेचनपूर्वक जाना अवृत्ति के अन्तर्गत "प्रश्नावाहयमालका", प्राचीनीया, वराप्रवर्ती। इसी तरह १५०० जातियों के विवेचनवर्द्धक को "जीतवर्द्धकदा" भी प्राप्त नहीं है। कई प्रम्य प्राचीन भृत्यों के नाम भाले विलें हैं पर ये योठे के रखे हुए हैं—जिस प्रकार "जोगीपाहुड़" प्राचीन ग्रंथ का उत्तरेत विलें है, पर वह अद्वाल है। प्रस्तुतवाच के रचित योनिराहुड़ की भी एक आप भपूर्ण प्रति भाष्टारकर भोरियड्डन रास्टीड्ड, दूता में सम्भृत ११८२ की लिद्दी हुई है। इसकी दूसरी प्रति की सोञ्ज करते उत्ते सम्भालित करते प्रकाशित करता चाहिए। प्रवन्ध्याकरण गृह भी अब मूल रूप में ग्राप्त नहीं है, जितका हि विवरण सम्भालय और नग्नी गृह में विलें है। इसी तरह के नाम यत्का एक सूख नग्नी की यजक्षीय नाइक्षीय में है। मिने इसकी नवाल प्राप्त करते के लिए प्रेरणा की भी धौर तेजापाली सूनियो नवमयल जी के लक्ष्मानूसार गतनदृष्ट के धौर जाग्नाल जी गोलका जी नेपाल के बहुत यहूं देन चाहायी है, उहाँने नवाल करवा के बोलदा जी की है : पर अभी तक वह देखने में नहीं आई असः पाठ्य और ज्ञेयमंत्र भवधार में ग्राप्त व्यापारुड़ और प्रवन्ध्याकरण में वह विलें विलें रखता है ? यह जिता विलान लिये जही रहा जा जाता :

वजाद के जेत भवधारों का अब हप्तमार दिली के ग्रंथाम्बर जेन मनिदेव में अपहा ग्रंथ ही राया है, उनमें शोध करते पर युत एक भवान विन्दुदिवासूत्र भी व्रजि प्राप्त हुई है। फिर इसकी एक और प्रति विन्दुदिवासूत्र भाव-भवधार जयपुर में भी मिली है। मिने इस भवान गृह के सम्बन्ध में अमर के

जून ३१ अंक में समिति-प्रकाश दाता है। इसका सम्प्रदान करने के लिए भूतिधो नवमलजी को इसकी कांडी दी गई है। प्राकृत का यह भूत पर्याय छाड़ा-सा है पर उमे इससे यह प्रेरणा निलंबी है कि अन्य ज्ञान-मान्दारों में भी खोजने पर ऐसी अज्ञात रथनाएँ और भी मिल सकती हैं।

इसी पाठी के निष्ठाद विवरणिति के 'गाराण' नामक प्रथम का प्रशासक-चारित्र आदि में दर्शाएँ ही मिलता था पर किनी भी भष्टार य कोई प्रति प्राप्त नहीं थी, इसकी भी एक प्रति बैठे छोड़ निकाली है। वैसे यहुत वर्ष पश्चि इतनी यह प्रति अजीमांच में प्रति भूतमय की के पास में देखी थी एवं किर प्रथम करने पर भी वह भिस नहीं रही थी। यत्वर्य अज्ञानक वीरानिर के थीपूज्यजी का सघ्रह जो कि राजस्वात् प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान की थीकानेश ज्ञाना में ये दिवा रहा है, उसमें यह प्रति गिर गई, तो उसका विवरण देने 'बोर्याणी' में वहाँ व्रकाशित कर दिया। उसकी रचना पक्षते ही मुझे ३० ५० एवं ८० उपाध्याय ने यथा विवा और उहाँने रोटी-प्रसि रखा थी है। यसी तरह १० वर्ष-पूर्व भारत के प्राकृत ज्ञेतार भूतमलास्त्र की यह भाषा अपूर्ण प्रसि भुजे अतृप्त संग्रह लाईरे ही में प्राप्त हुई थी। प्राकृत भाषा के इस एक्षयाद ज्ञानास्त्र का भाग वे 'पदनमुकुन'। यह गोसद प्राप्ति ने गिन्ति के गीरवार्ता मालिक महाद्वार में रखा था। उनका विवरण यह भी था कि "गारतीय विद्या" वर्ष २, अंक २ में प्रकाशित कर दिया था। उसी गोद की प्राप्ति प्रति में तारार परिच्छेद की पतीस गायाओं का ही वर्ण दिया था। अभी दो-तीन वर्ष पश्चें जब ग ज्ञान ८० भारतीय पक्षकृति विद्या-मन्दिर, अदृपदावाद का संब्रह लेख रहा था तो युजे इनकी गृही प्रति प्राप्त हो गई, जो सम्बत् १५६६ की विद्या हुई है। इसके अनुसार यह प्राकृत कामगार्व लः परिच्छेदों में रुप्त होता है। ज्ञेतार कवि के रचित प्राकृत के इस एकमात्र ज्ञानास्त्र को शीक्ष प्रकाशित करता चाहिए।

प्राकृत की भूति अपन्ने साहित्य का कई हित्यों से बहुत ही महत्व है, पर अभी तक इस टृष्णि में अध्ययन पूर्व नहीं किया गया है। भव्यभा जिस प्रदार प्राचीन भारतीय संस्कृति, साहित्यिक इतिहास और भाषाविज्ञान की दृष्टि ते संस्कृत साहित्य का भालोचभास्त्रक एवं सांस्कृतिक अध्ययन किया गया व किया जाता रहा है, उसी तरह प्राकृत, अपन्ना साहित्य का भी होता है। जैसा कि पहले वर्तवाया रखा है, सोक भाषाओं का उस प्राकृत भाषा में ही है। हजारों मोक्षस्तित शब्द, प्राकृत से अपन्ना में होते हुए वर्तमान स्थ में भावे हैं और कई शब्द तो ज्यो-केत्यों वर्थों से प्रयुक्त होते आ रहे हैं; कई व्याकरण के प्रत्यय आदि भी ग्रान्तीय भाषा में प्राकृत से सम्बन्धित सिद्ध होते हैं। इस सम्बन्ध में अभी एक विस्तृत निवन्ध 'अध्यय' में लिया है। 'जैन भारती' में प्रकाशित तेरापन्थी साध्वी के लेख में वौट ८० वेचरदात जी आदि हे पत्न्यों में एके रैकड़ों लम्ब उद्दल किये गये हैं, जिनमा मूल संकृत में ग होकर प्राकृत में है। जैन-आगमों ने अनुकूल हृजारों शब्द ज्ञानाय परिवर्तन के माध्यम भी ग्रान्तीय भाषाओं में बोले जाते हैं।

प्राकृत ज्ञानभाषा-धो, इसलिए जनसा में प्रचलित ज्ञेता काल्य विद्याएँ एवं प्राप्तार अपन्ना और ग्रान्तीय भाषा में अनाये रहे। सकड़ा व्य हृदारों कटाक्षते एवं मुहावरे भी प्राकृत भूत्यों में मिलते हैं एवं

आप भी कोक्षधर्मार्थ में दर्शित हैं। प्राचल पर्यावरण विभाग से गतविधि में अब भी बोर्ड राती है, उसी विधि में एवं उन्नीसवाँ वर्षों का जोड़-पूछ दर्शक है।

प्राकृत साहित्य का मानविक प्रदर्शन वर्णनिक है। उक्ति इसकी वाक्यों के उत्तराभिरुप वस्तुता, अवश्यक साहित्य में विद्यता है, उनमें बहुत गारिक न भई विद्यता। गारिक संस्कृत के विद्यान अधिकार यज्ञादित् एवं नवां में रहने वाले हे वह; जो वो और याधारणा नामिकों का व्यापारिक प्रधन के अधिक नहीं हर वादे। अनेकांते आदि गे लंकुला महाराष्ट्रियों ने अपने कानों को पोसिस यात्रा विद्या, गारिक उक्ता एवं या यात्राय-यात्रायें ही भ्रष्टक रहा। यद्यकि प्राकृत साहित्य के अपार निर्भीता रंगनुविलग, गारिकों में और अन्याध्यारण में अतने साहित्य का प्रचार अधिक होते हैं है, इस रूप्ति ने लोकाभिरुप को खान में रखते हुए लोक-स्थानों, लोकालों को गरल भाषा में विद्यने का प्रयाप करते हे। विद्यने याधारण लोप में अधिकारिक याम उठा नहे। डॉ. मोरीकर जो आदि ने प्राकृत साहित्य की यज्ञा करते हुए कुशलवर्षाना आदि रा मानविक प्रदर्शन द्वारा अधिक व्यवसाय है। अतः भारतीय जन-सेवन और लोकसभित वीक्षण-विवाद, विचार आदि के अव्यग्र में व्यक्ति साहित्य में व्यक्ति साहित्य का यहात महावर्षाना जनकारी प्राप्त हो सकती है।

बहुत कम गांवों शो यह नाम स्थोका कि मध्यराष्ट्र में गोदृगुन एवं लोक-भाषाओं वा इतना अधिक प्रयाप पड़ जाने पर भी ग्रामीण लोकों के दिवाल दो वर्षावर बिल्लार बसती रही है, किसी भी गतिशील का लोई भरप नामद फी ऐसा जिन लियां भेजी जहाँ प्रायः ग्रामीण लोकों वर्षावर म हुई हैं, वर्तमान एवं भी उह परम्परा चार है। गतेमध्य अखण्ड 'विजयाधर्मी' ने आजुत में लोकी लिखा है। विजयाधर्मी गृहि ने भी उह गम्भीर गम्भीर ग्राहक में लिखा है। वेगापर्वी वृनिधि वामनमुनि जी विजय वस्त्रावर रहनशाल वहाँ खेंच-अधीनी विजयाधर्मी हुई है। और यहाँ यह कि ग्राहक लोकाधर्मिन जिन भारती देवियों का है। भीतर भी उह याम्बुद्धाधी ग्राहक में लिखते हैं वेगा वस्त्रावर देखते हैं और ग्राहक के अधीन में विजयाधर वही हुए हैं। पर अभी योई प्रथा ऐसा नहीं लिया जाता कि विजय वस्त्रावर प्रायेन लोकों में उसी हुई रविताधी की जात्य उम्मनुमार मूर्छी दी जाए है। येरी जल में ऐसा एह वस्त्र योग्य ही प्रथाधित करना चाहिए। लियो राई लोक वारी की ग्राहक लोकिय दो प्रथाएँ और अधिविद्या-व्याहू की श्रेष्ठ अवलोकनीय प्रथा है।

प्राचीन के विभिन्न संस्कृत वर्णन से वर्त्त प्रदर्शनिता है। उनके प्रधानमें की दो अवधि वर्णनों में विद्युत्।
कुछ प्राचीन साहित्य विवरण से इसका विवर हुए है : परंपरा वर्णन वह है कि विश्वों पर्वत प्राचीन की
शोधी-शोधी अवधियों की है उसका संबंध विभिन्न विभिन्न विधियों की दो अवधियों की
जाए। अभ्यास के खोड़ संघर्ष में ही युवा हो जाते हैं। अभ्यास का नाम उनके जागरणीयी श्री श्रीहे
रनानन्द में आई है, न उनके विवर वर्त्त ही अधिक निरूपित है। इसी गतरासी में एकी अनेक विद्या
विधियों विवरण लगती है जो विवरण विवरण की दो अवधियों की है। जो विवरण विवरण की दो अवधियों

प्राकृत में धराधर भीर उसने प्रामाणिक भाष्यकर्ता निकालों द्वारा भी विवेद्य कर्य है जिसकी छिन्नी, राजस्थानी, गुजराती उच्चाराओं के द्वारा उपयोगों में भव्यता की अधिकतम विवरणों के साथ दर्शाय

प्रतीक्षा) है। उही प्राकृत भाषा का इसे जन-जनों की प्रतिक्रिया है। प्राचीन हे विद्यार वर्तित-भाषा तो तुच्छ प्रसाधित हुए हैं और उनमें जागराती ही ठिक ने विद्यामय अपवृणु रखनाओं का ताप्तुलिपि अध्ययन जैसी एक नई शैली बनायी है। विद्यों प्रतिक्रिया जगान्नार भ्रष्टग प्राप्तिक ने है, विद्यार भवन जाहिल्य में नहीं है। प्राची, द्वितीय, प्रावस्थानी, तुर्जाती जन्म-स्थों या इकादें का जन्मदेव फरसे समय में जाय; तब वे जीव विद्यार अपवृणु ए और उने या विद्यानों का प्रदान किया है। प्रियिध विधार्थी एवं प्रकारी की ऐसी विद्यारेण रखनाओं का संपर्क भी प्रसाधित विद्या जाना भावशयक है। हमने उनी पर्व रामायण अथवे एतिहासिक गीत वाचन उत्तर, दाटाविनश्चरामूर्ति, गणितानी विद्यावृद्धूरि आदि रामायण में भवा विद्युत लिखा है विद्यालित रखने का प्रयत्न किया है। हमारा जन्मी एक ऐसा संपर्क प्रयत्न है जो भाष्यकार गंडकीय विद्यामयिता जगत्प्रवाद का एक गति है। इसके दार्शन वाचक-स्थानी और जापानी हे विद्यामय के ब्रह्मणा में विद्युत हो जायाना चिंतित है।

शास्त्र भाषा की लार्दित रहने ही विद्या है। जो ज्यों गोल की आती है, विद्युत वह जागराती विद्यारी रहती है। जागी-जगी हमें नववाहु की जागत उपकार दियी है, फहे व्यापों को भवते ही विद्युत प्रतियों दियी है, आपश्यरता है प्रायुक्त भाषा एवं जाहिल्य जम्माती एवं वैभासिक वैदिका जैसे, जिसमें ओरी-ओरी रखनामें पर वहे व्यापों की जागराती रखना में जारी जाती रहे।

सामग्रिक

प्रकाश का महापर्व दीवाली

— श्री अगरचन्द नाहदा

साहित्य वाचस्पति



ले
ख
क

[श्री नाहदाजी उच्च कोटि के लेखक और मनीषी हैं। आपने अनेक पुस्तकों लिखी हैं और अनेक का समाजन-संकलन किया है। प्रत्युत लेख में दीवाली के इतिहास और महत्व पर जो प्रकाश डाला गया है, वह पठनीय है। — सम्पादक]

अन्धकार कोई नहीं चाहता, यद्योंकि उसमें, गतिशीलता नहीं होती। मनुष्य प्रकाश चाहता है, यद्योंकि वह गति करते हुए प्रगति या उन्नति का इच्छुक है। प्रगति अन्धकार और प्रकाश दोनों की जन्मदाता है। अन्धकार से जब हम प्रकाश की ओर आगे बढ़ते हैं, तभी हमें प्रकाश की जो महान् देन है उसकी अनुभूति होती है।

प्रगति का परिवर्तन-नक्क निरन्तर चलता रहता है। दिन के बाद रात और रात के बाद दिन ने भी कहीं अन्धकार एवं कभी प्रकाश व्याप्त होता रहता है। साय ही रात को चन्द्रमा की कलाओं के विकास के साथ-साय अन्धकार और प्रकाश की अछलेलियाँ होती रहती हैं। जीवन को आगे यद्याने में प्रकाश यानी दिन भी अंत्यधिक आवश्यकता है। अन्धकार में स्थानादिक रूप से निशा आ घेरती है और जब कोई व्यक्ति काम करना चाहता है तब उसकी दिशा तथा साधन दिखाई न देने पर गति एक जाती है। इसीलिए मनुष्य ने अन्धकार में भी अपने काम को चालू रखने के लिए 'दीपक' का आविष्कार किया। यद्योंकि सूर्य और चन्द्र तो

प्रकृति के नियमानुसार चलते हैं। उनसे दोनों के प्रकाश-अन्धकार या अच्छा बुरा कार्य सम्बन्ध करना उपयोग करने वाले पर निर्भर है। प्रकाश का उपयोग अच्छे कार्यों में हो, तभी उसकी सार्थकता है।

चन्द्र और सूर्य मनुष्य के आविष्कार नहीं। इसलिए उनकी गति पर भी मनुष्य का आविष्कार नहीं। पर 'दीपक' मनुष्य का आविष्कार है। इसलिए उसे यथेष्ट उपयोग में लाया जा सकता है। कहीं-कहीं तो सूर्य से गी दीपक का महत्व बढ़ जाता है। यद्योंकि नृगम आदि में जहाँ सूर्य की किरणें नहीं पहुँच पातीं, वहाँ भी दीपक द्वारा प्रकाश फैलाया जा सकता है।

दीपक का आविष्कार किसने और कब किया, इसका इतिहास तो जात नहीं, पर मानव ने प्रकृति के विशुद्ध या प्रतिद्वन्द्विता में यह एक नया कदम उठाया कि हम अन्धकार में भी प्रकाश फैलाएंगे और अपनों प्रगति को चालू रखेंगे। पश्च वेचारे-ऐसा आविष्कार नहीं कर रहे। इसलिए वे प्रकृति के सहारे ही जीवन व्यतीत करते हैं। पर मानव

मस्तिष्क का यह चमत्कार है कि उसने प्रकृति पर विजय-अभियान प्रारम्भ किया। उसने एक नहीं, अनेक ऐसे आविष्कार किये और अब भी कर रहा है। आविष्कार या चलतुएँ स्वयं अपनेआप में अच्छी या बुरी कुछ भी नहीं है। मनुष्य का हृदय राग-जौर हेप से मलीन हो रहा है। इसलिए आत्मा रूपों सूर्य का प्रकाश डक गया है, पर उसकी मलीगता के हटते ही अन्दर का प्रकाश प्रस्फुटित हो जाएगा, पह निश्चित है। अविद्या या अज्ञान रूप अन्धकार को हटानेके लिए ज्ञान का प्रकाश चाहिए। वाहु प्रकाश दीप जलाने द्वारा और भीतर का प्रकाश अत्मज्ञान से प्राप्त करें।

भारत का प्राचीन जारीर्थ — असत् ये सत् की और बढ़ना, अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ना और मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ़ना ही रहा है। क्योंकि असत् अन्धकार एवं मृत्यु की तरह अप्रिय है और उससे जीवन-गति रुकती है। अज्ञान और अन्धकार दोनों दुखप्रद हैं। सदको इच्छा है कि चित्, ज्ञान और आनन्द की उपलब्धि होती रहे। सत् से सत्य और सतोगुण का, प्रकाश से चित् अथवा ज्ञान-विज्ञान में रुदा आगे बढ़ने का प्रबन्धन समाविष्ट है। इसलिए उसे प्रकाश की नितान्त धारश्यकता है। कार्तिकी आमावस्या की अन्धकार भरी रात्रि में उसने दीप संजोये और अपने पर में स्वच्छता करके मंगलमय लक्ष्मी के आगमन की प्रतीक्षा की। दीपावली पर्व की उत्सुकि का यही इतिहास है।

जैन-ग्रन्थपत्रों के अनुसार भगवान् गहावीर का जीवनदीप इस दिन बुझ गया। आध्यात्मिक प्रकाश लुप्त हो गया। इसलिए वाहरों प्रकाश करने के रूप में दोषमालिका पर्व का सूत्रगात दुआ। गहावीर के निवारण के बाद उनके प्रधान और प्रथम शिष्य गौतम स्वामी को इसी दीपावली की रात्रि में केवल ज्ञान प्राप्त दुआ। भगवान् गहावीर पर गौतम स्वामी या प्रशस्त राग-नाव था। इसी उन्हें-वन्धन ने उन्हें परिपूर्ण शिवल ज्ञान नहीं होने दिया। जब भगवान् गहावीर का निवारण हो गया, तब उन्हें एक गदा प्रकाश मिला कि भेरा गुरु-स्नेह रूप राग एक-तरफा था। भगवान् तो जीतराग थे, उन्होंने कभी भी

राग-नाव नहीं किया और अन्तिम समय में भी जबकि रागों पुरुष अपने कुटुम्ब-परिवार बाले से दूर यदि हो तो प्रेमपूर्वक तमीप दुलाते हैं पर भगवान् गहावीर ने इससे विपरीत गुंजे पास होने पर भी दूर मैंज दिया। अतः, मृजे उनके जीतराग-पर्व का ही अनु-सरण करना चाहिए। जितके प्रति उसको मां सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृतो मां अमृत गमय," का ही अनुसरण करला चाहिए। जितके प्रति भेरा राग था, वे तो जीतरागी थे और जब जन्म राग का फारण ही हट गया है, तब तो मृजे भी राग-नाव छोड़ देना चाहिए। यस, ज्ञान और विवेक की एक निन-गारी ने राग-नाव का सारा कलरा जलाकर भेजम कर दिया और उसके समाप्त होते ही गीतम भी गहावीर के सदृश केवल जानी हो गए। दीपाली पर्व जैसे बाहर में प्रकाश करने का स्थीर्हार है, वैसे ही वह आन्तरिक प्रकाश का भी सन्देश देता है। नव वर्षे के आरम्भ में सभी मनुष्य अपने पिछले लाज-हानि के खालड़े तैयार कर उसपर विचार करते हैं और आगमी वर्ष में जिन कारणों से गतवर्ष हानि हुई है, उन्हें न करने की सतर्कता रखते हैं और लाज के कारणों को और अधिक बढ़ाने में प्रयत्नशील रहते हैं। उसी तरह हम भी अपने विमत वर्ष के पाप-पुण्य और धर्म-अशर्म का लेखा तैयार करें और नववर्ष मंगलमय हों, प्रकाशमय हों, लाजप्रद हों, इसके प्रति जागरूक वनें। प्रकाश के पर्व "दीपाली" से हम अपनी आत्मा को आन्तरिक प्रकाश से आलोकित-प्रकाशित करें, यही इस पुण्यपर्व का मंगल सन्देश है। ●

नाहदों का गुबाझ
जोधपुर (राज०)



श्री अग्रचन्द बाहरा, वीकानेर

प्रकाशित अप्रकाशित स्मृति-पंथों की सूची

प्राचीन वैदिक साहित्य में श्रुति, स्मृति प्राचीन पुराण साहित्य का महत्वपूर्ण स्वान है। प्राचीन काल में हमारे इन खाद्य पंथों का पठन-पाठन मौखिक रूप से होता रहा। लृतः वहूत ऐ पंथ उसी समय विस्मृत हो गये और इसी कारण उन्हें लिपिबद्ध करना आवश्यक हो गया, ज्यों-ज्यों स्मृति, घटाती गयी त्यों-त्यों पठनेक पंथ लुप्त होते गये। जिन पंथों को लिख लिया गया उनकी प्रतियों को सी समुचित सुरक्षा नहीं की जा सकी। एक दूसरे को दिखाने में भी संकोच होते लगा थरुः उनकी अधिक प्रतिलिपियाँ भी नहीं हो सकी। फलतः एक दो प्रतियाँ थीं जो नहु हो पई तो वे यन्त्र सदाके लिए लुप्त हो गये।

सामाजिक पंथों की जात जानें, पर जो वहूत ही महत्वपूर्ण पन्थ नहु हो गये और जिनका उल्लेख था-

मला क्या सूत्य है? शास्त्रों के प्रमाण तो जोर दार नहीं रहे, पर तुम्हारी जात जोरदार हो पई? याद रखो कि ज्ञान का उदय जब भी होगा पूर्वसे ही होगा पश्चिम से नहीं। पश्चात्य सम्पत्ता, पश्चिमी सम्पत्ता के कारण श्रीराम-विदेशों में जाये के कारण ही याज हमारे इस अमंश्वाण वृद्धियों के देश भारत को यह महान और द्वयनीय दुर्दशा है छि जो याज प्रत्यक्ष तुम्हारे सामने है। इससे बढ़कर विदेश यात्रा का कुपरिणाम और क्या होणा? याज भारत के वृद्धियों मुनियों की संतान द्विन्दु पश्चिमी सम्पत्ता के मोहर मायाजाल में फैल कर अपने देशकी देवताओं संस्थान खापा को ढुकड़ा कर म्लेच्छ भाषा अंगेजी पढ़ रहा है और भाता पिता को डैम्कुन बता रहा है, खड़ा खड़ा मृत रहा है और अपनी चुटिया ब्रनेक काट-काट कर कोछ रहा है और

प्रथमकारोंने भी किया है, उनके अनुलिपिये बहुत ही बेव होता है, स्मृति प्राप्तों की खल्पा वहूत बड़ी है वैसे उत्तर प्रकाशन कही संस्पादकों से होता रहा पर कम-बढ़ते एक ही प्रन्थ माला को प्रकाशित करने का श्रेय व तीव्राय रावरधान के नवलपद के निवासी ऐठ मनसुखदाम और को है। उन्होंने पुराण यादि पन्थ पंथों के साथ-साथ 'स्मृति संदर्भ' के छः भाग बन १९५२ से १९५७ तक में कठकते से प्रकाशित करवाये। जिनमें ५६ स्मृतियों प्रकाशित हो चुकी है। अन्य स्मृतियों भी उनको उपलब्ध होतीं तो सातवें भाग में प्रकाशित करने का उनका विचार या ३६२५ पृष्ठों में प्रकाशित ५६ स्मृतियों की सूची जीवे दी जा सकी है।

प्रथे, माँस, मधुची या रहा है, सबकी जूँझी यामकी प्रालियों चाठ रहा है, गोमाता की जगह कूटी पाल रहा है, और तिनेमाथों की जाक छान रहा है, होठलप्ती, बोतलप्ती बन रहा है, होठलों वै खा रहा है, प्रस्ततालीं में मर रहा है, यपना धर्म कर्म सब कृद्य नह कर रहा है, अपना लोक-परसोक सब अपने हाथों विगाड़ रहा है, यह सब विदेश यात्रा करने और पश्चात्य सम्पत्ता के रंग में रंगने के कारण ही थोड़ा रहा है। हमारे शास्त्रों में विदेश यात्रा का निषेध किया गया है और काशी के सुप्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय १० श्री यिवकुमार यात्री जी का तो यहीं तक कहना चाहिये। कि तमुद यात्रा ही नहों यदि विदेशों को रेल भी जाने चाहे तो भी वहा पर नहीं जाना चाहिये।

१	
२	
३	
४	
५	
६	
७	
८	
९	
१०	
११	
१२	
१३	
१४	
१५	
१६	
१७	
१८	
१९	
२०	
२१	
२२	
२३	
२४	
२५	
२६	

५३ पर्जन्यरस स्मृति नं० २	वस्त्र स्मृतिः
क. पूर्वपर्जन्यरसम्	मरीचि स्मृतिः
ल. उत्तरपर्जन्यरसम्	विश्वेश्वर स्मृतिः
५४ भारद्वाज स्मृतिः	विश्वेश्वरी स्मृतिः
बृह भाग	शाकटायत स्मृतिः
५५ माकंधीय स्मृतिः	शाकल स्मृतिः
५६ लोगाचि स्मृतिः	वात्यायनि स्मृतिः
महो० डा. पी. व्हे० काणे॑ 'हिस्ट्री आव थर्म- शास्त्र में अप्रकाशित स्मृतियों की दी हुई सूची	घट्टवत स्मृतिः
'वगस्त्य संहिता	सुमन्त स्मृतिः
आत्रेय चमोदाल	चमवन स्मृतिः
भाईवलायन घर्म शास्त्र	जमदग्नि स्मृतिः
इन्द्रदत्त स्मृतिः	गच्छ स्मृतिः
उपकश्यप स्मृतिः	जतुकण्ठ स्मृतिः
ऋग्यशृङ्ख स्मृतिः	कपिजल स्मृतिः
कवषस्मृतिः	स्मृति संदर्भ भाग—६ में अनुपलब्ध
ऋतु स्मृतिः	स्मृतियों के नाम
गणस्मृतिः	१ कोकिल स्मृति
गायण स्मृतिः	२ पुष्कर स्मृतिः
चाद्रस्मृतिः	३ कूमस्मृतिः
स्कन्द स्मृतिः	४ सुत स्मृतिः
कौशिक स्मृतिः	५ गरुड स्मृतिः
पूलह स्मृतिः	६ गिर स्मृतिः
पेष्ट्रय स्मृतिः	७ ओर्ब स्मृतिः
प्रह्लाद स्मृतिः	८ हरि स्मृतिः

वेदवानर स्मृतिर्विवित।
 एवः पुच्छ संहिता।
 शात्यायन चंहिता।
 शाकल स्मृतिः।
 शमुख स्मृतिः।
 सन्तकुमार संहिता।
 साह्यायन स्मृतिः।
 द्विषान संहिता।
 फात्यायन स्मृतिः।
 कृष्णजिनि स्मृति।
 गालव स्मृतिः।
 द्वाष्टेषु स्मृतिः।
 जायाल स्मृतिः।
 नणाद स्मृतिः।

स्मृति संदर्भ भाग—६ में अनुपलब्ध
 स्मृतियों के नाम

१ कोकिल स्मृति २ पुष्कर स्मृतिः
 ३ कूमस्मृतिः ४ सुत स्मृतिः
 ५ गरुड स्मृतिः ६ गिर स्मृतिः
 ७ ओर्ब स्मृतिः ८ हरि स्मृतिः

डा० काणे की दी हुई सूची में 'वगस्त्य संहिता'
 अयोध्या प्रकाशित मनसुखराय को प्राप्त हो चुकी है।
 व्यवसिष्ट स्मृतियों की समस्त लिखित प्रतियों कहीं नहीं
 प्राप्त है ? लोज करके प्रकाश में लाना मानवशक है।

ਪੰਜਾਬੀ ਭਾਸਾ ਕੀ ਏਕ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਏਂ ਮਹੱਤਵਪੂਰਣ ਇਚਨਾ—ਮਾਨ ਸਤ

— ਧਰਮ ਚਮਦ ਨਾਈਟਾ

ਭਾਸਾ ਭਾਵਾਂ ਕੇ ਪ੍ਰਕਾਰੀਕਰਣ ਕਾ ਏਕ ਮਹੱਤਵਪੂਰਣ ਮਾਡਿਮ ਹੈ। ਵੇਂਤੇ ਤੋਂ ਚੱਕੇਤ ਆਦਿ ਕੇ ਛਾਰਾ ਮੀ ਭਾਵ ਪ੍ਰਕਟ ਕਿਧੇ ਜਾਤੇ ਹੈਂ, ਪਰ ਵਹੂਤ ਹੀ ਸੀਮਿਤ ਮਾਤਰਾ ਮੈਂ। ਪਸ਼ੁ-ਪਥਰੀ ਅਪਨੇ ਭਾਵਾਂ ਕੋ ਪ੍ਰਕਟ ਕਰਨੇ ਕੇ ਲਿਧੇ ਕੁਛ ਵਧਨਿ ਮੀ ਕਰਤੇ ਹੈਂ ਜਿਥੇ ਪਸ਼ੁ-ਪਥਿਆਂ ਕੀ ਬੋਲੀ ਕਹ ਸਕਤੇ ਹੈਂ, ਪਰ ਉਸਕਾ ਕੋਈ ਵਧਵਿਧਿਤ ਰੂਪ ਨਹੀਂ ਹੈ। ਇਤੇ ਲਿਧੇ ਦੂਜਾਂ ਕੋ ਸਹੀ ਰੂਪ ਮੈਂ ਤਸਭਨਾ ਕਠਿਨ ਹੋ ਜਾਤਾ ਹੈ। ਮਨੁਭਿਨੇ ਇਨ ਦਿਖਾ ਮੈਂ ਵਹੂਤ ਬਢੀ ਪ੍ਰਗਤਿ ਕੀ। ਹਜ਼ਾਰੋਂ ਲਾਖਾਂ ਗਵਾਂ ਆਂ ਨਾਮਾਂ ਕੀ ਗਢਾ ਆਂ ਵਧਕਰਣ ਕੇ ਦ੍ਯਾਰਾ ਬੋਲੀ ਵੇਂ ਭਾਸਾ ਕੀ ਵਧਵਿਧਿਤ ਰੂਪ ਦਿਧਾ। ਇਸੀ ਕਾ ਪਰਿਣਾਮ ਹੈ ਕਿ ਜਾਨ-ਵਿਜ਼ਾਨ ਇਤਨੇ ਗਿਧਿਕ ਰੂਪ ਮੈਂ ਕਿਧਿਤ ਹੋ ਸਕਾ। ਦੇਸ਼ਕਾਲ ਆਂ ਵਧਕਿਤਾਵਾਂ ਕੀ ਰੁਚਿ ਏਂ ਯੋਗਯਤਾ ਕੇ ਮੇਦ ਸੇ ਏਕ ਨਹੀਂ ਅਨੇਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਕੀ ਭਾਸਾਵੇਂ ਪ੍ਰਚਲਿਤ ਹੂੰਈ ਜਿਨਕੀ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਗ੍ਰਨਥਾਂ ਮੈਂ ੧੮ ਕੀ ਸੰਖਾ ਦੀ ਗਈ ਹੈ। ਪ੍ਰਧਾਨਤਤਾ ਇਨ ਭਾਸਾਵਾਂ ਕੋ ਸਥਲ ਵਿਸ਼ੇਸ਼ ਕੇ ਉਚਚਾਰਣ ਮੇਦ ਕੋ ਢੀਡ ਵੇਂ ਤੋਂ ਦੋ ਮਾਂਗਾਂ ਮੈਂ ਵਿਭਨਤ ਕਿਧਾ ਜਾ ਸਕਤਾ ਹੈ। ਉਤਤਰ ਭਾਰਤ ਆਂ ਦਿਖਿਣ ਭਾਰਤ ਕੀ ਭਾਸਾ ਮੈਂ ਕਾਫੀ ਅਨੱਤਰ ਹੈ। ਉਤਰ ਭਾਰਤ ਕੀ ਭਾਸਾਵਾਂ ਕੀ ਭੀ ਜਨਸਾਧਾਰਣ ਕੀ ਪ੍ਰਾਕੂਤ ਆਂ ਰਿਹਿਣ ਏਂ ਵਿਹਿਣ ਜਨਾਂ ਕੀ ਸੰਸਕਾਰਿਤ ਭਾਸਾ ਸੰਸਕ੍ਰਤ ਮਾਨੀ ਜਾਤੀ ਰਹੀ ਹੈ। ਸੰਸਕ੍ਰਤ ਭਾਸਾ ਕਾ ਸਵ ਲੇ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਗ੍ਰਨਥ ਵੇਦ ਹੈ, ਜਿਸਕੀ ਭਾਸਾ ਥੈਦਿਕ ਸੰਸਕ੍ਰਤ ਕਾਫੀ ਜਾਤੀ ਹੈ ਕਿਥੋਕਿ ਆਗੇ ਚਲਕਰ ਸੰਸਕ੍ਰਤ ਨੇ ਏਕ ਨਿਆ ਰੂਪ ਧਾਰਣ ਕਿਧਾ ਜਿਸਦੇ ਥੈਦਿਕ ਸੰਸਕ੍ਰਤ ਸੇ ਵਹ ਕਾਫੀ ਭਿਨਨ ਹੋ ਗਈ।

ਪ੍ਰਾਕੂਤ ਪ੍ਰਕ੃ਤਿ ਯਾ ਸ਼ਵਭਾਵ ਸੇ ਉਤਪਨ ਭਾਸਾ ਯਾ ਜਨਤਾ ਕੀ ਸ਼ਵਾਰ੍ਥਿਕ, ਬੋਲੀ ਹੈ। ਇਸ ਸੰਵੰਧ ਮੈਂ ਕਹਾ ਜਾਤਾ ਹੈ ਕਿ ਵਾਰਹੁ ਕੋਥੇ ਕੇ ਦਾਦ ਬੋਲੀ ਵਦਲ ਜਾਤੀ ਹੈ। ਇਸਲਿਏ ਪ੍ਰਾਕੂਤ ਕੇ ਅਨੇਕ ਰੂਪ ਹੈਂ। ਪਰ ਜਿਨ ਬੋਲਿਆਂ ਮੈਂ ਐਸਾ ਗਿਧਿਕ ਅਨੱਤਰ ਨਹੀਂ ਹੈ ਕਿ ਉਨਕੀ ਸ਼ਵ਷ਟ ਮੈਂ ਸਮਝਨੇ ਮੈਂ ਕਠਿਨਾਈ ਹੋ ਉਨਕੇ ਸਹਿਮਲਿਤ ਰੂਪ ਕੀ ਅੰਕ ਭਾਸਾ ਮਾਨਾ ਜਾਤਾ ਰਹੀ ਹੈ। ਇਸ ਲਿਧੇ ਪ੍ਰਕਤ ਕੇ ਮੀ ਮੁਖਧ ਰੂਪ ਸੇ ਦੋ ਮੇਦ ਕਿਧੇ ਗਏ—ਸ਼ੀਰਸੇਨੀ ਆਂ ਮਹਾਰਾਣੀ। ਵੇਂਤੇ ਏਕ ਹੀ ਸ਼ਵਾਨ ਕੀ ਸੰਭੀ ਜਨਤਾ ਏਕ ਪ੍ਰਕਾਰ ਕੀ ਬੋਲੀ ਨਹੀਂ ਬੋਲਤੀ। ਗ੍ਰਾਮੀਣ ਆਂ ਰਾਹੀਂ ਲੋਗਾਂ ਕੀ ਬੋਲੀ ਮੈਂ ਮੀ ਭਿਨਨਤਾ ਹੋਤੀ ਹੈ ਆਂ ਜਾਤਿ ਤਥਾ ਵਧਾਪਾਰ ਕੀ ਭਿਨਨਤਾ ਸੇ ਮੀ ਬੋਲੀ ਮੈਂ ਅਨੱਤਰ ਦਿਖਾਈ ਦੇਤਾ ਹੈ। ਇਸ ਲਿਧੇ ਸੂਝਮ ਮੇਦ ਤੋਂ ਅਨੇਕ ਕਿਧੇ ਜਾ ਸਕਤੇ ਹੈਂ।

ਸੰਸਕ੍ਰਤ ਮੈਂ ਜਿਸ ਤਰਹ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਗ੍ਰਨਥ ਵੇਦ ਹੈ ਇਸੀ ਤਰਹ ਪ੍ਰਾਕੂਤ ਮੈਂ ਜੈਨਾਗਮ ਆਂ ਬੀਦ੍ਰਿ ਤ੍ਰਿਪਿਟਕ ਪ੍ਰਾਦਿ ਹੈਂ। ਭਗਵਾਨ ਮਹਾਵੀਰ ਆਂ ਬੁਦਧ ਸਮਕਾਲੀਨ ਮਹਾਪੁਰਖ ਥੇ ਜਿਨ੍ਹਾਂਨੇ ਜਨਭਾਸਾ ਮੈਂ ਅਪਨਾ ਉਪਦੇਸ਼ ਪ੍ਰਚਾਰਿਤ ਕਿਧਾ। ਪਰ ਜੈਨਾਗਮ ਆਂ ਬੀਦ੍ਰਿ ਤ੍ਰਿਪਿਟਕਾਂ ਕੀ ਭਾਸਾ ਏਕ ਨਹੀਂ ਹੈ, ਕਿਥੋਕਿ ਮਹਾਵੀਰ ਆਂ ਬੁਦਧ ਕੀ ਵਾਣੀ ਕਾ ਸੰਕਲਨ ਕਾਲ ਭਿਨਨ ਹੈ। ਜੈਨਾਗਮਾਂ ਕੀ ਭਾਸਾ ਕੀ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਪਰਮਪਰਾ ਕੇ ਅਨੁਸਾਰ ਅਵੰ ਮਾਗਧੀ ਮਾਨਾ ਗਏ ਹੈ ਆਂ ਬੀਦ੍ਰਿ ਤ੍ਰਿਪਿਟਕਾਂ ਕੀ ਭਾਸਾ ਕੀ ਪਾਲੀ ਨਾਮ ਸੇ ਅਭਿਹਿਤ ਕਿਧਾ ਜਾਤਾ ਹੈ। ਬੁਢੀ ਸ਼ਤਾਬਦੀਆਂ ਵਾਦ ਪ੍ਰਾਕੂਤ ਭਾਸਾ ਮੈਂ ਕਾਫੀ ਪਰਿਵਰਤਨ ਹੋ ਗਏ। ਅਤ: ਪਰਖਤੀ ਦੇਵਤਾਮ੍ਬਰ ਜੈਨਾਂ ਕੀ ਸਾਹਿਤਿਕ ਭਾਸਾ ਮਹਾਰਾਣੀ ਆਂ ਦਿਗਮਬਰ ਜੈਨਾਂ ਕੀ ਸ਼ੀਰਸੇਨੀ ਬਤਲਾਈ ਜਾਤੀ ਹੈ। ਵਿਕ੍ਰਮ ਕੀ ਪ੍ਰਥਮ ਸ਼ਤਾਬਦੀ ਸੇ ਸੰਸਕ੍ਰਤ ਕਾ ਪ੍ਰਭਾਵ ਵਡਤਾ ਚਲਾ ਗਏ। ਇਸ

लिए जेनों और बीदधों के बहुत से ग्रन्थ संस्कृत में भी रखे गये, यद्यपि जैन मुनियों ने प्राकृत भाषा में रचना यन्द नहीं की। यतः आज तक भी प्राकृत साहित्यिक परम्परा अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। नव्यकाल में प्राकृत बोलो अपभ्रंश के रूप में परिवर्तित हो गयी। इसलिये उसमें भी जेनों ने काफी बड़ा साहित्य लिखा है। अपभ्रंश से उत्तरभारत को लोकियों का विकास हुआ। यद्यपि बोल चाल में तो अपभ्रंश कुछ शताव्दियों तक ही व्यवहृत रही होगी पर अपभ्रंश साहित्य, छठी-सातवीं शताव्दी से सत्रहवीं शताव्दी तक करीब १००० वर्ष तक रचा जाता रहा। १२वीं-१३वीं शताव्दी में अपभ्रंश का सरलीकरण होकर कई प्रान्तीय भाषाओं प्रलग रूप से प्रसिद्ध हो गयी और १३वीं शताव्दी से तो उन भाषाओं में स्वतन्त्र रूप से उल्लेखनीय रूपनाएं की जाने लगीं। राजस्थान, गुजरात, सौराष्ट्र, मालवा के विशाल प्रदेश में एक व्यापक भाषा का प्रचार रहा, जिसमें साथारण प्रान्तीय विवेषताओं को छोड़ दें तो बहुत कुछ समानता नजर आयेगी। हिन्दी उत्तर एवं मध्य प्रदेश की बोली से विकसित हुई और पंजाब में भी हिन्दी, सिन्धी, विस्तृत भाषा प्रचलित रही। पर प्रारम्भिक काल में इन सभी भाषाओं में व्यक्तिक अन्तर नहीं था। राजस्थानी गुजराती की तो १३वीं शताव्दी से १५वीं शताव्दी तक की काफी रचनाएं प्रकाश में आ चुकी हैं। इस समय की दोनों प्रान्तों की रचनाओं में भाषा एक ही पाई जाती है।

हिन्दी की भी इधर कुछ बचों में कलिपय प्राचीन रचनाएं प्रकाश में आई हैं। पर पंजाबी भाषा की प्राचीन रचनाएं अत्याधिक प्राप्त अज्ञात सी हैं। बास्तव में मुख्लमानी आक्रमण अधिकांश पंजाब से होते हुए प्रागे बढ़े, इसलिये पंजाब के प्राचीन साहित्य का नष्ट हो जाना स्वाभाविक ही है। पर पंजाब और राजस्थान की रीमायें मिली-जुली हैं और राजस्थान में प्राचीन साहित्य काफी सुरक्षित रहा है। इसलिए राजस्थान में प्राचीन पंजाबी रचनाओं को खोज की जानी आवश्यक है। राजस्थान के निवासियों ने पंजाबी एवं सिन्धी में छोटी-छोटी बहुत सी रचनायें की हैं और उन्हें पंजाब की जो भी रचनायें प्राप्त हो गईं उन्हें नुरधित रखने का प्रयास किया।

गत ४० वर्षों से हमारी साहित्यिक खोज तिरन्तर चालू है, और लाखों हस्तलिखित प्रतियों के निरीक्षण-परीक्षण का अवधार हमें प्राप्त हुआ है। जैन, जैनेतर संकड़ों हस्तलिखित संग्रहालय हमारी नजर में से गुजरे हैं जिनमें कुछ रचनायें पंजाबी या पंजाबी मिश्रित राजस्थानी-हिन्दी की हमें प्राप्त हुई हैं। इनमें से १५वीं-१६वीं शताव्दी की एक महत्वपूर्ण रचना यहाँ प्रकाशित की जा रही है। इस रचना की कई हस्तलिखित प्रतियां मैंने राजस्थान और गुजरात के जैन, जैनेतर हस्तलिखित भंडारों में देखी हैं। इनमें से एक प्रति हमारे संश्रह में भी है। धीकानेर की राजकीय अनूप संस्कृत लायदरी में भी इसकी २-३ प्रतियां प्राप्त हैं। कोटा से मैं संवत् १६६४ का लिखा हुआ एक गुटका कुछ वर्ष पूर्व विजयगढ़ के श्री पूज्य पूनम जागर सूरि से देखने को लाया था। उसमें भी यह अन्य रचनाओं के साथ लिखी हुई है। उदयपुर, जोधपुर, अहमदाबाद आदि के भंडारों में भी इस रचना की हस्तलिखित प्रतियां प्राप्त हैं। यह प्रतियां अधिकांश १७ वीं-१८ वीं शताव्दी की लिखी हुई हैं। किसी प्रति में इसकी पद्धति संख्या ७७ है, किसी में ८८। एक प्रति में १०१ पद्धति मिले हैं। रचना का नाम 'मान सत' है इस लिये उसमें १०० पद्धति तो दोने ही पाहिये। यहाँ ३ प्रतियों का उपयोग करके दो प्रतियों के पाठभेद सहित इस रचना को प्रकाशित किया जा रहा है।

अनूप संस्कृत लायदरी में दो प्रतियां देती भी मिली हैं जिनमें पद्धयों के साथ गद्य, वचनिका या

वार्ता भी लिखी हुई है। वचनिका की भाषा राजस्थानी है। गाथाओं के भाव को सपने के लिये यह वचनिका बहुत ही उपयोगी है पर ऐद है कि ३८ पद्यों तक की ही यह वचनिका प्राप्त हुई है। उसके बाद दो पद्य मूल रूप से और लिखे हुए हैं पर आगे की पूरी वचनिका अभी तक कहीं से भी प्राप्त नहीं हो सकी। इस वचनिका वाले संस्करण का नाम अत्रूप संस्कृत लायब्रेरी की सूची में 'जेहे जांवरी वाह' दिया हुआ है। राजस्थानी विभाग के गुटके नम्बर ४३ और ६८ में यह अपूर्ण वात लिखी हुई है। दोनों प्रतिशां एक दूसरे की नकल हैं यथात् ३८ पद्यों तक का ही पाठ दोनों में मिलता है। इसके आगे का पाठ प्रतिशों के लेखकों नहीं मिला। इनमें से प्रति नम्बर ६८ संवत् १७०२ वीकानेर में लिखी हुई है। इस वात से पहले महादेव/पार्वती योली, और वीछे वेताल-ज्वीती आदि रचनाय लिखी हुई हैं। प्रति नम्बर ४३ में लेखन समय तो नहीं दिया पर महाराजा अनूपसिंह और औरंगजेब के समय वी लिखी होने से यह प्रति भी १८वीं सदी के पूर्वार्ध की भी खिद्द होती है।

मूल पद्यों वाली प्रतिशों के पाठ में काल ग्रन्तर है ही। 'पर वचनिका वाले संस्करण में तो पद्यों का क्रम भी भिन्न है और पाठ भेद तो काफी है। इसलिये वचनिका वाले संस्करण की नकल ज्यों की त्यों दी जा रही है। मूल पद्यों वाली प्रति में से १०१ पद्यों वाली प्रति का पाठ ऊपर रखा गया है और टिप्पणियों में अन्य दो प्रतिशों के पाठ भेद लिख दिये गये हैं।

वचनिका वाले संस्करण का नाम जो अनूप संस्कृत लायब्रेरी की राजस्थानी विभाग की तूची में जो है जांवरी वात लिखा घया है। इस का कारण यह है कि उन प्रतिशों के लेखकों को 'मान सत' के पुरे पद्य तो प्राप्त नहीं हुये और वचनिका के प्रारम्भ में 'नगर घटे के हैजे है जाम' का स्पष्ट उल्लेख मिलता है, इसलिये सूची बनाने वाले ने विषय प्रशंग कों देख कर इस रचना का नाम जेहे जामरी वाह दे दिका है। वचनिका में मूल ग्रन्थ या पद्य प्रारम्भ करने से पहले जो भूमिका दी गई है उससे इस रचना की पूँछभूमि स्पष्ट हो जाती है। भूमिका में लिखा गया है कि घटनगर में जेहा जाम रहता था। उसकी ९०० स्त्रियां थीं। एक दिन जेहा शिकार को चढ़ा। सब स्त्रियां एक महल में खेल रही थीं। हसी खुशी की वातें कर रही थीं। उनमें से सोरठ नरेश की घेटी थीं और अरोड़ भण्डार की अधिपति की घेटी इन दो स्त्रियों का जेहा जाम से जो संवाद या वार्ता हुई उस प्रशंग में ये पद्य रचे गये। इन पद्यों में रंजा और हामज का उल्लेख अधिक हुआ है। वचनिका से मालूम होता है कि रंजा जेहा जाम की सर्वाधिक प्रिय पत्नी थी, उसके और उसकी दूती के साथ जाम ने वात-विनोद किया। उस पारस्परिक संवाद के रूप में मान सत के पद्यों की रचना हुई। रचना का समय 'घटे के जेहा जाम' का ही ठीक हो तब तो काफी प्राचीन हो सकती है। पर वैसे भी इसकी भाषादि को देखते हुए इसकी रचना १४वी-१५ वीं शताब्दी की लगती है। इसके बाद की कुतबशातक रचना प्रकाशित हो चुकी है जिसके पद्यों में पंजाबी भाषा का प्रभाव है। ऐसी अन्य रचनाओं की लोज की जाकर उनका संग्रह ग्रंथ प्रकाशित किया जाये तों पंजाबी भाषा के प्राचीन साहित्य की महत्वपूर्ण जानकारी प्रकाश में आ सकेगी।

ਪੰਜਾਬ ਕੇ ਜੈਨ ਹਿੰਦੀ ਕਵਿ ਨਾਲਾਲ ਔਰ ਉਨਕੀ ਰਚਨਾਏ

卷之二十一

1

जैन धर्म भारत का प्राचीनतम धर्म है। यह जैन प्राचीन वर्षों से गतिशाली और गेप्रयत्न जैन-सीर्प्टिक भगवान्-कल्पनात जौ जैन है यह द्वितीय भागवत-पुराण जैसे मध्याधिक गांधी द्वारा उल्लेख में आया है। इसने एक अद्वितीय विद्या देता है जो जैन धर्म का लिया गया है यार उन्हें अल्प भृत्यान् अवश्यकता नहीं बताया गया है। यह विद्या जैन धर्म का विवरण जैनता है और इसे जैन धर्म विज्ञान की विद्या का एक नाम भारतवर्ष पहा। इनमें जैन धर्म की प्राचीनता विवर भीढ़ है जो वृ-भृष्टि भूमि भारत का कार्यों प्राचीन प्रदेश है। यार तो वर्षायार के योग्यार तथा अन्य अग्रवाल कल्पनदेव के द्वितीय-पृथ्वी वाहूरीत की जात्यासां थी। अन्य पञ्चाश्री-गम्य वृ भू जैन धर्म का प्रचार प्रधम तौरपर अप्यभद्रे के गम्य में ही साक्षा भासा है।

परिवर्तन अर्थात् वानिकम् है, जो गढ़ना उच्च पड़ना भी है। उसका और अलग
पा उन्नति या ग्रव्यनीति का चक्र बदलता है। वहाँ २। असाध्य नाम इतने पुराने नहीं
है, वह तो पात्र नदियों के नाम से प्रसिद्ध है। वहले ३। प्रदेश पर्वत। सिंध आदि
था, पीछे किन्तु योर पंजाब यमुना-योग के नाम-नदियों से वा ४। यमुना का
सिव की मोर ने ही किया था और यह लियर नदी का विभूत रहा, वही राणी
जमने लगे थे। प्राकृतिक के समय योर इसके बाद इस प्रदेश के ५। अल्प, महिला, मृति-
कला और संस्कृति साहित्य पर यहून यहाँ ६। ग्रामान्ध दृष्टा। इस ग्रामान्ध के नदय
से हमारों नाथों जैसों दूररे प्रान्तों में जात्यू यह यहे, कर्मोऽथ ७। याति-
प्रिय और प्रधानतया कृपक और स्थापाने लोकों के राज्य जहाँ जीव गांडों से
व्यतीत ही गए, वही जाति यह जाति जीवों ८। निम्न व्यापक ९। १। १। १।
सिन्ध-पंजाब में इनका व्यापार आयि काम किया जमने लगा तो के १०। ११। ११। ११।

- कांफी उन्नति को। इस संरह पाकिस्तान वत जाने पर यहाँ पे जैनी भारत के अन्य ग्रामों, नगरों में बाकर भाकी समृद्ध वत थये।

जहाँ-जहाँ जैनी वसते हैं, वहाँ-वहाँ उनके धर्मगुरु भी धर्मप्रचार के लिये जाते यातं रहते हैं। सिंधु-पंजाब में श्रेत्राम्बृश सम्प्रदाय का काफी प्रचार व प्रभाव रहा। श्रेत्राम्बरीक उपकेश गच्छ, खरतरण्ड गच्छ, उत्तरांश गच्छ, चडाचछ आदि गच्छों, उप-सम्प्रदायों व समुदायों के धाराय, पुनि, यति, साठ्यो आदि इस प्रदेश में शतान्दियों गे धर्म प्रचार करते रहे हैं। उनमें गे कुछ ने प्रायः स, मस्तूत, हिन्दी, गंडस्यामी-सिंधी, पंजाबी यादि भाषाओं में रचनाएं भी की हैं, जिनमें से १९ वीं शतां के अृषि नन्दलाल और उनकी रचनाओं का परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

अृषि नन्दलाल ने यसनी रचनाओं मे गी गुरु परमार्थ थी है, उसके अनुसार पूज्यमन्तजी के पट्टधर नाथूराम जी के शिष्य शशेचन्द के जिप्य अृषि रतिराम के थे शिष्य थे। गोविमपृच्छा नामक काव्य को प्राप्ति में यही परम्परा दी है। और ज्ञान प्रकाश की प्रशस्ति में भी गुरु परमार्थ के वे ही नाम दंहराये गये हैं:—

पूज्यजीं प्रद्वानिधान धीं मनजीं भए जाण,
तसिष्य अन्तेवारीं पूज्य नाथूराम जी।
तसिष्य विनयवान धीं बुद्धिवंत जाण।
स्वामीं श्री रामचन्द जान के गुधाम जी॥२०८॥
तसिष्य पदाकुञ्ज गुरु के सेवन हार,
स्वामि श्री रतिराम बोधपद पायजी।
तिनके प्रसाद ज्ञान तत्त्वनिरधार कर,
करि नंदलाल एहि प्राप्ति याराग जी॥२०९॥

इससे पहले की परम्परा सम्बन्धी व्होज करने पर मेरे सम्पादित 'ऐतिहासिक काव्य संग्रह' (प्र. मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, अब्दर) के पृष्ठ १५३-५४ से जो साधु-समुदाय पट्टावली प्रकाशित हुई है उसके अनुसार लोकागच्छीय क्रमः भूना अृषि, रूप जी, जोव अृषि, तेजराज, कंवर जो, जोवराज के शिष्य धनजी हुए। धनजी के शिष्य किसतो जी और उनके शिष्य मनजी थे। मनजी और उनके शिष्य नाथूराम जी के जीवन परिचय सम्बन्धी २ रचनाएँ—पूज्यमन्तजी संक्षाप, पूज्य नाथूरामजी

चउड़ालियो और मनजो के गिर्व हर जो संबंधी प्रेतिहासिक रचनाएँ मेरे सम्मानित उपत 'ऐतिहासिक काव्य संग्रह' के पृष्ठ 156 से 167 में प्रकाशित हो चकी हैं। प्रतः मंदलाल जी की दी हुई गुरु परम्परा से पहले की जातकारी मेरे इस प्रयोग में जाती जा सकती है।

आदि नंदलाल जी की प्राप्त रचनाएँ मंवत् 1876 से 1906 अर्थात् 30 वर्ष में रची हुई 6 रचनाओं की जातकारी भिन्नी है। विनाय विवरण ऋषभः नीचे दिया गया रहा है।

(1) स्वरमणि मंगल :—

प्रादि— प्रादेश्यर प्रादे करि, चक्षवीनु जिण छर ।
सरस्वति गाय प्रणार्मार्करि, वहै स्वरमणि छर ॥

अंत— कपरतिरामप्रसाद जी कावि नंदलाल जी की श्री गुणार्थपत्नी ।

मंवत् यथोऽह नी छियनग्या नगर दोगदारपुर र्ता धा जोमामता ॥३०५
इति स्वरमणि मंगल संतुष्ट ॥ (लोक 1300)

इसकी 38 पत्रों की प्रति मंवत् 1963 की लिखी हुई स्वजित चारित सूरि संग्रह (प्रब राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान बीकानेर) में प्राप्त है। गाया 804 है।

(2) विष्णुकुमार चीपाई :—

इसकी 22 पत्रों को प्रति जीरा भट्टाचार्य गोदाने का उल्लेख डेस्टर बनारसीदात जैन संगादित 'पंजाव देशस्य जैन भाषणागारणां गूर्चीगद्वाम', प्रथम भाग के पृष्ठ 98 में प्राप्त होता है। इसकी रचना मंवत् 1878 भाद्रे में होनिवारपुर में हुई थी।

मंवत् (1878) अठारह सी प्रथहतरे जो, भाद्रम मास मंजार
हस्यारपुर माहो कह्यो जो, देस पंजाब विचार ॥

(3) गोतम पृष्ठा :—(कमं-विगाक)

इसकी 8 पत्रों की प्रति श्री पञ्च जिन चारिय श्री जी के संयह में थी जो अभी राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की बीकानेर गाड़ा में है प्रति का नं. 3096 है। कुल पद संख्या 212 है।

ग्रादि :—जाताधर्म कथा गाह कथा, लं प्रारुद्ध (३१) कोटि,
तिष गाहिना गाय छु, मांयनजा मह-मोडि ॥ १ ॥
शंका खंचा मस करी, उण माहे वहुजान ।
गोतम-वासि गुछिया गावे श्री चंद्रमान ॥ २ ॥

घंत :—॥हु दंड पूरो थयो, गोतम पृष्ठा नाम
‘कर्म-निराक’ हथको, निश्चय गोवो स्वामि ॥ २०७ ॥
पूज्य गो महा निरान थी मन री कला जाण
तस्मिं प्रलेकाती, पूज्य नायगाम जी
उत्तिस विनयथान थी बुद्धिवेत ज्ञान
शामी गयवं जान के नदाम जी ।
तस्मिन गदावृज गम के मेवनहार, श्वामी श्री गतिगम वोधादगाय जी ।
तनके ग्रसाद जान तन्त्रजाया गर, कवि नेत्रताल कहिपवत घारागजो ।

(4) लभित्र प्रभाज्ज जीपाई :—(इतनी रब्जा १९०३ रपूरस्वता में हुई) २०९ ।

करीब ५० वर्ष पहले हमने इसकी ४५ पत्रों की प्रति स्व. बहादुर मस जी वांछिया,
मोनासर के संग्रह में देखी थी ।

(5) जान अकाल —

इसकी रब्जा से १९०६ कपुरथला में हुई थी । इसकी २ हस्त-लिखित प्रतियां
श्री पूज्यजी जिन वारिन सूरि जी के संप्रह में विद्यमान हैं । प्रति न. २१९४—२७३२ ।
ग्रादि व घंत इस प्रकार है :—

ग्रादि :—दद्मार्ण नमो किच्चा, सासण-नाय जो मुणि ।
गगहर गोयमं वदे, कल्लाणं मंगनं पट्ठे ॥ १ ॥
पित्या दृष्टि जीव की, अद्वा रिपन जो होइ ।
दृष्टि रिम के कागे, देव विषम तस जोइ ॥ २ ॥

घंत :—एह प्रथ पूर्ण भयो, तामे ‘जान-प्रकास’ ।
सउगुरु बुपा क.....भव्य जीव हित भास ॥

उनके गंगाव में, क्षुरथने महारः ।

उनबोगवे यहे (यट) माव न, परं रुद्रा अस्तार ॥१७॥

काल । उन्हे ?) दंष्मे वार्षि निराजे लोभनजी मावा कमिनाम् ।

तम् ॥१८॥ संत भूमास्, दृष्ट्याम् लहू उद्धाम् ॥

कृषि अम्बन्द सत गणापत, निष्व धैः गतिगम वहाम् ।

तम् च गोव्युजे सेवत हारो, दृष्ट्याव दृनि युग्म गाय ॥२३॥

विश्वी नावता माहरी, तैर्य देव यज्ञाम् ।

ग्रोठो विश्वी जो कात्या दिवदामि-द्वात्म सवाय ॥२४॥

विशेष :—प्रथ इस काण्डों में विभक्ति । इसी ग्रन्थात्म श्रीर रम्यक दृष्टि का

वर्णन है ।

(६) मंतातरावली । —

यह यद में किए गये हैं । रचनाम् । रचना न्यून तकनी वर्तन का गदा तरु तरमग का उल्लेख नहीं है । २५ वर्ष तक भी २ वर्षों की प्रति उन धा गिन चारित्र मूरि संश्वर में है । प्रतिपत्र में न्यून - १५, प्रति-न्यून यथः । १५ न्यून हुए हैं । यादि ये तत इस प्रकार है ।

यादि :—यद मंतातरावली विभक्ति ग्रन्थती। स्थमतिनो संवाद कहे छे ते, सांमनो । विभक्ति : नामिक पाठ प्रकार के गतिवादामौल हैं ।

यत :—प्रागा ने रोककरके जीव धार्ता को इडु परमात्मा के नाम भेज देना, जीन हो जाना, इस ग्रन्थ करके नवृत्त जीव नामे होने हैं । इस जीव करके ज्योतिर्लय जो बहुत है, उसकी प्राप्ति होती है । अतोकरोऽपानवत् यादे समाप्तम् । इति मंतातरावली ग्रन्थे लोपि नन्दलाल कुते ग्रन्थम् ।

उपरोक्त रचनाओं का जो विवरण प्राप्त हुआ है उसके प्रनुसार ये पहले होशियारपुर में रहते थे तिर गुबाम पर्व राजथना में । यतः इन तीनों स्थानों में इनकी उक्त रचनाओं की खोज दी जाती चाहिए । मंदिर, १८७८ ते १९०६, ३० वर्षों तक इनका रचनाकाल है । पर १८७-७८ ग्रन्थकी होशियारपुर में तिर रचनाओं के बार । २ वर्ष तक की रखी कोई रचना नहीं मिलती । इसी वर्ष १८८० ते १९०३ के वीच की कोई रचना नहीं मिलती । यतः योग यत्ते परं श्रीर रचनाम् ॥१॥ यद्यपि मिलती चाहिए । इनकी परंपरा में अभी कई मुग्नि भी विद्यमान हैं । अतः विशेष इनकी मिलने पर चिरकभी प्रकाश आता जा सकता ।

—०—

नाहटों की गवार,

रोकानेर

ਪੰਜਾਬ ਕੇ ਜੈਨ ਜਾਨ ਮਣਵਾਰ ਅੰਦਰ ਰਖਨਗਰ ਮੱਟਿਰ ਕਾ ਸਾਂਗਹ

ਅਥੋ ਅਗਰਚੰਨ ਨਾਹਉ

ਜੈਨ ਸਥ ਨੇ ਸਾਹਿਤ ਦੇ ਕਿਸੀ ਅਤੇਰ ਸੰਰਖਣ ਸੇ ਵਿਵੇਤ ਹੀ ਤਲੇਖਨੀ ਕਾਰ੍ਯ ਕਿਯਾ ਹੈ।
ਜੈਨਾਸ਼ਾਯੋਂ ਸਾਰ ਸੁਨਿਯਾਂ ਨੇ ਜੇਕਰ ਸਾਧਾਰਨ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਦਿਗਦ ਅਤੇ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਦਿਗਦ
ਅਧੀਨ, ਹਿੰਦੀ, ਰਾਜਾਂਸ਼ਾਹੀ, ਗੁਜਰਾਤੀ, ਮਹਾਰਾਸ਼ਾਈ, ਰਾਨੀ, ਨੀਵਾਲ ਅਤੇ ਮਾਝ ਦੀ ਪ੍ਰਧਾਨ ਪ੍ਰਾਨੀਦ
ਆਖਾਓਂ ਮੇਂ ਜੈਨ ਪਾਹਿਦ ਪ੍ਰਾਪਤ ਹੈ। ਪ੍ਰਾਨੀਦ ਆਖਾਵਾਂ ਮਾਰਿ ਪੰਜਾਬੀ-ਗੁਜਰਾਤੀ ਵਾਲਾ ਅੰਦਰ ਫ਼ਾਰਸੀ

[ਜਾਗ ੬੩ ਤੱਤ੍ਵ ੧

भागा के भी प्रिये हैं। जैन पुनियों ने जैनता गाहिना और भी दीप्ति-टिप्पणी के द्वारा में भी जाती चरनाएँ की हैं। जैनों ने जैन-साहित्य के बंशहृ एवं संरक्षण के साथ-साथ जैनतर साहित्य को भी आने वालों से में गुरुकित रखा है।

जैन मुनियों का जीवन बहुत ही संरक्षित होता है उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय आहम-सांख्या और धर्म-प्रचार के सांख्य-सांख्य-साहित्य-सामग्री और उपचारी वस्त्रों के प्रतिक्रियों के लिलन आदि में लगाया। कल्पतः जैन मुनियों की लिखी हुई लाखों प्रतियाँ आज भी जैन-जैनतर तथा छात्रों में प्राप्त हैं। जैनाचार्यों और मुनियों के उदादेश से धावक ध्रुविकार्यों ने भी लाखों प्रतियाँ लिखी हैं तर और चित्रकारों से लिपित वस्त्रों कर अनेकों बड़ा भाष्टार नामित रिए एवं उन ज्ञान गण्डारों से गुरुता और गृह्यवस्त्रा एवं भी जैन रुदा गवा अंतर प्रबल लिया गया। इसी का नामिताम है कि गृह्यवस्त्रों द्वारा में अनेकों ज्ञान भण्डार और लाखों प्रतियों नष्ट हो जाने पर भी ज्ञान विद्या धारन में हजारों प्रतियों विदेशों में चली गयीं एवं वहुत में गण्डार नष्ट हो गए, लिये गये, किर भी १५-२० लाख हस्तानिशिलि प्रतियों आज भी जैन नामाज ने पास हैं। और उनमें बहुत भी प्रतियों तो विशेष महत्व की भी है। जैन मुनियों ने लेखन कला का व्यवस्था एवं अन्तर्वारिकाग्र लिया जिसका गुण विवरण भूति गुण्य विजय जी के विवेत्र ने मिल जाता है।

जैन धर्म का प्रचार भाग्यान् महादीर के सन्दर्भ बंगाल, विहार आदि प्रदेशों में हुआ था तथा कर्णातक १००० वर्ष तक यन्मी को लिपिबद्ध करते ही उदासारा नहीं थी इसलिए उन प्रदेशों में और उन समय को लिखा हुई प्रतियों मिलने वाला सम्भव ही नहीं पर शीर निर्वाण १८० में गत्य लिखे गए उस समय को धार असंकें धार करि ५ शतालियों की लिखी हुई कोई सी प्रति आज प्राप्त नहीं है। ये जिन गाड़ाओं पर लिखे गए थे, वे नष्ट हो गए। यतंभान में जैन मण्डणों में जो भी गवा ग्राहक है, उनमें गवमे प्राचीन गाड़ाचार्य प्रति जैनलने भण्डार में १०वीं शताब्दी तका गागड़ की १२वीं शताब्दी भी प्राप्त है। अर्थात् जो अल्मलन में लाखों प्रतियों प्राप्त है वे अधिकतर १००० वर्ष के भीतर की ही हैं। दक्षिण भारत में तो ताड़पत्र ही अधिक सुलभ थे, इनलिए वहीं के दिग्गज्यात भण्डारों में प्राप्त ताड़पत्रीय प्रतियों ही मिलती हैं। उत्तर भारत के देशान्धर भण्डारों में १५वीं शताब्दी तक ताड़पत्र की प्रतियों अधिक मिलती हैं। १५वीं शताब्दी से नामाज का प्रचार अधिक व सांख्यिक हो गया। १२वीं शताब्दी से गाड़ाओं तथा गागड़ एवं गाड़ पट्टियों आदि पर चित्र भी लिखाए जाने लगे। अहं मध्यकालीन आम्रपाल प्रियाली गीतारों अस्ति गायत्री जैन गण्डारों में ही गुरुकित है। यह प्रतिक्रियाएँ और धारों की देखाई हुई गिलती हैं।

केवल भारत के सभी प्रान्तों में जैनी निवास करते हैं, अतः जैन मंदिर और ज्ञान भण्डार भी याम नामी भाग्यों में हैं। पर हस्तानिशिलि रथ भण्डार स्वरूप अधिक दोजल्यान भी गहरायान ये हैं। गायत्र निर भी अनेक स्थानों में ज्ञान भण्डार के गहरे इन्हें नहीं बहुत लाला निरानन्द भण्डार तो उद्धा ये आदान भान भाध जाँभी एवं उद्धा के उद्धान भान भाध ये गुण गायत्री गंगा रेतों में जाते हैं।

पंजाब के मुक्तिगुरुक नम्बदाय के अधिकांश ज्ञान भण्डार अब दिल्ली-बम्बनगर के देवेशास्त्रर जैन मन्दिर में प्रकाशित कर लिए गए हैं। जूँड भण्डार उसमें जाने आंख खो दी हैं। स्थानकवाली ज्ञान भण्डारों की पूरी जानकारी गृहों नहीं मिल सकती है। लुभियांग के स्थानक-यात्री जैन गवन में बच्चा संप्रह सुना है। पर उनमें से केवल एक ही प्रति में (अब उक्त दो बाट जाने पर) देल जाया हूँ, उत भण्डार की पूरी गृहों भी देल नहीं जाना। हमारे ज्ञान भण्डारों के इष्टवर्षापकों में भी ऐसी उदारता की कमी है।

पंजाब के जैन ज्ञान भण्डारों की कृष्ण प्रतियोगी इण्डिया फोरम लन्डन की लाइब्रेरी में पहुँच चुकी है जो वहाँ के प्रकाशित 'फैसलां' में उल्लिखित है। पंजाब की जानकारी हरत-लिखित प्रतियों की लोअर रिपोर्ट भी ने देखने में नहीं आई। केवल छाँट बनारसीदार जैन सम्मानित पंजाब के हरत-लिखित भण्डारों की यथा वा प्रथम भाग की यसे ज्ञान हरत जिसमें ३१६९ प्रतियों की सूची दी है। इस सूची में भूतपुर, अशोका, दोरा, भवानपुर, लूँग, इन दोष स्थानों की ही सूची है। इसके दूसरे भाग में अन्य ज्ञानदारों की सूची प्रकाशन का नई विचार छाँट बनारसीदार जैन का रहा होगा पर वे उस कार्य को सम्मिलित कर नहीं पाए। प्रकाशित गृहों अन् १९३१ (ग्रन्थ १९५५) में प्रकाशित हुई थी। इस सूची के अनुसार पंजाब भण्डारों में ज्ञान गृहों प्राप्तिव प्रति संख्या १३४३ नी है। वह गृही जानी पर्याप्त में नीकार नहीं गई थी, आः कम्फी महल की जानकारी इससे किल जाती है। पंजाब युनिवर्सिटी, लाहौर से प्रकाशित यह सूची भी अब अप्राप्त हो गई है।

जैसा कि ज्ञान लिखा गया है कि पंजाब के मुक्तिगुरुक नम्बदाय के अधिकांश ज्ञान भण्डार बम्बनगर के प्रबन्धालय में आ चुक है। उनमें गृही १०० शीरालाल दूपड़े ने रखाए नी है। उसे शोध ही प्रकाशित किया जाता चाहिए। इसमें २१ छोटेखड़े ज्ञान भण्डारों की प्रतियोगी भाषी है। उनकी जानकारी इस प्रकार है—

१. गुजरांवाला
२. लुभियाना
३. जन्मू
४. नरोदर (जालंधर)
५. हांशियालाल
६. पट्टी
७. जंडियाला गुरु (श्री तंद)
८. हीरालाल दूपड़
९. जंडियाला गुरु (पति जी)
१०. बनू
११. कुटकर
१२. विजय समुद्र मुरि
१३. श्री हंसराज नीलगढ़ा

२०. जाहोरी चित्र श्री जी

२१. फरीदकोट

उपरोक्त भण्डारों की कुल प्रतियों की संख्या ९ में १० हजार के भीतर है, अतः यह संग्रह बहुत ही महत्व का है। इस संग्रह में काफी अजान और विशिष्ट प्रत्यों की भी उपरोक्त प्रतियों भी हैं, पर इसकी जानकारी बहुत ही कम लोगों को है। फलतः इस संग्रह का उचित ग्रन्थी के लिए दो रहा है। १० हीरालाल दूर्ग को छोड़ देने से अब वह भण्डार बंद हो जाए रहा है, इधर में २-३ बार गया पर एक भी प्रति देख नहीं सका। अतः गुनाकाशम् जाहे कुछ पट्टों के लिए ही हो, पर खास अवस्था जाना चाहिए। मुद्रित प्रत्यों का भी यहां अच्छा गंगठ हो गया है। उरांगों जो ग्रन्थ नहीं हों, वे गंगवा कर इसे यावजनोपर्योगी काड़वेरी का स्वप्न देना चाहिए जिससे जान वृद्धि की भावना तफल हो। जैन समाज को तो इसमें अधिकानिक लाभ उठाना ही चाहिए।

भारत सरकार में हस्तालिखित प्रत्यों की नूनी जगत और उपवाने का पूरा सत्र दिया रखा है लेकिन मुन्द्रस्थाल जी जैन में २-३ बार रहा भी कि भारत अच्छा गौरिलाल-ग्रभाव है। अतः गुनाकाशी अनुशासन ने यहां के हस्तालिखित ज्ञान भण्डारों की नूनी भी प्रकल्पित करता है। श्री रामलाल जैन एवं १० हीरा को भी इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए।

इसके अनिलिंग अन्यान्या के जैन ज्ञान-भण्डार में भी श्रीरामीन गंगठ है। गे यत्र अमान्या गया था तो यहां के हस्तालिखित भण्डारों की नूनी देखी थी। इसी तरह और भी कई पंजाब एवं जैन भण्डार ज्ञानकर में नहीं था यहां है, उन्हें प्रगतिपूर्वक गंगा लेना चाहिए क्योंकि वहां हस्तालिखित प्रतियों का कोई उत्तरोग नहीं हो रहा है। एक जनह आ जाने से उनके व्यवस्था और जायोग में नुसिद्धा हो जायगी।

पंजाब की कुछ हस्तालिखित प्रतियां आ० विजयवल्लभ मूरि ने पाटण (गुजरात) भी भित्रवायी थी। हेमन्द्र गौरिज्ञान मंदिर, पाटण में वे गुरुधित हैं। उनकी सूनी की नकल भी फैलाना एवं गंगा के रणना चाहिए। पंजाब के कुछ गुरुओं मैंने गुरुत्विज्ञ जी के गंगठ में भी देखे थे। इस तरह जो इयर-उयर सामग्री विद्यर गई है एवं कुछ भावकों भादि के पास भी पड़ी होगी उनकी स्वोज एवं संग्रह किया जाना आवश्यक है। पंजाब के भण्डारों में प्राप्त महत्वपूर्ण प्रत्यों के प्रकाशन की भी व्यवस्था की जाय। इसके लिए भारत सरकार से प्रयत्न करने पर प्रगतिशत-गद्दामांग गिल ही नाम्यनी। भारत सरकार प्रतिवर्ष हस्तालिखित सूचियां बनाने, ज्ञाने एवं मुद्रित प्रकाशन में खर्च करती ही है, उसका जैन समाज भी लाभ उठाये।

कुछ बर्दी आहे तक पंजाव के अनेक ग्राम-नगरों में श्रद्धा लोग रहते थे। उनके मंदिर जाने आदि आर भी 'पुराणी का मंदिर उत्तरारा' कहा जाता है। अभी मैं हांशिदारण्युर गया तो देखा कि यहाँ का 'पुराणा मंदिर भी' पुराणी का मंदिर कहलाता है। उन यात्रियों के पास हस्त-विभिन्न प्रतियाँ अच्छी संख्या में रहती ही थीं। उनमें से कुछ ज्ञान भांडार तो यतियों की द्विष्ट ग्रन्थालय हो जाते पर थो संत के हाव में आ गए। गम्भीर है उनमें से कुछ स्थानकवासी सम्प्रदाय की रेख-रेख में अब भी हों। उनकी जानकारी में प्राचीन नहीं कर सका।'

'समाज' में अब भी स्वरूपिता कलानुत्र और कालिकाचार्य क्या की प्राचीन सचिव प्रतियों मूर्तिग्राम वंश की देवदेव में है। पंजाव के हस्तलिखित प्रतियों की प्रशस्तियों का इह प्रकाशित किया जाए तो पंजाव के गंगा झी हाव पर काफी अच्छा और नदा प्रकाश पढ़ सकता है। इस प्राचीन के मूर्तिग्राम और स्थानकवासी मुनियों और श्रावकों का कर्तव्य है कि ये यहाँ की स्तरहित्यक निवि और इतिहास को भुलाकर रखें।

'तावु-आश्रम' के चांद संस्थान में भी जैन हस्तलिखित प्रतियों तैकड़ों की संख्या में है। उन्हें मैं कई वर्ष पूर्व गया था, तब देख आया था तथा उनकी मेरे द्वारा संशोधित वहाँ की सूची में भी इसका उल्लेख है। पंजाव विश्वविद्यालय में भी कुछ जैन हस्तलिखित प्रतियाँ हैं।

—गाहटों की गवाड़, वीकानेर (राज०)

ਪੰਜਾਬ ਕਾ ਪ੍ਰਥਮ

ਜੈਨ ਹਿੰਦੀ ਕਵਿ--ਮਾਲਦੇਵ

ਸਾਗਰ ਚੰਦ ਨਾਹਟਾ

ਪੰਜਾਬ ਆਂ ਸਿਧ ਸੇ ਜੰਤ ਘੁੰਮਾ
ਗਾ ਪਰਾਹ ਫੀਰੀ ਯ ੨੫੦੦ ਬਾਂਦੀ
ਸੇ ਤਿਰਨਤਾਰ ਚਲਾ ਯਾ ਰਹਾ ਹੈ। ਬੰਜੇ ਖਗਵਾਨ
ਆਪਭ-ਦੇਵ ਕੇ ਪੁਰ ਗ੍ਰਾਹਕਿਣੀ ਤਥਾ ਗਿਲਾ
ਪਰ ਸ਼ਾਸਨ ਥਾ। ਜੈਨ ਧਾਰਾਓਂ ਦੇ ਇਸ
ਕਥਨ ਮੈਂ ਤੋਂ ਪੰਜਾਬ ਸੇ ਜੈਸ-ਖੁਸ਼ ਕਾ
ਸੰਖ ਬਹੁਤ ਪ੍ਰਾਚੀਨ ਕਾਲ ਮੈਂ ਨਿਵੇਂ
ਹੋਂਤਾਂ ਹੈ। ਪਰਗਾਂ ਸ਼ਹਾਕੀਨਾਂ ਦੀ ਨਿਧੁ
ਪ੍ਰਦੇਸ਼ ਮੈਂ ਪਾਂਧੀਂ ਦੇ ਪ੍ਰਾਂਤ ਮੈਂ ਸਾਡਾ-
ਪਤਨ ਕਾ ਗਾਯਾ ਤਨਾਧਨ ਇਕਾਂ ਪੱਖ ਅਧਨ
ਚਲ ਗਿਆ ਥਾ। ਭਾਂ ਸ਼ਹਾਕੀਨ ਕੇ ਕੁਛ
ਗਤਾਵਿਦਿਆਂ ਵਾਹ ਕਾ ਪੰਜਾਬ ਕਾ ਜੰਤ
ਦੱਤਿਹਾਸ ਅਮੀਰ ਬੜਾਨ ਹੈ। ਜੀਵੀ ਗੁਰਾਵੀਂ
ਸੇ ਫਿਰ ਇਸਤਾ ਸਿੱਖ-ਮਿਲਾ ਚਲ੍ਹੇ ਰੋਤਾਂ ਹੈ।
ਤਾਂਕੇਂਗ ਗੁਚ਼ੁ, ਕੁਗੁਚ਼ੁ ਗੁਚ਼ੁ ਗ੍ਰਾਂਡ ਜੰਤ
ਅਮੰ ਦੀ ਕੁਈ ਜਾਗਾਵਾਂ ਕੇ ਆਗਾਵਾਂ ਪ੍ਰਾਂਤ
ਮੁਨਿਆਂ ਨੇ ਇਨ੍ਹੇ ਪਰਮ ਪ੍ਰਚਾਰ ਕਾ ਸੈਂਡ
ਕਾ ਕਲਾ ਰਖਾ ਥਾ। ਇਸ ਪ੍ਰਦੇਸ਼ ਸ਼ਹਾਕੀਨ
ਜੰਨਾਂ ਕੇ ਧਰ ਦੇ ਪ੍ਰਾਂਤ ਮੁਨਿ ਗਣ ਵਗਵਰ
ਇਥਰ ਪ੍ਰਾਕਰ ਅਮੰ ਪ੍ਰਚਾਰ ਕਿਥਾ ਕਾਰ੍ਹੇ ਥੇ,
ਬਹੁਤ ਲੇ ਸਥਾਨਾਂ ਦੇ ਜੈਨ ਮੰਦਿਰ ਕਾ ਗਾ-

ਥਥ ਥੇ। ਸਿਧ ਪਾਇਲਾਕਾ ਨਾਂ ਅਥ ਯਾਨੂੰ
ਕੁਛ ਪਾਵਿਲਿਨ ਦੇ ਚਲਾ ਗਿਆ ਹੈ ਆਂ ਰ
ਥਹਾ ਕੇ ਜੰਨੀ ਰਾਜਸਥਾਨ ਪਾਇ, ਅਨ੍ਯ
ਪ੍ਰਸ਼ਾਸਨਾਂ ਦੇ ਪ੍ਰਾਕਰ ਜਮ ਧਾਰੇ ਹੈ ਆਂ ਕਈ
ਅਕਿਤਿਆਂ ਨੇ ਤੋਂ ਇਥਰ ਪ੍ਰਾਕਰ ਕਾਫੀ ਪ੍ਰਚਲੀ
ਆਧਿਕ ਤਨਾਤਿ ਭੀ ਕੀ ਹੈ। ਪੰਜਾਬ ਸੇ ਆਜ
ਮੀਂ ਜਗਦ ਜਗਹ ਜੈਨ ਰਹਨੇ ਹੈ ਆਂ ਜਾਗਾਵਾਂ
ਅਮੁਨਿਆਂ ਦਾ ਚਨ੍ਹਸੌਨ ਪ੍ਰਾਂਤ ਵਿਹਾਰ ਕਰਾਵਰ
ਕਿਉਂਕਿ ਪ੍ਰਾਂਤ ਦੀ ਸੁਖਿਆਂ ਦੀ
ਪ੍ਰਦਾਨ ਪ੍ਰਕਾਸ਼ ਇਸ ਪ੍ਰਦੇਸ਼ ਦੇ ਕੇ
ਪ੍ਰਾਂਤ ਨਾਗਾਹਾਰੀ ਧਰੇ ਰੂਪ ਹੈ। ਆਪਾਰ
ਏ ਕੋਨੇ ਦੇ ਇਨ੍ਹਾਂ ਕਾਫੀ ਯਥਾ ਸ਼ਾਨ ਹੈ।

ਪੰਜਾਬ ਆਂ ਰਾਜਸਥਾਨ ਕਾ ਨਾਂ ਬਹੁਤ
ਪਤਿਲਟ ਆਂ ਨਿਕਟ ਕਾ ਸੰਖੇਂ ਹੈ। ਜੈਨ
ਪ੍ਰਾਂਤ ਪ੍ਰਸ਼ਾਸਨ ਦੇ ਨਿਧੁ ਮਿਲਿਵਾਂ
ਦ੍ਰਿਸ਼ ਕਰਨੇ ਰਹਨੇ ਹੈ ਆਂ ਪ੍ਰਭਿਦਾਤ
ਗਿਆ ਪ੍ਰਾਂਤ ਦੇ ਅਮੰ ਧਰਾਵਾਂ ਕਰਨੇ
ਥਾਂ ਜੈਨ ਸੂਨਿ ਕੁ ਪ੍ਰਤਿ ਨਾਗਇਆਸ ਦੇ ਹੋਂਦਾ
ਕਾਲੇ ਰੜੇ ਤੇ ਤਥਾ ਤਨ ਪ੍ਰਦੇਸ਼ ਦੇ ਨਿਵਾਸੀ
ਗੁਨਿਆਂ ਦਾ ਮੀਂ ਧਾਰਾਵਿਕ, ਗ੍ਰਾਮਿਕ ਆਂ
ਨਾਮਾਜਿਕ ਸੰਖੇਂ ਨਾਜਸਥਾਨ ਦੇ ਰਹਾ ਹੈ।

राजनीतिये राजस्थानी भाषा के लिए यह
रचनाएँ शिव-पंजाब में भी ज्ञान हैं।
ये भी जिस तरह राजस्थान के लोग
रखनालों में गुजराती का प्रभाव रहता
है वैसे पंजाब में उसी पट्ठे राजस्थानी
कवियों की रचनाओं से हिन्दी का प्रभाव
रहता है। यदा ऐसे ही पक्के जैन काव्य
का अधिक्य दिया जा रहा है। [जैनी
राजस्थानी] और इन्हीं दोनों भाषाओं
में मिली तुली रचनाओं का समान है
प्राप्त है। अपने समय में भी वे काव्य के
लिए भी काफी प्रोत्साहन प्राप्त हो गए
पंजाब के तो वे सबसे पहले शीर विजिट
हिन्दी जैन कवि माने जा सकते हैं।

ज्येष्ठान्ध्र जैन-समाज में शहून में
गच्छ यानि तप्तुदाय है। उसमें से
'शहून-गच्छ-वाणि-गच्छ' मेवन् दृढ़ गे
प्रसिद्ध दृष्टा और उपको गड़ जावाये-
प्रजायाद्य हो गड़। इसमें भी
'शहूनेरी जाखा' भी है जो कि ग्रामीण-
राज्य के भटनेर दृग्मि न सबैयित है।
भटनेर पूर्वकानु में भाटियों की राजस्थानी
रही है और इसी में शहून में
'भट्टिनगर' प्रसिद्ध दृष्टा। ग्रामीण उन्हें
'हनुमानगढ़' कहते हैं। भटनेर दृष्टा में
ग्राम भी बदगच्छ के जावायों को
प्रतिलिपि जैन सूतियों वहाँ के जैन
मंदिर में है। इस भट्टिन के ग्रामीणों के
गहरी योउपाध्य भी भटनेर दृग्मि भाजों
का दृटी-कुटी प्रशंसना गे हैं त्रिरोक्ति

की जैन ग्रन्थों की जैन ग्रन्थों
में। इस गच्छ का उपनिषदीय
जावा गच्छाये जा चक्के चक्के वा यह गच्छ
का गच्छ-उपनिषदीय प्राप्त उपनिषदीय
प्राप्त है। यहाँ की कुछ प्रतिलिपि वहाँ ऐ
पक्के जैन कवि गहरा गहरी के प्राप्त कुछ
देखी गच्छाये हैं। प्राप्त शहून याज्ञा ग्रन्थ
जैनी में उन्होंने लिखे हैं।

वह उच्छ्वास की दृग्मि भट्टिनेरी-जाखा
ग गच्छाये तासक एक चमकारी गति
पृथ्वी जैनी हो गयी गति कुछों
जैनालों के प्राप्तमें हो गए हैं, जिनका
वहाँ के तत्त्वालीन शासक ने जब नहाया
गो उन्होंने दृष्टाये के आई वासनों को
भटनेर और वीकानेर एवं ग्रामीण
करने के लिये नैनार कर लिया। फलतः
जामना या वीकानेर के ग्राम जैनी
में गच्छा गच्छा गच्छा गच्छा गच्छा
है दृष्टा। भिन्नों वर्णन भिन्नों वर्णन
जैनसी भी छग्न "जास्तक दो रचनाओं
प्राप्त" जैनी "ग्रन्थ" में गहरा गहरा है।
"ग्रन्थ जैनी भी छग्न" का समादर
उन्हों के विद्वान् जैन एवं ग्रन्थ
ट्रांसलेटरों ने किया ग्राम-प्रजायाद्या
नामालों वर्गाल ने उन्हें प्रस्तुति उन
उपाध्यायों। "जैनी गहरा" भी उन
विद्वानों की लिखी हुई उन प्रतिलिपि उपाध्य
मंग्रह ने है अर्थात् उने "राजस्थानी"
प्रतिलिपि में प्रस्तुति लिया जा रहा है।

प्रस्तुतिमध्ये :

उत्तरोत्तर "भावरेख" को संघर्ष १६०४ में यश्च-नायक यात्राये था एवं यसी प्रारंभ उन्हीं के नियम सुन्दरि यात्रेय हुए, जिनसी रथनामों स्वरूपिणि विवरण प्रस्तुत सेवा में दिया गया रहा है। वैसे यात्रेव जैन धर्म होने के कारण यनेक स्थानों में अपने रखे होने वाले प्रधानतया ये सरक्षणकी १८८ -- जिनमा में रहा कर्त्तुं थे। प्रारंभ १५७८, राजस्थानी पीर हिन्दी बारों भावामों की उनकी रथनाएँ प्राप्त हैं। उनके छाँथ की तिथी हुई एक संप्रह त्रितीयी भी 'विनवचन्द्र जैन ज्ञान भवार' जग्गुर के संघर्ष में सुरक्षित है। उनसी रथनामों का यथा प्रवार रहा है। इनमियं कई रथनामों की तो बहुत-न्यी हस्तनिवित प्रतिया यनेक हस्तनिवित संग्रहालयों में प्राप्त होती है। प्राप्त रथनामों में से ये दो वै हो उग्रोंमें रथनाकार दिया है। इससे उनका साहित्य निवांग का समव संवद १६१२ के प्राप्त-नाम का निरिचन होता है। संस्कृत में उनके एवित 'स्वान्तर वाच्य' की एकमात्र हस्तनिवित प्रति वीराने की प्रत्युष संकृत वायद्वेशी में है जो उत्तरस्ता में रखित, ही प्रारंभिक परिमाण ३६२० स्मोटों का है। इन प्रथम के बहुत ने बद्यग्रह की ऐतिहासिक पट्टावसी भी रखे हुई है जिसमें यात्रेव की वृक्ष-मरुभृता का खसीभानि परिवर्ष मिल जाता है। प्रवद् १६१२ में इन

प्रथम भी रथना हुई और प्रसिद्धि में यात्रेव का विमोचन "वाचर्ष" निका हुआ है, इससे उत्तर यात्रा ये त्रोड़ हो चुके हैं। प्रारंभिक रूप में भी प्रतिद्वंद्वि प्राप्त वर चुके हैं, निरिचन हुता है। इनके रचित प्राप्तवत्त पर वठ कथाओं में है 'दीप्यनालिका वाचा'; 'मानव रथनालिका वाचा' प्रारंभ १६१० की रथनामों का न्योदय परिमाण १२५० स्मोटों का है।

इसी यात्रेव का संस्कृत नाम "मानव चरि" ही प्रतिद्वंद्वि रहा है। इसी ने यन्मनी रथनामों में भी यथिक्षर "मानव" चरि का ही प्रशोण किया है। १७वीं उत्तराठ में हुए युवराज के प्रतिद्वंद्वि व्याक जैन चरि यथायदात्र में हजार उत्तरेव यथा प्रतिद्वंद्वि कवियों के बाब किया है। इनकी कई रथनामों को हजारी यथिक्षर प्रतिद्वंद्वि हुई कि उनकी रथनामों की "हनी तर्ज या चात" में यथा कई कवियों ने यन्मनी रथनाएँ बनाई। प्रारंभी "पुण्डर चंपार्दि" की तो वसानों प्रतिया यन्म-लग्न प्राप्त है। इसे हमने पाठ्य-भेद सहित 'मन्धाली' में प्रकाशित भी कर दिया है। इह रथना का तथा यापनी एक प्राची रथना का चंपासार है 'महभाली'. पीर 'बरदा' में प्रदाहित कर पुके हैं। यापनी कई रथनामें तों

इण्ठिया आणि स जायचेरो, भन्नम ये संप्रहालय मे भोज चुकी हैं उनमे कुछ ऐसे अन्य भी हैं जिनकी भारत मे अन्य कोई प्रति प्राप्त नहीं होती।

आपकी ग्रधिकांश रचनाये प्रसिद्ध लोकाख्यानों और जैन रथानकां के संदर्भ मे हैं। जिनमे से महाराज विक्रम और भोज के नाम तो बाही बढ़े हैं। कुछ रचनाये शिखाप्रद हैं और कुछ फुटकर गीतों के रूप मे प्राप्त हैं। अभी छोटी-छोटी रचनाओं की यद्यपि पूरी खोज नहीं हुई है फिर भी जिन रचनाओं की जानकारी प्राप्त हो सकी है उनका संक्षिप्त परिचय व कुछ उदाहरण यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

मालकवि की रचनाओं की एक सबसे बड़ी विषेषता यह है कि उन्होंने अपनी रचनाओं मे स्थान-स्थान पर अनेक सुभाषित देकर रचनाओं की रोचकता मे बढ़ि की है। इनमे से कुछ सुभाषित तो पुराने हैं जो उस समय काफी प्रसिद्ध रहे होंगे पर बहुत-से उन्होंने स्वयं बनाये हैं। उन सुभाषितों को भी परवती कवियों ने अपनी रचनाओं मे स्थान दिया है।

अब हम आपकी राजस्थानी व हिन्दी की रचनाओं का परिचय देते हैं।

(१) पुरन्दर चौपाई—शील धर्म के महात्म्य पर यह कथा पद्यरूप मे लिखी गई है। पद्यों की संख्या ३७२ है।

(२) पुर सुन्दर चौपाई—यह भावना के महात्म्य पर ६६६ पद्यों मे रची गई है। प्रारम्भ मे भावां की विशेषता पर उदाहरण के साथ वहां सुन्दर प्रकाश ढाला गया है—

“भावन भावउ भविष्यणर्देः
दानशील तप मार्हि प्रधानकि ।
लवण सम जाणि भावना,
धरमसहु आहार समानकि ॥भा०
मूल रहित जिम वृक्ष नह ।
फल नवि लागई किणई उपावकि
धर्म क्रिया करणि करउ,
भाव ब्रिनाते निष्फल आइकि ॥भा०
जिमसुर मन्दिर अति भलउ,
प्रतिभा विनु शोमइ ते केमकि ।
दान धरम संजन करो,
भाव दिना थायइ सहुतेमकि ॥भा०
नयन विषजित मुख जिसो ,
नयन तारिका विषजिम होयकि ।
कुमुम सुगंध रहित जसो ,
देह जीव विणु सोहई कोहकि ॥भा०

संवत् १६३१ मे सरसा मे मालदेव की गुरुमाता भीमदेव लिखित गुटके मे प्रस्तुत रास हमारे संग्रह मे हैं। इसी गुटके मे मालदेव की कई अन्य रचनाये भी उसी समय और उसी व्यक्ति की लिखी हुई हैं।

(३) वीरांगद चौपाई—यह पुण्य के महात्म्य पर वीरांगद की कथा

= पद्मा गं रामयृ १२१३ = जोगु
मुदि ६ का रचना गई है। इसके प्रारम्भ
में दिव्ये कुँठ सुन्दर सुभाषित इस
प्रकार है—

मालन पहिलइ पुण्य किय,
विद्युइ आवइगालि ।
पाणि जड़ किरिवहि गयउ,
तउ यथा बांधइ पालि ॥
अवतरि जिण चूमिड तही,
'माल' विचारहि एह ॥
पाहलइ पाणि पोह करि,
पाछइ पूर्थइ गेह ॥
करि उद्यम चेत्यो न जो,
खाइ तासु फल काल ।
सुतह की पाज जणइ,
जिउ जगि कहिथइ माल ॥
कर चलूय एणियि,
अखसर दिनेण पूर्धिझेजियइ ।
पछा सवणि सुंदरि,
घडेसय दिनेण कित्तेण ॥

(४) स्थूलिभद्र धमाल चौपई—
प्राचीन संग्रह में जो स्थूलिभद्र काग
के नाम से प्रकाशित हुई है, वहो यह
रचना है। इसी गुटर्में मालदेव की
छोटी रचनाओं में— १ धर्म सून्यका०
पद्य २१, २ मनसंग-भमरामीत पद्य १६, ३
धर्म खटोला - पद्य १३ हैं।

(५) भोज प्रबन्ध—प्राप्त रचनाओं
में यह लेखक का सम्भवतः सब से बड़ा
प्रन्थ है। पंचपुरी में इसकी रचना हुई

इसका परिमाण कर्त्तव्य ५००० श्लोकों
का है।

(६) विक्रम चरित्र पंचदंड
चौपई—गोज चरित्र के बाद वडी
रचनाओं में इसका स्थान है। एक प्रति
में इसका प्रथम परिमाण १७३७ पद्यों
का दिया है। इसकी एक प्रति भीखम-
चंद्रामी भमरामी शे गोक्रिन्द पुस्तकालय
में है। अन्य भी कई प्रतियाँ मिलती हैं।
प्रति में गाथा १७२५ और प्रथमप्रथम
२४८५ भी लिखा हुआ है।

(७) देशदत्त चौपई—परिप्रह-
परिमाण के गहात्म्य पर ५३० पद्यों में
यह कथा बनाई गई है। प्रथमप्रथम
८४० है।

(८) धनदेव पश्चराय चौपई—गोग
के महात्म्य पर यह कथा १८३ पद्यों में
बनाई गई है। इसकी प्रति हमारे संग्रह
में है।

(९) सत्य की चौपई—काम भोगों
के दृष्टिरिणाम पर सत्य की पिद्यापर वा
वृतान्त ४४६ पद्यों में लिखा गया है।
इसके १५ पद्यों की एकमाल प्रति हमारे
संग्रह में है।

(१०) अंजना सुन्दरी चौपई—
प्रसिद्ध शीलवती सती अंजना सुन्दरी
की कथा १५६ पद्यों में लिखी गई है।
इसकी ८ पद्यों की प्रति हमारे संग्रह में
है। जैन गुजरंग कवियों भाग १ और ३
में इसके रचयिता मालकवि को मालदेव
से भिन्न समझा गया है। जो वास्तव में

योजना नहीं है। सामाजिक सामाजिक शोधों ताकि कल्पना के वर्णनों में गिरावट है।

(११) अमरसेन बंरसेन चौपाई—इसकी एक प्रति विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान में मिली है। पद्य संख्या ४०८ है।

(१२) मृगांक पद्यावती रास—दान धर्म के महात्म्य पर इस कथा की रचना की गई है। जिसमें ४५३ पद्य हैं। शीकानेर के दान-सागर भण्डार में इसकी एक प्रति है।

(१३) पद्यावती पद्यश्ची रास—इसकी दो प्रतियाँ विश्वेश्वरानन्द शोध संस्थान, दो प्रतियाँ झंडियाला गुरु के जैन-ज्ञान भण्डार में और एक प्रति गाज-स्थान पुरातत्व संरिन, जयपुर के संग्रहालय में मिली हैं। उनमें से एक प्रति में पद्य संख्या ८०३ तथा दूसरी में ८१५ है।

(१४) कीर्तिधर सुकोशल संबंध—इसकी १५ पत्रों की एक प्रति इंडिया आफिस लायब्रेरी में मिली है, जिसकी पद्य संख्या ४३१ है।

(१५) नेमिनाथ नव भव रास भास—इसकी भी १५ पत्रों की एक प्रति उपर्युक्त लायब्रेरी में मिली है। पद्य संख्या २३० है। इसमें सुप्रसिद्ध तीर्थंकर नेमिनाथ और राजुल के नव भवों की प्रोति का वर्णन है।

(१६) ग्रन्थिलिङ् उपाध्या प्राप्तिया लायब्रेरी में गाल कवि की ५२८ त्रान रचनाओं में से पुरन्दर चौपाई, वौशंगद चौपाई और 'सत्य की ज़ंबंध' की प्रतियाँ हैं।

(१७) भाल शिक्षा चौपाई—यह १८ पद्यों की शिक्षाप्रद रचना है। इसमें कवि ने ११८ शिक्षाएँ संबंधित की हैं जिससे व्यावहारिक धार्मिक जीवन की बहुत ही सुन्दर शिक्षा गिलती है।

(१८) शील बाबनी—यह वर्णनानु-क्रम के रचित आठ पत्रों वाली (५९ पद्यों की) रचना है इसमें शील की महिमा का वर्णन है। दोहे बहे सुन्दर हैं।

(१९) राजुल नेमिनाथ—इसमें २८ तीर्थंकर नेमिनाथ और उनकी पत्नी राजुल के विवाहादि का प्रसंग ६५ पत्रों में गुफित किया है। जैन गुर्जर कवियों भाग ३ पृष्ठ ४९६ में संबत् १६५६ से लिखित प्रति का विवरण दिया है।

(२०) वृहदगच्छीय गुर्वाविली—जैसा कि प्रारम्भ में उल्लेख किया गया है, ३७ पद्यों की लोक भाषा में रचित इस गुर्वाविली को जैन सत्यप्रकाश १७ अंक में मैने प्रकाशित कर दी है।

(२१) अनूप संस्कृत लायब्रेरी के जिस गुटके में (नं० ६) गुर्वाविली प्राप्त हुई है, उसमें मानदेव रचित महावीर

पंच कल्याण चतुर्थ (२८गाथाओं का) भी है।

(२१) महाबीर पारणा—यह तो बहुत प्रसिद्ध है और कई ग्रन्थों में छप चुका है। भगवान् महाबीर ने उद्यर्थ अवस्था में जीमामी नपर्या का पारणा प्रतिदिन भावना आने वाले जीव सेठ के यहाँ न कर, पूर्ण सेठ के यहाँ किया, उस प्रसंग का इसमें वर्णन करते हुए भावना की प्रधानता दिखलाइ गई है।

(२२) महाबीर लोरी—झंडियाला नुर के जैन भंडार ने भगवान् महाबीर के बाल्यावस्था की लोरी की प्रति प्राप्त हुई है जिसे मैने 'शाश्वत धर्म' के महाबीर जयन्ती अंक में प्रकाशित कर दिया है।

(२३) करणी प्रकरण—३६ पदों की यह रचना भी झंडियाला गुरु के भंडार में मिली है।

(२४) मन भमरा गीत—पद
१३ यह गीत बहुत प्रसिद्ध रहा है। इसकी चाल में भमर गुब्दर, जान नागर, पद्म विजय, कीति विजय आदि ने अपनी ढाल बनाई है जैन गुर्जर कवियों भाग। ३ पृ० २१०६ में छप चुका है। प्रथम पद इस प्रकार है

बाड़ी फूली श्रति भली भन
भमरा रे,
देखिन कोजे सोस। रंग रस
भमरा रे।
ग्रणसरज्यों लहिय नहींमन भमरा रे,

कर्महि दोजे दोष। रंग रस
भमरा रे। ॥६॥

(२५) इनके अतिरिक्त भरत थाहु-
दग्नि गीत, खेदक मध्याय, नेमि राजुल
गी अखड़ी, और कई पद हमारे संग्रह
में गुटकों आदि प्राप्त हैं। इनमें से
पदों को उदाहरण के लिये नीचे
दिया जा रहा है।

(१) नेमि राजुल गीत—(राग मालबी
गौड़ी)

कहति राजु लपिय दर्जन, सोही देखन देहुरी।
नैन आसु बरसति जल,
जनुफी सावन मेहुरी ॥क०
कहे न सभारइ नम्मन महि,
अष्ट भय कउ नेहरी।
अपराध विनु सुदयाल जावड,
क्यू दिलावह छेहुरी ॥क०
श्याम सुन्दर नेमि विछरड,
बन सुहाइ न गेहुरी।
माल प्रभु कहि चरन परि तुग,
वद्य मनाइ न लेहुरी ॥क०

(२) राग आशा
उठु पिय जाइ माइ रो
तुम्ह किड मनाहि न लेहु।
सुण सखिरी अष्ट भवलगु,
मेरइ प्रीतम एहु। उठु०
हउ होजंगी चंरागिनी,
अरु तजउ गियहु गेहु।
नेमि ज्यादउ श्याम, सुंदरि,
जइ यिसारयउ नेहु, । उठु०
अब प्रीति लागि मुकति स्थउं,
हम स्थउं दिलायउ छेहु।
कहति राजुल माल प्रभुजी,
दरश देखन देहु। उठु०

(३) राम टोडी--

तुनिया जात इह गइ वानो ।
खिनु-खिनु घट्ट-घट्ट ही दीसह,
ज्योंकर अंजलि पानो । दु०
चसक पाक दिल पाक होइ रह,
जह तह खलक पिछानो ।
जोवन गरब देलि ठकुराइ,
फिरत फहा अभिमानो । दु०
साहिब स्यउ खितु लाउ मूढमति,
इहु मुकाम हफानो ।

कहत माल पाय पोषि प्रभु की,
कहदा इमरे प्राणी । दु०
मालदेव की रचनाये अब किसी एक
जगह सुरक्षित न रह कर अनेक स्थानों
में विचर चुकी हैं। 'सरसा' जहाँ उनका
अधिक रहना हुया, वहाँ का भण्डार भी
अत्त-व्यस्त हो चुका है जिन लोगों के
हाथ में जो रचना पड़ी वे उसे उठा
ले गये। फिर भी सम्भव है सरसा के
जान-भण्डार में कुछ बच गई हों।
हमारे संप्रह मे आर ओकानेर के वडे
जान भण्डार राजस्थान प्राच्य विश्व प्रति-
शत अनूप स्ते स्वा. आदि मे उनकी वट्टत
सो रचनाएं हैं। कुछ पंजाय के जैन
जान भण्डारों ने भी प्राप्त हैं। पेसे कई

भण्डार और दिली के रुपनगर के
खेताम्बर जैन मन्दिर मे एकद करलिये
गए हैं। और उन भण्डारों की सूचियाँ
भी यह गई हैं। जैसा कि पहले कहा जा
चुका है—भट्टनेर, जयपुर, सन्दन आदि
प्रमुख स्थानों के हमननिमित्त गंगाजलयों
में उनकी रचनाये प्राप्त हैं। उन सब
रचनाओं का एक संग्रह हिन्दी शिखान,
विद्यालय या पंजाव युद्धोत्तर विश्वविद्या-
लय आदि संस्थाओं द्वारा प्रकाशित किये
जा सके—तो कवि की रचनाओं का
मूल्यांकन करने मे वडी खुविधा होगी।
कम से कम इनकी रचनाओं मे जितने
भी पुराने आर इनके रचे हुए मुभासित
पद्य हैं उनका तो श्रलग संप्रह प्रकाशित
होना चाहिए। वास्तव मे कवि मालदेव
का साहित्य, एक शोध प्रबन्ध या विषय
है, इसके सम्पादन एवं प्रालोचना द्वारा
सहज ही कोई व्यक्ति डाक्टरेट प्राप्त
कर सकता है याणा है जोध छाव
उनके निदेशक आर विश्वविद्यालय
इन आर ध्यान देंगे। उसके बाद भी
पंजाव मे कई हिन्दी जैन कवि हो
गये हैं उनका भी अध्ययन किया जाना
अपेक्षित है।

पंजाब में रचित कविपद्य अज्ञात हिन्दी ग्रन्थ

हिन्दी भाषा का प्रभाव और प्रचार गत कई शताब्दियों से उसके उत्पत्ति क्षेत्र उत्तर प्रदेश और पूर्व प्रदेश के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी अच्छा रहा है। कवीर, खूब, तुलसी आदि लोक-प्रिय कवियों की रचनाओं और संतों को वाणियों आदि से हिन्दी के प्रभाव को और भी बेग मिला। फलतः १७वीं शताब्दी के बाद १८वीं व १९वीं शताब्दी में हिन्दी प्रदेश के आस-पास के प्रान्तों में भी अपनी प्रात्प्रयोग भाषाओं के साथ-साथ हिन्दी में भी खूब रचनाएँ लिखी जाने लगी।

पंजाब में गुरु नानक, गुरु गोविन्द सिंह आदि ने हिन्दी को बड़ा आदर दिया। गुरु ग्रंथ साहित्र में संग्रहीत हिन्दी पदों के द्वारा लोगों का आकर्षण दिनों-दिन हिन्दी की ओर बढ़ने लगा। १७वीं शताब्दी से तो पंजाब में निरंतर हिन्दी भाषा में ग्रंथ रचे जाने लगे, परं उनकी अभी भली-भाँति खोज नहीं दुर्भ है। इसी लिये हम प्रत्येक में रचित हिन्दी साहित्य के सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं रखते। १९वीं शताब्दी में पंजाब के कई राजाओं ने हिन्दी को खूब प्रोत्साहित किया। कपूरुषलता और पटियाला के नरेशों के आश्रित कई हिन्दी कवियों का पता चलता है। परं जहाँ तक इन राजाओं के हस्तालिखित ग्रंथ संप्रहालयों को भली-भाँति नहीं खोला जाय, हमारी यह जानकारी अपूर्ण ही रहेगी। इसलिये पंजाब के साहित्य प्रौमयों से अनुरोध है कि वे पंजाब में रचित हिन्दी साहित्य की भली-भाँति खोज कर एक परिचयात्मक ग्रंथ शीघ्र प्रकाशित करें। साथु आशम होश्यारपुर के संग्रह में ७ हजार हस्तालिखित प्रतियाँ हैं। उनमें भी हिन्दी ग्रंथ होंगे।

गत दो-तीन वर्षों से पंजाब की सैकड़ों हस्तालिखित प्रतियाँ मेरे पास विक्रयार्थ आईं व आ रही हैं। इन में पंजाब में रचित हिन्दी ग्रंथों की भी कई पूर्ण व अपूर्ण प्रतियाँ हैं। गत वर्ष, एसो कुछ प्रतियाँ मैंने श्री मोती चंद्र खजांची के संग्रह के लिये खरीदी थीं, उन में पांच अज्ञात हिन्दी ग्रंथ (पंजाब में रचित) प्राप्त हुए थे। उनकी जानकारी प्रकाशित करने के लिये मैंने उसी सम्बन्ध 'पंजाब में रचित पांच अज्ञात हिन्दी ग्रंथ' शीर्षक लेख तैयार किया—जो कुछ यावश्यक कारणों से प्रकाशित नहीं किया जा सका। इस लेख में कवि 'राम' के रचित कवि 'रजन' २-भाग सिंध-चंद्रोदय ३-कत्तेसिंध प्रताप प्रमाकर ४-किशोर कवि रचित कविता संग्रह और नरेंद्र सिंह महाराजा के आश्रित एक कवि के रचित एक अलंकार ग्रंथ का परिचय दिया गया था। तदंतर मैं ने जो पंजाब की अन्य हस्तालिखित प्रतियाँ अपने संग्रह के लिये खरीदीं इनमें भी कई अशात हिन्दी ग्रंथ मिले। इनका संक्षिप्त परिचय कराना ही प्रस्तुत लेख का उद्देश्य है।

१. निहालसिंघ प्रमोदेन्दु चन्द्रिका

इस ग्रन्थ के पत्रांक ४१ से ७६ तक के मध्य पत्र ही प्राप्त हुए हैं। इसलिये आदि अन्त के अमावस्या में ग्रन्थ के रचना काल और कवि आदि का परिचय विस्तार से देना संभव नहीं। प्राप्त पत्रों से जो जानकारी मिलती है उसे ही यहाँ दिया जा रहा है।

इस ग्रन्थ के प्राप्त पत्रों में ग्रन्थ त्रिपाठ शैली में लिखा है। बीच में मूल पद है और ऊपर और नीचे उनको भाषा-टोका है। प्राप्त ४१वें पत्र में ग्रन्थ का पञ्चम प्रकाश प्रारम्भ होता है जिसके मूल पद ४२ हैं। पत्रांक ५३ में इस प्रकाश को टीका के साथ समाप्ति होती है। समाप्ति में लिखा गया है, “इति श्रीनन महाराजाधिराज श्री निहालसिंघ भूपाल आशाम कविं हरि नाम कृत श्री निहालसिंघ प्रमोदेन्दु चन्द्रिका याम ताहित्य ग्रोध कथन द्वितीय जामे सविभावादि रस निरूपण पञ्चम प्रकाशः।” पत्रांक ५६ में छठा प्रकाश ‘उत्तम काव्य भेद निरूपण’ नामक समाप्त होता है। पत्रांक ५७ में ‘मध्यम काव्य भेद निरूपण’ नाम का सातवां प्रकाश, पत्रांक ७० में ‘दूषण निरूपण’ नामक १४वां अध्याय एवं पत्रांक ७१ में ‘गुणनिरूपण’ नाम का १५ अध्याय समाप्त होता है। १६वें अध्याय का १५वां पद पत्रांक ७६ में अपूर्ण रह जाता है।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार इस ग्रन्थ की रचना निहालसिंह महाराजा के आश्रित कवि शरिनाम ने की थी और वह एक साहित्य-शास्त्र का ग्रन्थ है। स्पष्ट है निहाल सिंह कपूरथला के महाराजा फतेसिंह के पुत्र ही प्रतीत होते हैं। अतः इस ग्रन्थ का निर्माण सं० १६०० के आस-पास का होना सम्भव है। कपूरथला के संप्रहालय आदि में इसकी पूर्ण प्रति भो प्राप्त होंगी। अतः इस सम्बन्ध में पंजाब के विद्वान् विशेष प्रकाश डाल सकते हैं। अस्तु,

२. फतेसिंघ सुवश वर्णन

इस ग्रन्थ के पत्रांक ३ से ७१ तक के मध्य पत्र ही मुखे प्राप्त हैं अतः ग्रन्थ नाम, कवि नाम, रचना काल आदि की जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। इसमें मूल पाठ के साथ साथ ही टीका भी दी हुई है। पत्रांक ७२ से करीब ४०० तक के पद विवेचन के साथ प्राप्त पत्रों में मिलते हैं। पत्रांक ३६४ के बाद पत्रांक नहीं दिया गया, उसके लिये स्थान रिक्त है। ग्रन्थ में कपूरथला के महाराजा फतेसिंह के प्रताप का अनेक उपमाओं के साथ विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

पूर्व प्राप्त ‘फतेसिंघ प्रताप प्रमाकर’ से तो यह भिन्न ही है परं ये के नाम, रचना काल और रचयिता का निर्णय तो पूरी प्रति प्राप्त होने पर ही हो सकता है।

३. रामगीते—कवि राम रचित

इस ग्रन्थ के पत्रांक ४ से २६ तक के मध्य पत्र प्राप्त हैं। यह एक नाटक ग्रन्थ है जिसके ‘सीता-विवाह’ नामक प्रथम अंक के ११५ पदों में से प्रारंभिक ३१ पद (३ पत्र नहीं मिलते) अप्राप्य हैं। दूसरा ‘रामचंद्र वियोग’ नामक अंक द्वद्व पदों का है। तीसरा ‘बन को आऊनी’ नामक अंक १०६ पदों का है। चौथा ‘जानकी हरण’ अंक के केवल १२ पद हैं। और पांचवें अंक का तो आठवें पद तक का ही अंश प्राप्त हुआ है। चौथे अंक के अंतिम पत्र में “कविराम किधो कही रायन के” शब्द आते हैं, इससे इस नाटक का रचयिता कवि राम प्रतीत होता है।

४. अनुराग रस - स्वामी नारायण कृत

इसकी प्रति पुस्तकाकार है। बड़े बड़े अक्षरों में २७ पत्रों में १६८ पदों का यह ग्रंथ लिखा

हुआ है। इसके पश्चात् रेखता, ठुमरी, और कवित्त तीन पत्रों में हैं। अनुराग रस का आदिश्वर
इस प्रकार हैः—

आदि—धनि बृन्दावन चाम है, धनि बृन्दावन नाम।

धनि बृन्दावन रसिक जन, धनि श्री राधा श्याम ॥५॥

त्रंत—गुण मंदिर सुन्दर जुगल, मंगल मोह निधान,

नारायण निज चरण रति, वह दीवे दरदान ॥१६॥

प्रति का प्रथम पत्र प्राप्त न होने से प्रारंभ के चार पद्य अप्राप्य हैं।

५. यज्ञणो पद्धति

इस ध्रथ के पत्रांक १, २ और ११, १२, ये चार पत्र ही प्राप्त हुए हैं। इसमें यज्ञणी की
पूजा का विधान है। १२वें पत्र में रट्टां पद्य अधूरा रह जाता है। पता नहीं इस ध्रथ के और
कितने पत्र और कुल कितने पद्य थे? प्रारम्भ के तीनों पत्रों को यहाँ दे रखा है—

आदि—कहो मतेक रक्णा, सब देव विस्तार।

परमिंशत है यज्ञणी, आराधे सिद्ध भार ॥१॥

के आराधन तासका, निश्चय नाम जु तास।

भव से रहित जो देत फलः तंत्र सिद्ध वह भार ॥२॥

भगानि मात अस पुत्रिका, द्वी रुगा जान।

जैसी इच्छा ध्यान कर सोइ होवत मान ॥३॥

६. द्रोपदी चरित्र, दधि लोका आदि

इसकी प्रति भी गुटकाकार लिखी हुई है। प्रथम पत्र प्राप्त नहीं है और प्रारम्भ के पत्र
अप्रस में चिपक जाने के कारण कई पथ नष्ट हो गए हैं। पत्रांक ३ में नंददास कृत प्रेम पचोसी,
पत्रांक १८ में एक छोटा ध्रथ उमात होकर (जिसका नाम पढ़ा नहीं जाता) उसके बाद 'द्रोपदी
चरित्र प्रारम्भ होता है। यह १०५ पत्रों का है और इसका रचयिता रामदास है। तदनंतर रसलाल
के रचित 'दर्दि लीला' २८ पत्रों में है। सं० १६२५ जागरण में फिरोजपुर में यह गुटका लिखा
गया है।

७. बाहू कर्वांग पोर मोचन

यह ध्रथ सात पत्रों की एक गुटकाकार प्रति में लिखा मिला है। पत्रांक ३७वाँ लिखते हुये
छोड़ दिया गया है अतः ये अपूर्ण रह गया है। इसमें हनुमान जो की लुति है।

८. व्रह्मानन्द आदि—वेदान्त ग्रन्थ भाषायोंका

इसकी पुस्तकाकार अपूर्ण प्रति मिली है। यह कार्य वेदान्त ध्रथ की भाषा टीका के रूप में
प्रतोत्त होता है। इसमें व्रह्मानन्द, योगानन्द, आत्मानन्द आदि कई अध्याय हैं। एक पद्य का अर्थ
उद्घातरण स्वरूप यहाँ दिया जाता है—‘व्रह्मानन्द, वासनानन्द, प्रतिविभ्र आनन्द जगत विष्ये तीन भांत
का आनन्द है। ताते विषयनन्द उस वासनानन्द को उपजागता है। व्रह्मानन्द सा जानने योग्य है।’

९. कवित्त संग्रह

यह पुस्तकाकार अनेक कवियों के फुटकर पत्रों का संग्रह है। दो सौ से भी अधिक कवियों के
पत्रों का यह संग्रह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा प्राप्ति कवियों के कुछ अप्राप्य पत्र प्राप्त होने-

१८८—गुलाब, १८९—खुशाल, १९०—शिव नाथ, १९१—कबीर, १९२—ज्ञास, १९३—ललित,
१९४—जलाल, १९५—तारा, १९६—बुद्धराम, १९७—बेताल, १९८—सरस्वती, १९९—नेह तरण,
२००—देवोदास, २०१—गिरधर, २०२—अगरसी, २०३—गोविंद, २०४—गोविंदलाल, २०५—मुँज,
चिहारी, २०६—धनानंद, २०७ अभयराम, २०८—गुपाल।

इनमें से बहुत से अज्ञात हिंदी कवि प्रथम बार ही हमारे जानने में आते हैं। ऐसी कविता
संग्रह को प्रतियाँ अनूप संकृत लायब्रोरो में भी हैं जिनमें कुछ प्राचीन भी हैं।

के साथ साथ अनेक अश्वात कवियों का पता चलता है। कुल पर्णों की संख्या एक हजार के लगभग है। अंत में पीछे से कपूरथला के राजवंश के वर्णन के, वोले वर्णों से पहले ही रचित व लिखित पत्र भी सम्मिलित कर दिये गये हैं। इस संग्रह के कवियों की नामावली नीचे दी जा रही है। सम्बन्ध है इनमें से कई कवि पंजाब के हों। प्रारम्भ वा एक पत्र प्राप्त नहीं है और पीछे के कुछ पत्र भी फटे हुए हैं।

कवि नाम सूची

१-प्रदीनराय पातूर, २-हरिनाम, ३-ब्रजचंद, ४-सेनापति, ५-पठन, ६-आलम, ७-सैन कवि, ८-पवेत, ९-लाल, १०-चन्द्रन, ११-बंकलाल, १२-चंद, १३-महाकवि, १४-महाराज, १५-ईश, १६-मधुगृहन, १७-येनी, १८-तुलसीदास, २०-मोराम, २१-नंदलाल, २२-भगवान, २३-भगवंत, २४-भीखम, २५-लोधे, २६-तेगपालण, २७-मनोभव, २८-मनोहर, २९-दामोदर, ३०-हस्तिन, ३१-राजाराम, ३२-नाम, ३३-दुतिराम, ३४-उर्ध्वराम, ३५-उच्छौ, ३६-खुनाथ, ३७-गंपनाथ, ३८-गोप, ३९-माल, ४०-अग्रिमल, ४१-साज, ४२-जीवन ४३-प्रसिद्धि, ४४-मलूक, ४५-छीन, ४६-अनंत ४७-अरुण, ४८-मेष, ४९-शिरोमणि, ५०-निवाज, ५१-हार केश ५२-बलभद्र, ५३-नितामणि, ५४-जगन्नीवन, ५५-शान्ति शेखर, ५६-मदसद्ग्रन, ५७-पुरान, ५८-दत्त, ५९-ठाकुर, ६०-लीलावर, ६१-सुजान, ६२-सोमनाथ, ६३-शशि नाथ, ६४-सल्लो सुल, ६५-भूषण, ६६-ऐटिल, ६७-श्रीवर, ६८-गंग, ६९-ब्रह्म जटुनाथ, ७०-किशोर, ७१-निरोक्तम, ७२-शेष, ७३-मोहन, ७४-अहमद, ७५-कलानिधि, ७६-लालन, ७७-अपीत, ७८-जगदीश, ७९-मुकंद, ८०-हुसेन, ८१-जैदी, ८२-दास, ८३-नायक ८४-मुमारख, ८५-काजडास, ८६-गुनदेव, ८७-दुली, ८८-सिद्ध, ८९-जगनंद, ९०-नंदन, ९१-राव जसु, ९२-दुलहु, ९३-यिहारी, ९४-खल्वान, ९५-रवाम, ९६-बुज जीवन, ९७-कोर, ९८-दया देव, ९९-अमरेश, १००-निषट, १०१-ईश्वर, १०२-मनसुख, १०३-जायसी, १०४-रूपनारायनी, १०५-रूपानंद, १०६-मिश्र, १०७-शक्त, १०८-नाथ, १०९-जयदेव, ११०-हितखुनाथ, १११-रहीम, ११२-हरिज, ११३-भरिमी ११४-दशानिधि, ११५-धुरन्धर, ११६-सेवके, ११७-रसयागर, ११८-केशवटास, ११९-केशव पुत्र तधु, १२०-तत् वेता, १२१-सुन्दर, १२२-मतिगम, १२३-पतिराय, १२४-शीरभालि, १२५-संतन, १२६-अमृत, १२७-नंद किशोर, १२८-नीलवंठ, १२९-अकबर, १३०-ब्रजलाल, १३१-रवाल, १३२-शुद्धरिद, १३३-बुद्धराम, १३४-कान्द, १३५-प्रनश्यान, १३६-वनवारी, १३७-मान, १३८-देवनाथ, १३९-हरजन, १४०-रूपराव, १४१-सिम, १४२-यरत १४३-वीर, १४४-परमानंद, १४५-हरिनाथ, १४६-टोडर, १४७-निधि, १४८-गोविद तरल, १४९-नंददास, १५०-नरहर, १५१-किलन, १५२-भूधर, १५३-परमेश, १५४-गोपाल मुश्ती, १५५-नागरीदास, १५६-शोभं, १५७-सुर्कवि, १५८-देव, १५९-प्रहलाद, १६०-जसमंत, १६१-थरनीधर १६२-रसखान, १६३-रसपुंज, १६४-दयालाल, १६५-निदाल, १६६-उदयनाथ, १६७-सूर, १६८-दल्लभ, १६९-गंगाराम, १७०-चतुर्भुज, १७१-खाल, १७२-वीर १७३-मुरली, १७४-वान, १७५-रंगीले लाज, १७६-कुम्भन, १७७-हुन्द, १७८-कविनाथ, १७९-मीरन, १८०-कनक, १८१-मनिराय, १८२-मनसुख, १८३-शुकदेव, १८४-रसरास, १८५-मूरदास, १८६-नारायण, १८७-खूब चैंद,

पंजाब के कल्पित हिन्दी ग्रन्थ

आगरखन्द नाहरा, चीयानेर

हिन्दी भाषा दिल्ली के आसपास थी बोली थी। कमयः उसका प्रभाव आत्माक के बीच में भड़ा चला गया और बहुत मूरुदूर तक उसका प्रचार हो गया। पंजाब दिल्ली प्रदेश से पहला प्रदेश है, यहाँ पर हिन्दी भाषा चल विशेष प्रचार त्वाभाविक है। पंजाबी पर हिन्दी का निकट का सामन्य है, क्योंकि नूलतः प्रक है अद्वितीय दोनों या द्वितीय हुआ। दोनों भाषाएँ एक मात्रा की सम्मति है। पंजाब और सिंध पर मुख्लमानों का जवसे प्रभाव बहुत तरीके अन्तर्गत होता है शब्द अथवा बहुत ही लगते हैं। पंजाब में हिन्दी का साहित्य बहुत विशाल है। गंगे खाल से उस प्रदेशकी साहित्य पंजाबी के साहित्य से पंजाब में रचित हिन्दी-साहित्य का परिमाण अधिक होगा। बहुत सी रचनाएँ पंजाबी-हिन्दी मिश्रित हुई हैं। १७ वीं शताब्दी से निम्नतम् पंजाब में हिन्दी साहित्य का विनाश होता रहा है जो १८वीं १९ वीं शताब्दी में बहुत अधिक परिमाण में रचा गया। अभी तक पंजाब से रचित हिन्दी साहित्य का अन्वेषण बहुत ही कम हो पाया है। नागरीश्चारखी सभा ने सन् १९२२-२३ में पंजाब में हिन्दी ग्रन्थों का जो अनुसंधान करवाया था उसको रिपोर्ट सन् १९३१ में प्रकाशित हुई। उसमें केवल ११६ ग्रन्थों की रचनाओं का विवरण है। उनमें भी बहुत से कथि पंजाब के नहीं हैं। अर्थात् यह अनुसन्धान कायं बहुत ही साधारण रूप में हुआ है। इससे अधिक जानकारी तो दो-तीन वर्ष पूर्व ब्रजभास्ती में प्रकाशित एक नियन्त्रण में दी गई थी। पंजाब में हिन्दी के बहुत से ग्रन्थ गुरुत्वात् एवं उद्दू लिपि में लिखे भिलते हैं। उनमें से गुरुत्वात् लिपि में लिखे हुए 'सूरक्षापर' एवं उद्दू लिपि में लिखे 'पश्चात्वत' को इस्तलिखित प्रतियाँ हमारे दंग्रह में भी हैं। गुरुत्वात् हुआ है कि पंजाबी विभाग, परियाला का लाइब्रेरी में बहुत से इस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की भवियाँ हैं और उनका पोर्ट विभाग अभी तक पंजाबी विभाग में प्रकाशित नहीं किया है। सर्वथा है उस विभाग का गुरुत्व काव्य पंजाबी भाषा का समर्थन ही, अतः हिन्दी ग्रन्थों का विवरण प्रकाश में लाना चाहक समझा जाया है। पंजाबी, काशीयला के राजा हिन्दी के बहुत बड़े समर्थक रहे हैं, अतः राष्ट्रीय संघरालयों में भी हिन्दी का बहुत बहुत साहित्य मिलेगा। इपर कुछ वर्षों से पंजाब से जो इस्तलिखित प्रतियाँ मिले खरीदी हैं उनका इस लेख में परिचय दिया जा रहा है।

ग्रन्थ परिचय

१. दोन देश—रचनातः विवरण

यह एक विशिष्ट भूलकार प्रथा है। इसकी प्रति के ४६ पत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें भी कई (मध्य) पत्र नहीं हैं। प्रति प्राप्तिक-स्वरूप लिप्ती नज़र आती है, इससे अस्यायों की

बहुया या रथाम रित है। अंत्र यो पुष्पिकाओं में रचनिता के रूप में कपूरथला के महाराज़ कलोसिंह का नाम दिया गया है, यथा—

“दति श्रीमद्भाराजाधिराज श्री पतेसिंह भूमाल परिचिते कृष्ण रंजने अदोप निरुपन नाम
” ” ” ” संदेह निरुपणं नाम ।”

रचना के प्रारम्भ में अनेक ग्रन्थों को देखकर महाराजा कलोसिंह की आज्ञा से अनेक कवियों के उदाहरण सहित इस ग्रन्थ को काव्य रीतिमय रचने का कथि ने निर्देश किया है। यथा—

(आदि) दोहा—दरन कलुप रूप परुप रूप, गजगुल सुखद नरिंद ।

चरन कमल अरविंद रम, चट्ट कविंद मलिंद ॥ १ ॥

सदभंथनि लालि नृप हुकम, हाँरगुरु एव सिरताय ।

काव्य रीत कलुप प्रीत भी, दई भीत दरसाय ॥ २ ॥

चारु चारु चित चाद जौ, बहुत कविन के आन ।

उदाहरण यामें घरे, कलुक आपसे जान ॥ ३ ॥

फतेसिंह महिषाल भनि, मानस भंजु भराल ।

यहु कविता मानस सरस, भावादिक मुकुतालि ॥ ४ ॥

पद्मले लासन फवित्ता के, बहुर अयोजन जान ।

ता पीछे वरसत करौ, कारन भेद वसान ॥ ५ ॥

असा कि तीसरे दोहे में कथि ने कहा है, ऐसे अनेक कवियों के ग्रन्थों के उदाहरण समझाते हैं पर श्रियकला उदाहरण कथि के अपने भी यत्रत्व दिए गए हैं। सुनमता ते समझाने के लिये गद (जिसे 'धात' कहा गया है) ठोका भी ताथ-साथ ही ही है। यथा—
काव्यत्वस (त्र) न रस रहस्ये—‘जगते अद्भुत हुत्त तदन, शब्द बु अर्थ कवित्त’—

वार्ता—जो शब्द आ अर्थ आगते अद्भुत सुख के उद्भव बोय सो कवित्त है ।

जगते अद्भुत सुख कहा—जोओसर तमस्कार जामें होय तो काव्य ॥

फिर ‘काव्यप्रकाश’, ‘सादित्यदर्दण’, ‘तमाप्रकाश’, ‘श्रलंकारकलानिधि’, विशारी, ‘रत्नस्त्व’, ‘सुदर श्रगार’ से और अपने सचित उदाहरण दिए गए हैं। अपने उदाहरण देते समय प्रारम्भ में ‘कवियाम’ शब्द लिखा है व अन्यद भी कर्ता-कर्ता कवित्तों में यह नाम प्रयुक्त है। अतः यह या रचनिता श्रियाय के अन्त में महाराजा कलोसिंह को चतुराने पर भी बारती में ‘कवियराम’ लिख दीता है। ग्रन्थाभिता कवियों में केलवदातादि अनेक कवियों ने श्राव्यदशाओं की प्रकृतता के देवु ग्रन्थकार फैलाएं तुमके नाम दिये हैं। कही-कही तो कथि अपना नाम देते भी नहीं, किंवा लेते हैं। ऐसे ग्रन्थों के रचनिताओं का पता लगाने में बड़ी मुश्किल होती है। कई राजा तथा काव्य भी हुए हैं और उन्होंने ग्रन्थ बनाये हैं पर वे सब उनके द्वारा रचित हैं या आन्तिक अवियों के यह कहना प्रतिम है। ऐसे उदाहरणों के कारण तंदेह दीना समाप्तिकरण है।

ग्राम २८, पत्रों में प्रसि पृष्ठ पन्नियों १८ के २१ तक है व प्रति पंक्ति वर्ष ४० से ८० तक है। तद्भुत्तार ग्रन्थ पारमाण ४७५, इकार इलोचों के ऊरीब का शत शोता है, पिर भी ग्रन्थ अपूर्ण है। पता नहीं पित्तने पत्र और थे। इसके ग्रन्थ के बहुदाकार व महत्वपूर्ण होने का पाठक सक्षम अनुभान लगा सकते हैं।

राम कथि यन्त्रित अन्य ग्रन्थ

जापरी धन्यारिणी सभा के तत्वावादान में हिन्दी के इस्लामित ग्रन्थों का खोज का कार्य ५३ वर्षों से चल रहा है। उसके अन्तर्गत राम १९२२ में पंजाब में खोज हुई थी जिसकी रिपोर्ट उन् १९३१ में सभा द्वारा प्रकाशित हुई थी। उसके पृष्ठ ८८ (न० ८८) में रमेश्वर का उल्लेख करते हुए उनके द्वारा रचित कुलपति मिशन कृत 'रस-रहस्य' की पद्यबद्ध टीका का निर्देश किया गया है। इस टीका का नाम 'फतेसिंह प्रकाश' बतलाया गया है। रिपोर्ट के संपादक ने कवि के आश्रयदाता महाराज फतेसिंह को गरतपुर का होना संभव बतलाया है, पर वह ऐसी नहीं प्रतीक्षा होता। डॉ बगारसदास जैन से पूछने पर पता लगा कि ये कपूरथला के राजा थे। 'फतेसिंह प्रकाश' का उल्लेख करते हुए रिपोर्टर ने उसके रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया। २२ भुजे मास सामायी के अनुसार उन्होंने समय १९ की के उत्तरार्द्ध तक का ज्ञात होता है। आगे 'फतेसिंह प्रताप प्रभाकर' का परिचय देते हुए उनके वंश का संक्षिप्त परिचय बताया जायगा। ये तुलसीबरा के गुण्डा भगवन् थे।

२. भागसिंह चन्द्रोदय

इस ग्रन्थ के भी प्रारंभिक कुछ पत्र व कई प्रथ्येत्र, खण्ड रूप में ही प्रिले हैं। उसमें ग्रन्थकारादि के सम्बन्ध में कुछ भी पता नहीं चलता। इसमें पत्र के बाद गद्य वाची में विस्तृत विवेचन है। विशेष विवरण तो पूर्ण प्रति प्राप्त होने पर ही दिया जा सकता है। यदौं संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। “अथ श्री भागसिंह चन्द्रोदय लिख्यते” लिखकर मंगलाचरण स्वैया दिया गया है। कवि कृष्ण भक्तप्रतीत होता है। संभव है आश्रयदाता राजा के कृष्णभक्त होने के कारण प्रारंभ में श्री कृष्णचंद्र को नामकार किया गया था। ग्रन्थकार वेद, वेदान्तादि का विद्वान ज्ञात होता है। मंगलाचरण सम्बन्धी कई प्रश्न उठाकर गद्य में ही उनका उत्तर दिया गया है। चौथे पत्र में सिद्धों के दस गुरुओं सम्बन्धी व्यवित्र और उसकी वाची है। ५. वे पत्र में भागसिंह नृपति सम्बन्धी दो पद्य हैं—

नाय नाम रति साथ, गाथ पाथ निध गग तरणि ।

सुनत गाथ जगनाथ, भागसिंह नरनाथ नित ।

सुन सुन मुनि सम गुनि गुखन, सगुन चरित्र पवित्र ।

गुन गुन अविगत गत अमित, धारत नृपत चिचिन्न ।

वाची—

प्रथम इसतरी नाम को नमस्कार करके प्रेम के सहत फेर पाशनिध क्या, समुद्र के समान जो है जगत, ताकी तरन क्या—वेदों सम जो भगवान की कथा ताकी सुनते हैं। श्री भागसिंह महाराज जी।

फेर हुनीयाँ के समान जे है गुनीजन, तिनाँ के मुख ते सुन तुमके सगुन ग्रन्थ के जो पवित्र चरित्र है तिनाँ के। फेर अक्षिगत क्या—ना जानी जावे ऐसा अप्रमान भगवान की पत, तिसकी विचार-विचार के भूम भागसिंह जी विचित्र क्या, अद्भुत जो भगवान की आग लोला है। विचार जानने मे—।

३. फतेसिंह प्रताप प्रभाकर

प्रस्तुत अन्य महाराजा फतेसिंह के इतिहास से सम्बन्धित हैं। इससे प्रतीत होता है कि आपके पिता महाराजा भागसिंहजी के संत्री तवारीखा बुलंद हक्कबालसिंहजी ने महाराजा थी आशानुसार 'जस्तासिंहजी व भागसिंहजी की तवारीख' कवियों से बनवाई थी। उसके पेश होने पर फतेसिंहजी ने अपनी तवारीख भी लिखने का कवीश्वर को आदेश दिया। तदनुसार इस प्रन्थ की रचना हुई है। कवि के नाम का पता नहीं चला सका। ग्रन्थ के जो आग्रिमिक गुल खरहा प्रति के पत्र गुफे प्रक्ष पृष्ठ है उनमें जिस पत्र में ग्रन्थ का प्रारम्भ है उसकी पठन-संख्या १२ दो हुई है। अतः पृष्ठवर्ती १२ पत्रों में ग्रन्थ का प्रारम्भिक मंगलाचरणाद पा अध्याय होना चाहिये। १२ वें पत्र में 'अथ श्री फतेसिंह प्रताप प्रभाकर ग्रन्थ की उत्पत्ति का कारन लिख्यते' लिखा है। पत्रांक १५ के अंत में इस प्रकारण को द्वितीय 'ऐवत' वर्तनाया है। ग्रन्थ के पश्च हिन्दी में हैं उसकी टीका-वार्ता पंजाबी मिथित हिन्दी में विस्तार से है। आगे के पत्रों में भागसिंह का विवरण देते हुए राजकुमार फतेसिंह के विवाह, राज्य-प्राप्ति व संतानि तक का बर्णन है। पत्रांक ५३ में भी ग्रन्थ अधूरा रह जाता है, शीत्य के भी कई पत्र नहीं हैं पर तवारीख की शैली से वह काफ़ी बढ़ा ग्रन्थ होना चाहिये। पत्रांक ३६ में शिकार आदि वाली दो वर्तनाएँ का वर्तन १८४-१८५-१८६ हासिये में दिया है। ग्रन्थ-उत्पत्ति प्रकारण से प्रस्तुत ग्रन्थ में १८८ वार्ता रखना प्रस्तुत हुआ भिन्न होता है। पाठ्यों की जानकारी के लिये अत्यधिक उद्देश्य नीचे दिये जाते हैं—

"(अदि) दोषण—

कंचन भंच मनि सदन मन, मोहत स्यामा स्याम ।

उरमनि भनु मन परसपर, नेह रंगे मन धाम । १ ।

ग्रन्थ उत्पत्ति आरजा—एक रोज रात्रि अटार से नवै, महिने भादो दे, बुलंद हक्कबाल लिंह बालव थी फतेसिंह महाराज बुलंद राज राज राज दी खुशी देनाल रोज तिहसन पर श्री विश्वराज दे चरण चतुर्लां दा एयान भरकै, समा दे दरम्यान विराजमान होय है तज दिवान दे दरम्यान बुलंद प्रकाश होया। अरु बुलंद सुजान जो है न दिवान वा ने कच्छरों दे लोक सो राजाभिराज पहाराज जो दे हुक्म नूपाय भरकै आवन लागै। तिस बखत वही खुशी दे साथ लिए लक्ष्मी श्री फतेसिंह महाराजामध्येशज जो होयां नू सभा दे दरम्यान विराजमान देखके संपूर्ण मुकाद्वां ने ते कवीसरां ने अरु से अच्छे-अच्छे नुद्वानां ने मिलकर हजूर दे विच एह अरज कोटी जो महाराजजी आपदे बुलंद प्रताप दीथा अरु बुलंद बहाटुरी दीआं अरु बुलंद जसबीन्नां दे दान दीथा वडोआं आपार हक्कीकतों हैं न। तिनाँदी तवारीख घनाऊनी सुनाँ सब है। जो हजूर दा हुक्म दीवे तो तवारीख नहै। तब मिह ताहत्र पहाराज जी हुशने एह फरमाया जो असांड वही जो है न बुलंद प्रताप वाले जिनाँदा जस सारे जहान दे दरम्यान मरहूर है। अरु समुद्र दी भासिद जो सो अवाह, अनेक बादशाही फौजाँ दे दल तिनाँ दे सोखन करने ने अग्रस्त मुनीश्वर दे रमन, जिनाँ दे शस्त्र दा प्रहार जशान दे दरम्यान कवीश्वराँ ने गान किया है ऐसे जो हीये हैं न, राजाभिराजसिंह बालव थी जस्तसिंह जी होरीते श्री भागसिंहजी होरीते तिनाँदी तवारीख प्रथम बगवाऊनी जोगे हैं सो यनाय फरके फेर असाडी तवारीख दे बनवाऊन दीजे। जे कर तुमाणे दिल विच गढ़ी खुशी ते दडा ऊमाहा हैं। × × ×

केर गिरेक चिरकाल विये पवीश्वरी ने युद्ध इकशलखिह साद्य श्री जससिंह जी से श्री भगविंहजी होमेंटी सत्यारोध लाल कर्त्ता राजे के दरमान ल्याय के दिलाइथ्रो । तब बहु मन गये अनाम पाये । तिय पवान अनाम लाले दे चनापन दा दलू दा दुक्म होया । लिखु फते पवीश्वरी ते ।

दोहा

सीसफुसम अवतंस सम, ऊर में हार समान ।
फलेतिह महाराज को, कीनो हुक्म प्रमान ॥

इति भीमत् तुलसी कुल मंडन श्रस्तिल दल स्वदन मही मदलालंडला लंड लला शोभिद याल यिथा विगाम् धर्मान्वार श्री गगा गगामाय एवं गंगा गङ्गाद श्री फलेसिंह गृणाल छारित श्री फलेसिंह प्रदाप प्रभाकरे ग्रन्थ उत्तरति कारण निल्वरण नाम द्वितीय रैवत ।”

आगे एक पत्र में नदाराजा फलेसिंहजी के निहालसिंह य अमरसिंह का और निहालसिंह के रणधीरसिंह को फलेसिंहजी के गोद में लिलाने का उल्लेख है ; पथा—

श्री निहालसिंह तेज निय, अमरसिंह बलधाम ।
भूप शुश्र पादप मनो, प्रगटे कल अभिराम ।
श्री निहालसिंह ए सदन प्रगटे गुत अभराम ।
नागधर्यो रणधीरसिंह, सुभर त्वाम सुखधाम ।

इस तरह उपर्युक्त ग्रन्थ कपूरथला के शास्त्राल के लिए बहुत उद्योगी है । वहाँ की राजधीय लालूरी में यै ग्रन्थ पूर्ण निर्लिपि, साय दा इन्द्रा के अन्य अशात महत्वपूर्ण ग्रन्थ गो मिल सकते हैं । लोज दोनों चांदए ।

४. राजिता-संघर्ष—किसीर कांध

उपर्युक्त रभी प्रतिथाँ पश्चाकार है श्रीर किसीर राजिता संग्रह पुस्तकाकार है । इसमें ग्रन्थान्वयः कपूरथला के राजधंश के भाई राजाश्री गंगानानि राजधीय समिया आदि है । इसमें राजिता इय राजधंश के शास्त्रिन न दोषीनीयो होना गिर दोना है । शास्त्रियों शास्त्रिना तुट्कर और विभिन्न ग्रन्थों पर सचित है पर कुछ—खद्यासिंह विवाद यर्थन् (१० ४०) आदि—वही रचनायें भी हैं । वेगे तो इसमें फलेसिंह ने लेचर जगवीतगिंह तक से संवित्यत पथ है पर उट्टगिंह के आंदेक हैं । फर्दे त्वामों में घटनाश्री के संकेत गो दिए हैं । राजाश्री के अतिरिक्त भगुन्दाय, रामनर श्रादि दीयानों से रामनियत पथ भी हैं । उनमें से राजधंश की वंशावली से गावान्धित एक रथ यहाँ दिया जा रहा है—

जाहर जगत वीच जससासिंह पातसाह, कीना फते नीकी नजर लोनी काशीराज जू ।
गागसिंह वधे भाग पूरन चराग भय, श्री फलेसिंह हुओ जग फते नाम जू ।
जग के जहाज भूप श्री निहालसिंह महाराज, भूप रणधीरसिंह धीर रण काज जू ।
श्री सहकसिंह नंद नृप जगत्रीतसिंह...की गादी को अटारी फरे राम जू । १ ।

रथर के अतिरिक्त पथों में भगविंह, रणधीरसिंह, विकालिंद, प्रतापसिंहशादि का भी नाम लिलगा है । पता नहीं ये चौन-झीन थे ?

दिनांकतात्त्वी प्रक्रियों से ग्रन्थशास्त्र 'रंजोलर्लिंग' ग्रन्थ के परिशिष्ट ने 'फलेनामा' नामक ऐतिहासिक इन्द्रा ग्रन्थ के अध्यकाशित होने का उल्लेख है। पंजाब के राजदरबारों में हिन्दी की अच्छी प्रसिद्धि थी। अनेक सुस्थिर राजाभित ने अतः बहुत बहा साहित्य रचा गया होगा।

५. आपूर्ण अलंकार (रीति) ग्रन्थ

प्राप्त आपूर्ण प्रतियों में अलंकार सम्बन्धी दो-तीन ग्रन्थों के कुछ पत्र हैं, पूरी प्रति न मिलने से उनका परिचय यहाँ नहीं दिया जा रहा है। एक सटीक ग्रन्थ के (पद्म १४ से ४८ सदीप) ३८ के ४६ तक के पद्म हैं। उनमें प्रस्त्येक पद्म में महाराज नरेन्द्रसिंह की प्रशंसा की गई है। खोज रिपोर्ट देखने से ये नरेन्द्रसिंह पटियाला के महाराजा प्रतीत होते हैं (जिनका तात्पर्य १६०२ से १६१८ तक बतलाया गया है। रिपोर्ट में ईश्वर कवि के 'नरेन्द्र भूषण' ग्रन्थ का रचना-तात्पर्य कं० १६१३ दिया गया है। 'नरेन्द्रभूषण' से मिलाये चिना ठीक नहीं बहा जा सकता कि नुझे प्रातः ग्रन्थ वही है था उससे भिन्न। रिपोर्ट के पृ० २६ (कवि न० १५) में और कवि के एक ग्रन्थ के (महाराजा नरेन्द्रसिंह के आश्रय में) कं० १६१७ में रचे जाने का उल्लेख है पर उस ग्रन्थ का नाम नहीं दिया गया। नुझे प्राप्त प्रति में से एक पद्म उदाहरणार्थ नीचे दिया जाता है—

लूपशालंकार के आदुमेद हैं सर्व को उदाहरण कविता—

संपति भलला अवायेरसत द्वानामार, दसत लडत भूप लासत पयोद वर।
तपत प्रताप रंव राजोत मुक्तावि कंज, कुसाति चिलोास खल लुकत ऊलूक डर।
भूप वंश दीप मुव भूषण भुवन भाग, हरि जससर हंस जगन भर विहर।
रस वरसत थ्री नरेन्द्रसिंह भूप इंद्र, वाहनी सवार यस फल सुर तरु घर।

वार्ता—

महाराज थ्री नरेन्द्रसिंह राजायर ब्रेष्ट पयोद मेव है, संपति रूप जल तासी अलपूरन है, दान रूप धान और वस्त्रावत है। मधुर मुसकान सौई तड़त फो जुरी है ता करके सौभायवान है। इदों उपमान उपमेय की एकता सो रूपक है। राजा मेव के सर्व अग आरोप किये याते सविपद वावश्व रुपक है इस्यादि।

उपर्युक्त ग्रन्थों की प्रातः प्रतियों मेंते खरीद कर भी मोतीचंद जी खजांची के संप्रदालन में दिलवा दी थी। इसके पश्चात् पंजाब से और भी जहुत से हिन्दी ग्रन्थ विकल्प आये जो हमारे अभय जैन ग्रन्थालय में सुरक्षित हैं। जिनमें से 'सूरसामार' (गुरुमुखी लिपि में लिखित) 'पद्मावत' (उद्दृ लिपि में लिखित) 'तुलसी रामायणादि' अनेक प्रसिद्ध ग्रन्थों के अतिरिक्त अज्ञात ग्रन्थ भी अनेक हैं। उनमें कुछ अज्ञात हिन्दी ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है—

पंजाब से प्राप्त कविपद्म अज्ञात हिन्दी ग्रन्थ

१. निषालसिंह प्राप्तोदेन्द्र चन्द्रिका

इस ग्रन्थ के पत्रांक ४८ से ७६ तक के मध्य पत्र ही प्राप्त हुए हैं। इसलिये आदि अन्त के अभाव में ग्रन्थ के रचना-काल और कवि आदि का परिचय विस्तार से देना संभव नहीं।

इस प्रन्थ के प्रात पत्रों में प्रन्थ चिपाठ शेली में लिखा है। थीव में मूल पथ है तथा ऊर और नीचे उनकी भाषा-टीका है। प्रात ४१वें पत्र में प्रन्थ का पंचम प्रकाश प्रारम्भ होता है जिनके नूल पद्य ४२ है। पत्रांक ५३ में इस प्रकाश की टीका के साथ समाप्ति होती है। समाप्ति में लिखा गया है, 'इति श्रोपन नाहाराजापिपास ओ निहालसिंह गूपाल आशास कवि हार नाम शुत निहालसिंह प्रमोदेन्दु चन्द्रका याम (नाम) सादित्य वोध कथन द्वितीय चामे सविभावादि रस निरुद्धण पंचम प्रकाशः।' पत्रांक ५६ में छठा प्रकाश 'उत्तम काव्य भेद निरुपण' नामक समाप्त होता है। पत्रांक ५७ में 'मध्यम काव्य भेद निरुपण' नाम का सातवां प्रकाश, पत्रांक ७० में 'दूषण निरुपण' नामक १४ वीं अन्धाय एवं पत्रांक ७१ में 'गुणनिरुपण' नाम का १५वां अन्धाय समाप्त होता है। १६वें अन्धाय फा १५ वाँ पद्य पत्रांक ७६ में श्वपूर्ण रद्द जाता है।

उपर्युक्त विवरण के अनुसार इस प्रन्थ की रचना निहालसिंह महाराजा के आधिक पद्य दरिगाएँ ने की थी और वह एक सादित्य-साथ पा प्रन्थ है। स्पृष्ट ही निहालसिंह दपूर-थला के महाराजा फतेसिंह के पुत्र प्रतीत होते हैं। अतः इस प्रन्थ का निर्माण सं० १६०० के आस-पास का होना सामग्री है। दपूर-थला के दंगदारय आदि में इसकी पूर्ण प्रति भी प्राप्त होती है, अतः इस सन्धन्य में पंजाब के विद्वान विशेष प्रदाता ढाल सकते हैं।

२. फतेसिंह सुपाश वर्णन

इस प्रन्थ के पत्रांक ३ से ११ तक के मध्य पत्र ही मुख्य प्राप्त हैं, अतः प्रन्थ नाम, काव्य नाम, रचना काल आदि की जानकारी प्राप्त नहीं हो सकती। इसमें मूल पाठ के साथ-साथ टीका भी ठीक हुई है। पत्रांक ७१ से फरीव ४०० तक के पद्य विवेचन के साथ प्राप्त पत्रों में मिलते हैं। पत्रांक २६४ के बाद पत्रांक नहीं दिया गया, उसके लिये स्थान रिक्त है। प्रन्थ में दपूर-थला के महाराजा फतेसिंह के प्रताप का अनेक उपमायों के साथ विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

पूर्व प्राप्त 'कर्त्तविध प्रताप ग्रनाथर' से तो यह भिन्न ही है पर प्रन्थ के नाम, रचना-काल और रचयिता का निर्णय पूरी प्रति प्राप्त हीने पर हो सकता है।

३. रामगांडे—काव्य राम रचित

इस प्रन्थ के पत्रांक ४ से २६ तक के मध्य पत्र प्राप्त हैं। यह एक नाटक अन्थ है जिसके 'रीतान्त्रिकाह' नामक प्रथम अंक के ११५ पद्यों में से प्रारंभिक ३१ पद्य (३ पत्र नहीं मिलते) अप्राप्त है। दूसरा 'रामचंद्र वियोग' नामक अंक ८८ पद्यों का है। तीसरा 'शन को श्राङ्गंगी' नामक अंक १०६ पद्यों का है। चौथा 'जानकी दूरण' अंक के केवल १२ पद्य है। और पांचवें अंक का आठवाँ पद्य तक प्राप्त हुआ है। चौथे अंक के अंतिम पद्य में 'पविराम चित्तो चहो राथन छे' शब्द अविद्य है, इससे इस नाटक का रचयिता कवि राम प्रतीत होता है।

४. अनुराग रस—स्थानी नारायण गुरा

आदि—धनि वृन्दावन धाम है, धनि वृन्दावन नाम ।
अंते युग्मदेवन रथिक जन, धनि श्री राधा रथाम ॥१॥

अत—मुण मंदिर सुन्दर जुगल, मंगल मोह निधान ।
नारायण निज चरण रति, यह दोजे वरदान ॥२॥

प्रति का प्रथम पत्र प्राप्त न होने से प्रारम्भ के चार पद्म अव्याप्त हैं ।

५. यक्षणी पद्मति

इस ग्रन्थ के पत्रोंक ५, २ और ११, १२, में चार पद्म ही भाष्ट हुए हैं । इसमें यक्षणी को गृजा पद्म विधान है । १२वें पत्र में रथ्यां पद्म अधूरा रह जाता है । पता नहीं इस ग्रन्थ के और कितने पत्र और कुल चित्तने पद्म थे । प्रारम्भ के तीनों पद्मों को यहाँ दे रखा है—

आदि—कण्ठी मतेक रंकणी, सर्व देव विस्तार ।
पटमिश्रत है यक्षणी, आराधे सिथ सार ॥१॥
के आराधन तासका, निश्चय नाम जु तास ।
भय से रहित जो देत फल, तंत्र सिद्ध यह भास ॥२॥
भवनि भास अरु उत्तिका, ली रूपा जान ।
जैसी इच्छा ध्यान कर, सोई होवत मान ॥३॥

६. द्वोषदी चरित्र, दधि लीजा आदि

इसकी प्रति भी गुटकाकार लिखी हुई है । प्रथम पत्र प्राप्त नहीं है और प्रारम्भ के पत्र आपकु में चिपक जाने के फारण कई पद्म नहीं हो गए हैं । पत्रोंक ३ में नन्ददास कृत प्रेम पत्नीसी, पत्रोंक ६वें एक छोटा गंथ सम्भाल दीकर (जिसका नाम पढ़ा नहीं जाता) द्वारा किए 'द्वोषदी चरित्र' भासा होता है । यह ६७५ पद्मों का है और इसका रचयिता रामकाम है । तत्त्वतर रामकाम द्वारा रचित 'दीर्घि लाला' रहे पद्मों में है । सं० १६२४ कामरु में किरोजपुर में यह गुटका लिखा गया है ।

७. वाहू कथांग पार मोक्षन

यह ग्रन्थ सास पत्रों की एक गुरुवार्याम प्रति में लिखा भिला है । पत्रोंक ३७ वां लिखते हुये छोड़ दिया गया है अतः ग्रन्थ अपूर्ण रह गया है । इसमें हनुमान जो को सुनि है ।

८. अद्यानन्द आदि—वेदान्त मन्त्र भाषाटीका

इसकी गुलफालकार अपूर्ण मति भिली है । यह किसी वेदान्त ग्रन्थ की भाषा-टीका के रूप में प्रतीक होता है । इसमें ब्रह्मानन्द, योगानन्द, आरम्भनन्द आदि शब्द अप्याय हैं । एक पद्म का श्रद्ध उदाहरण स्पर्श यहाँ दिया जाता है 'भ्रह्मानन्द, वासनानन्द, प्रतिद्विम आनन्द जगत विषे तीन भाँति का आनन्द है । ताँते विष्वानन्द उस वासनानन्द को उपजावता है । व्रह्मानन्द यी जानने योग्य है ।'

६. फ्रेंच संग्रह

यह पुस्तकाकार अनेक कवियों के कुटुंब एवं कवियों के कुटुंब द्वारा का संग्रह है। दो सौ से भी अधिक कवियों के पदों का यह संग्रह बहुत ही महत्वपूर्ण है। इसके द्वारा प्रसिद्ध कवियों के कुछ अप्राप्य पद्यालयों के साथ-साथ अनेक अज्ञात कवियों को पता चलता है। कुल पदों की संख्या एक हजार के लाखभग है। अन्त में पीछे से भागूरथला के शज्जयश के वर्णन के, योद्धे वर्षों से पढ़ले हों रचित व लेखित पद भी सम्मिलित अर्दिये गये हैं। इस संग्रह के कवियों की नामबंदी नीचे दी जा रही है। सम्भव है, इनमें से कई कवि पंजाब के हों। प्रस्तुत का एक पद बाल कहा है और पीछे के कुछ पद भी बाल हैं।

कवि नाम संख्या

- १—प्रधानराय धागुर, २—दरिताम, ३—ब्रजचन्द्र, ४—लेनापति, ५—मंडन,
- ६—आलोम, ७—रोम कवि, ८—पर्येत, ९—लाल, १०—चन्दन, ११—चन्दलाल, १२—चंद, १३—पहोकवि (?), १४—पहोराज, १५—इशा, १६—मधुसूदन, १७—देनी, १८—तुलसी, १९—तुलसीदास, २०—मोतीराम, २१—नन्दलाल, २२—भगवान, २३—भगवंत, २४—भीम्बम, २५—लोषि, २६—तेगवाण, २७—भनोभव, २८—भनोहर, २९—दामोदर, २०—शरिराम, २१—राजाराम, २२—राम, २३—दुतिराम, २४—उंधीराम, २५—उंधी, २६—रुनाथ, २७—गोदनाथ, २८—गाय, २९—गाल, ३०—अग्निहत, ३१—ताज, ३२—जीवन, ३३—प्रसिद्ध (?), ३४—मलूक, ३५—छीम, ३६—अनंत, ३७—अर्जुन, ३८—मेष, ३९—शिरोमनि, ३०—निवाज, ३१—दरिकेरा, ३२—बलांद्र, ३३—चिन्तामणि, ३४—जगजीवन, ३५—शचि शेषर, ३६—गदसूदन, ३७—एरान, ३८—दत्त, ३९—ठाकुर, ४०—लोलाधर, ४१—सुजान, ४२—सोमनाथ, ४३—शशिनाथ, ४४—सखी सुख, ४५—भूषण, ४६—ऐदिल, ४७—श्रीकर, ४८—गग, ४९—त्रिलोकनाथ, ५०—किशोर, ५१—निरोत्तम, ५२—शेष, ५३—मोहन, ५४—अदमद, ५५—युलानिधि, ५६—लालन, ५७—श्रीषति, ५८—जगदीश, ५९—मुकंद, ६०—हुसेन, ६१—जीर्णी, ६२—दास, ६३—नायक, ६४—मुसाराख, ६५—पालदास, ६६—गुणदेव, ६७—दुर्लभी, ६८—सिंह, ६९—जगनंद, ६०—नंदन, ६१—राय जमु, ६२—हुलकु, ६३—विहारी, ६४—फल्यान, ६५—श्याम, ६६—बृज जीवन, ६७—फीर, ६८—दया देव, ६९—अमरेश, ७०—दिवट, ७१—ईश्वर, ७२—मनसुध, ७३—जाधवी, ७४—खमनारायनी, ७५—रूपनन्द, ७६—सिङ्ग, ७७—शकल, ७८—गाथ, ७९—जशदेव, ८०—हितरघुनाथ, ८१—रहीम, ८२—दारेजु, ८३—भरिमो, ८४—दयानिधि, ८५—भुरमधर, ८६—सेवके, ८७—रससागर, ८८—केशवदास, ८९—बेशव एवं तथु, ९०—तत्त्वेता, ९१—सुन्दर, ९२—मतिराम, ९३—पलिराय, ९४—होराशालि, ९५—रातन (?), ९६—श्रमृत, ९७—नंद किशोर, ९८—नौलकट, ९९—अकबर, १००—द्रगलाल, १०१—बवाल, १०२—बुद्ध-सिंह, १०३—झुंझराम, १०४—कान्द, १०५—धगशमाम, १०६—चनवारी, १०७—मान, १०८—पैवनाम, १०९—हरजन, ११०—लपराय, १११—सिम, ११२—तूरत, ११३—योर, ११४—पामानन्द, ११५—दरिनाथ, ११६—रोडर, ११७—तिथि, ११८—गोविद खरा, ११९—नन्ददास, १२०—नरहर, १२१—दिसन, १२२—भूषर, १२३—परमेश, १२४—गोपाल चुन्ही, १२५—नामरोदास, १२६—शोभ, १२७—सुकबि, १२८—देव,

१७४—प्रतिवाद, १७५—जगदंत, १७६—धरनीधर, १७७—सखान, १७८—रसुंज, १७९—दयालाल, १८०—मिशाल, १८१—उदयनाथ, १८२—सूर, १८३—बलभ, १८४—मनोराम, १८५—चमुर्भेज, १८६—जाल, १८७—शीर, १८८—मुरली, १८९—यान, १९०—सोले लाल, १९१—कुन्दन, १९२—कुम्द, १९३—कथिनाथ, १९४—मीरन, १९५—फलक, १९६—मनिराय, १९७—मनसुल, १९८—शुक्रदेव, १९९—सखाउ, २००—सखास, २०१—नारायण, २०२—छूत चैट, २०३—गुलाब, २०४—खुशाल, २०५—शिथनाय, २०६—कवीर, २०७—वाल, २०८—लतित, २०९—जलाल, २०१—लाल, २०२—देवाल, २०३—सरसला, २०४—नेह तरंग, २०५—देवोदास, २०६—मिष्टान, २०७—शयनी, २०८—गोविन्द, २०९—गोविंदलाल, २०१—गुज विद्वानि, २०२—वलानान, २०३—कृष्णगाम, २०४—गुपाल | २०५—कुद्राम |

इनमें के बहुत से अशात हिन्दी कवि प्रथम दार ही हमारे सामने में आते हैं। ऐसी कविता-संग्रह की प्रतियो अनूर खंडुत लायदेही में भी है जिनमें कुछ प्राचीन भी हैं। उनसे भी अनेक अशात हिन्दी कवियों का पता चलता है। अन्वेषण कार्य होना आवश्यक है। अपी इनारों अशात कवि और उनकी जननाएँ अंधकार में पड़ी हैं, उनका परिचय प्राचीनत तुष बिना हिन्दी साहित्य का इतिहास अपूर्ण ही रहेगा। जैन गण्डारों, राजकीय भाषाओं पर्याप्ती के विवरण अन्य-संग्रहालयों जी सामग्री अभी तक बहुत ही कम प्राप्त हो रही है। इस और शीघ्र व्याज दिया जाय। प्रत्येक हिन्दी हितेष्वी व्यक्ति और संस्था इस परमायश्यक कार्य में पूरी शक्ति से सुट जायें, यही निवेदन है।



पंजाबी विभाग पटियाला।

प्रथम वर्ष

अगस्त, १९५४

अंक ७

श्री अगरचन्द नाहरा

पंजाब में रचित हिन्दी जैन वैद्यक ग्रन्थ

जैन धर्मे निरुत्ति-प्रधान है। जैन साधुओं को योग तुष्टयः आवार्णाद इन कहाँ का कृत्य करने के रूप स्व-कृत्याणि ही है। परफल्यान गोप्य है। जैन साधुओं के लिये धैवत, ज्योतिप मंत्र-तंत्र आदि का प्रयोग इसी लिए निपिद्ध है कि इसके द्वारा उनका जीवन बहिमूर्खी बनता है। ज्योतिप विद्या को जानकारी के हाथ में अपनाया गया था—मूलागमों में उसों अनेक कृद पाए जाते हैं। ज्योतिप तंत्रों के लिए भी कुछ सवतंत्र ग्रन्थ द्वारे गये हैं। मंत्र और तंत्र का प्रयोग इसके पाठ द्वारा। गव वेग मूर्नियों का आनन्द शिखिलना भी यांत्र गुरुने लगा था।

वैद्यक की ओर उनका सुकाय बहुत पाछे हुआ रखांक रूपमें धौपरिदी के निमोण आदि में बहुत समय देना आवश्यक था ही औः वहुन यो ऐसा नहीं, जिनका स्वयं भी साधुओं के लिये निपिद्ध है, काम में लाइ जाता है। और यो अवकूप ऐसो आपात्यां है जिसके साथ-आचार का विश्रित पालन करते हुए यम्यक-प्रकार रो चिकित्सा करना संभव नहीं। इस लिये जैन मूर्नियों ने वैद्यक विद्या का बहुत ही अप उपयोग किया है फलतः प्राकृत भाषा का वेदल एक ही वैद्यक ग्रन्थ मिलता है।

गोलहर्वी शताब्दी में जैन मूर्नियों द्वारा आचार में फिर एक धर गहरो शिखिलना आई। इस समय श्रावकों की आवश्यकता पूर्ति के लिये उन्होंने चिकित्सा के प्रयोग भी आयंग किये। उत्तरहर्वी शताब्दी में शिखिल-आचार का पूनः संशोधन किया गया पर वह अधिक दिनों तक स्थाया न रह सका। इस समय कुछ मूर्नियों ने शुद्धानाम का आवश्यं उपरित्त किया तो कुछ न्यक्त श्रावनों शिखिलाचारी परपरा को ही निभाने रहे। वे लोग 'महात्मा' या 'मतो' कहलाने लगे। अर्द्याहर्वी शताब्दी में साथ-आचार में फिर शिखिलना आई, तबने जैन वनि लोग नियमित रूप में ज्योतिप मंत्र-तंत्र के साथ चिकित्सा कार्ये भी करने लगे जो कई चरणों में अच तक चालू रहे। या अन्य के

वीच अनेकों जैन धर्मि ने यह सामूहिक हुए, जिनको परंपरा में आज भी यत्र-तत्र कई नामों
देखा है।

पंजाब में जैन धर्म का प्रचार तो बहुत प्राचीन समय से रहा है। नगरकोट-कांगड़ा-तां जैन
धर्म का तीर्थ स्थल-सा रहा है। यहाँ के कई राजा भी जैन थे। इधर सिध प्रात तो जैन धर्म का
अच्छा प्रचार-केन्द्र था ही इस प्रात के पर्वतों स्थानों में जैन आवक निवास करते थे और उनके
उपदेशक के रूप में जैन धर्मि वहाँ निःत्र आवंजाने रहते थे। पीछे से तो कई लोगों में वे निश्च
स्प तो भी रह गये। सतरहश्ची शताब्दी में तो सिव श्रावण-पञ्चम में अनेक प्रन्थ हिन्दी भाषा में पञ्चवल रहे
हैं। अट्टाहन्दी शताब्दी में तो सिव श्रावण-पञ्चम में अनेक प्रन्थ हिन्दी भाषा में पञ्चवल रहे
गये। १६ वीं शताब्दी में भी यह प्रभाव जारी रहा। ऐसे लोगों ने यजाय श्रावण-गिरि में जैन आवक
एवं यतियों के रान्चित हिन्दी वैद्यक प्रन्थों का परिचय करवाया जा रहा है। इसमें से कहीं प्रन्थ बहुत
ही महत्वपूर्ण है—‘मंथविनोद’, ‘कथिविनोद’, ‘रायविनोद’ आदि आदि परेस प्रन्थ हैं। इन प्रन्थों में
प्राचीन वैद्यक प्रन्थों का गार व्रताया गया है। याथ ही इनके निम्नोत्तरायों ने अपने अनुसूत प्रवेश
भी बहुत से इन प्रन्थों में दिये हैं जिनके इनकी उपयोगता और भी बढ़ गई है। ‘मंथविनोद’ का
तो पंजाब के बैद्यों में बड़ा आदर है। पहले यह गुजराती लिंग में छपा था फिर इसका हिन्दी
रूपांतर भी छपा है। ‘कथिविनोद’ अग्री प्रभासित तरीं हुआ पर है बड़ा महत्वपूर्ण। उसका स्वतंत्र
परिचय फिर कभी दिया जायगा।

पंजाब में रचित हिन्दी जैन वैद्यक ग्रन्थ परिचय

१. नवन सुन्दर-रचित ‘वैद्यमनोत्सव’। नवनसुख कैसवरेज के पुत्र थे और उन्होंने स०
१६५१ वि० की चेत्र शुक्ला द्वितीय, अक्षय के रात्रि, गो सोहनद-नगर में इस प्रन्थ को समाप्त किया।
प्रन्थ के आरम्भ में “आवक कृतहो नियाय” लिखकर उन्होंने अपना आवक होना चाहाया है। यद्यपि
प्रस्तुत प्रन्थ किसी अन्य प्रन्थ का अनुवाद न होकर संपूर्णतया नौलिक रचना है फिर भी प्रन्थ के
आव नंगलाचरण ने यह नाचिन होता है कि कवि ने अनेक वैद्यक प्रन्थों का ननन करके ही इस
रचा है। प्रन्थ में दात सन्दर्भ का लक्ष्य ३३२ गाथाएँ हैं। एक प्रति में हन्दू चाट आवादः नंगला-
चरण-रहित कई वैद्यक प्रन्थों के प्रमाण सहित १६३ गाथाओं का एक और प्रन्थ है, और उसक
अंत में भी “इति वैद्यमनोत्सव—” लिखा है। दोनों प्रन्थ दोहा, सोरदा व नीपाई लंगों में संभव हैं।
वह छप भी नुक्का है।

२. मलूकगद-रचित ‘वैद्यद्वारा’। इसका दूसरा नाम ‘तिथ्यस्त्राची’ भी है। इसके बह
लुकमान हक्काम के ‘तिथ्यस्त्राची’ नामक ‘दारस’ प्रन्थ का हिन्दी पत्रानुवाद भाव है। “आव भाषीनुन
को नाम मलूकचन्द्रः” इन शब्दों में अनुवादक ने आव नंगलाचरण के अनेकर अपना परिचय
दिया है। प्रन्थ में अतः प्रशस्ति नहीं है, इसमें प्रन्थ का रचना काल तथा रचना स्थान नहीं जाना
गया। कवि का विशेष परिचय भी नहीं प्राप्त है। सम्भवतः दूसरे प्रन्थ का भाषानुवाद मात्र होने से
वह प्रन्थ, अन्य वैद्यक प्रन्थों का मान्ति लगड़ विभक्त नहीं है। इसकी उम्र गाथाएँ ५१८ हैं।

३. रामचन्द्र-रचित ‘रामाविनोद’ तथा ‘वैद्यविनोद’ रामाविनोद प्रन्थ आलेय, चरक, शरीत,
योगीचतामणि चारभट्ट सुश्रुत नृगु; द्वारपाणि, सन्निपातकलिका, राजनार्तेष्ठ, रसचिन्तामणि, शतक,

प्रत्या के आधार पर रचा गया है। इसके रचायता खरतरगच्छाय जिनासद्दार के शिष्य पश्चकीलि के शिष्य पश्च रंग के शिष्य कवि रामनन्द हैं और इसको रचना स. १७२०, मार्गीशीर्ष शुक्ल तेरस वृषभार के अवरंगशाह (ओरंगज़ेब) के राज्य में पंजाब के बन्दू देशवतीं शबकी शहर में हुई। इस बन्दू में भी यात्रा अमृदेश है और कुल गाथाएँ १३८५ हैं। इस प्रत्या के बाद नार्दापरावा, गाथा ३६ और गानप्रमाण गाथा १२, और हैं। 'रामावनाद' वहाँ नामों पृथ्वे वृपा भी था।

'वैद्यविनोद' वा रचना स. १७२६ वैशाख तुटी १५ को मरेटकोर में शारंगजेव के शिष्य में हुई। यह ग्रन्थ 'शार्द्धभर' नामक प्रांसद वैद्यकाभ्य का हिन्दी पथानुवाद है। इसमें तीन भाग हैं, प्रत्येक भाग में कमशः ७, १३, १३, अध्याय हैं; गाथाएँ सब मिलकर २५०५ हैं। इसमें पूर्वान्तरित ग्रन्थ की ओरतः प्रशस्ति में उल्लेख इस प्रकार है।

पहली कोर्नी गाथ विनोद। व्याधिनिकटन करण प्रमोद।

वैद्यविनोद यह दूजकोर्नी। सीजन देवि खृष्ण होइ रहिया ॥

५. लक्ष्मी वलभ-गच्छिन कालशान। अन्तु अन्त वैरा शम्भवाम युत ग्रन्थ का पश्चात्यावह है। इसमें ३६८ गाथाएँ हैं और जननाकाल ग्रन्थ १७४५ है। रचयिता रामेश्वर लक्ष्मीवलभ जो खरतरगच्छ के अवारद्वावा शताव्दी के प्रसिद्ध विद्वानों में है। इनके द्वारा रचित संकृत के कल्पयूत व उत्तराश्वयनग्रन्थ की टीका और हिन्दी न मारवाड़ी-राजस्थानी भाषा के कई रस आदि उपलब्ध हैं। प्रति वीकानेर के जैन मठडारों में है।

६-७. कवि मान रचित 'वैद्यविनोद' और 'कविप्रमोद' का इस्ये बाद नम्बर आना है। 'कविप्रमोद' जैनों द्वारा रचित हिन्दी पश्चमद वैद्यक ग्रन्थों में सबसे बड़ा है और उसमें २६४४ गाथाएँ हैं। इसकी प्रतिथाँ पंजाब के नकोड़ भंडार में (न. ४४३), पाटण व वीकानेर के जैन शान घंडारों में भी उल्लङ्घ हैं। ग्रन्थों को रचना स. १७५३ के सु. ५. नोमनार को लाहौर में हुई।

'कविप्रमोद' का रचनाकाल स. १७४६ का सु. २ है। यह ग्रन्थ कवित, जौपाई शोहादि में है। रचना प्रशस्त है। कवि नान वीकानेर के निवारी थे एवं खरतरगच्छीय तुमति मेरु विनय मेरु के शिष्य थे।

८. समरथ-रचित 'समझजर्णी'। यह ग्रन्थ एक प्राप्त नहीं हुआ। गुरुद्वारा ला रो गई थी। पल यद्दों के मदिमा पांक्ति-जागरभंडार (न. ८७) में है और इन्द्रल अंतप्यल स्तेवक के निवारी नाम्बद में है, जिसके पता चलता है कि इन्द्रके रचयिता वरन्नरगच्छीय सत्तिराज शिष्य भास्मी है और रचनाकाल स. १७६४ [५६] है। और रचना नामान देश मिथ्ये जात होता है। रचना जौपाई छोटों में हुई है।

९. मुनि मेथ रचित "मनविनोद"—रचयिता मुनि नेश(राज)हिन्दी के अच्छे कवि और यति थे। इनका उपाध्य फगवाड़ा नगर में था। ग्रन्थ का रचना-स्थान फुगुआनगर, फगवाड़ा (तब का कपूरथला स्टेट के अन्तर्गत) है। रचनाकाल ५० १८३५, फाल्गुन शुक्ला १३ है। यह ग्रन्थ गुजराती

लिपि में भी प्रकाशित हो चुका है। हिन्दी में अनुवाद भी ल्रप नहीं है। मृ० ३० डा० बनारसीटाम जी जैन के 'पंजाव के जैन भण्डारों का मध्य' शोरीक लेख में जोकि आत्मानन्द रत्नान्नी स्मारक प्रनथ ए हिन्दी लघर (प० १५०) में प्रकाशित हुआ है किंचि की गुरुपरम्परा और अन्य कृतियों का वर्णन मिलता है। गेवञ्जापि इस तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं, अर्थात् 'द्वानशीलतपभाव' (भडार न० ६८८, म० १८७६) 'संयमाला' (म० १८७०) और 'गेवविनोद'। संयमाला में कवित की गुरुपरम्परा इस प्रकार पाई जाती है—उग्रगमच्छ (ज्ञाक लोकागच्छ की शास्त्रा गी और उच्चप्रांत में जान के कारण उग्रगमच्छ के नाम से प्रगिद्ध हुई) के बट्टमल के शिष्य परमानंद के शिष्य सदानंद के शिष्य नारायण के शिष्य नरांकम के शिष्य मायाराम के शिष्य नेत्र-भृति ए।

१०१२ श्रति गंगाराम-रचित 'लोलिवराणु' भाषा, 'मूरत-प्रकाश' और 'माव-निदान'। रचयिता अमृतसर के यति वरजगाम जी के शिष्य थे। इनका उल्लेख 'नागरीप्रचारिणी पत्रिका' में प्रकाशित दूर सर्वे कार हिन्दी मैन्युस्क्रिप्ट्स इन दि पंजाव १९२२-२४ में पृ० ३० में पाया जाता है। इनमें से पहला ग्रन्थ संस्कृत के इसी नाम के प्रतिक्रिया वैद्यन ग्रन्थ का अनुवाद है। दूसरा दूसरा नाम 'वैद्य नावन' भी है और रचयिता का म० १८८० है। यह ग्रन्थ-प्रकाश ('माव-निदान') रामयतः अपने गुरु के नाम ने रचयिता ने नामनक किया है इसका रचनाकाल म० १८८५ चिन है। 'मावनिदान' का रचनाकाल ल० १८८० है। ग्रन्थ लेखक के सामने नहीं है। अतएव लेखक उनका वर्णन देने में असमर्थ है।

उपर्युक्त सभी ग्रन्थ पंजाब अथवा लिख प्रांत में रचित हैं। दो ग्रन्थों में रचना-त्थान का निर्देश नहीं दे सकता; पंजाब में रच तय। अतएव हम एक नाम निर्धारी पर पहुँचते हैं। यह यह कि पंजाब में जैन धाराओं का गेवक नाम का विशेष आनशनकारी होगा।

'पउम चरिय' में महावीर-चरित्र और उपदेश

◎ श्री यगरचंद नाहटा

पीकांगे

भगवान् महायोर व्रीष्णी सत्त्वी श्रावणसम साप्तम श्वेताम्बर जैनागम है। स्पतंड इम में महावीर चरित्र बहुत बार में लिखे गये। जैन ग्रामों में भी मापारांग, रस्तमूँद और मावश्यक निरुक्ति गूण में तुल्य व्यवस्थित नहावीर चरित्र दियता है, ग्राम ग्रामों में तो कुटी-द्वार्ट याने स्त्री निलंबी है, जिस से महायोर भीकरन का गृह चिप टीक में उपस्थित नहीं होता।

जैन नालिका में रुदा-गंगट तम्भर्यी रहना प्रथम एक गंगा गंगमूर भासावनेकथाएंग है उसके बाद प्रथमानुयोग गंडिका आदि जो प्रथम लिखे गये थे, वे यात्रा प्राप्त नहीं हैं। जैन रुदा का सबसे पहला और नहस्यपूर्ण प्रथम है, विमलतूरि रचित 'पउम चरिय' जिनकी रक्षा बोर निर्वाला सं० ५३० विक्रम संवत् ६० अर्धांग प्रथम श्रमारदी में हुई थी। इस दृश्य में प्रथमगामा जैन यात्रा याम रखा है। गुरुओंसम वीरगान को प्रार्चन जैन प्रथमोंने 'पउम' का नाम दे गयोपित किया है। यामायांग मूर्य में याम का नाम 'पउम' ही पाया जाना है, जो दृश्य अनुदेव थे। इस यामम में दृश्य वस्त्रदेव का नाम 'राम' है जो श्रीकृष्ण के भाई वस्त्रदेव नाम से प्रमिल है।

'पउम चरिय' में राम रुदा के साइनोंध और भी तीव्रकर चमनकर्ती वादि का चरित्र बर्णित है। दस्तमें जयसे 'रहने प्रथम राम विरत यामुन करने के बाद मगथ देव के राजपुर' (राजपुरी) में राजा

भेषित रहने रहना आ, इसका उन्नेक करने गमदान नहावीर का चरित्र दिया है। यह बहुत संक्षिप्त में दोनों पर भी बहुत महत्वपूर्ण है। जैन प्रागमों के विप्रियड दिये जाने के ८५० वर्षे वहाँ से रचित इस दृश्य का नहावीर चरित्र यथाभ्य ही उल्लेखनीय है, वह उसे इस निवार में प्राप्तिका किया जा रहा है।

नहावीर चरित्र के बाद 'पउम चरिय' में पहली लिखा गया है कि 'विष्य गमुदाय वामपुर व्य गमत्व यंद के गाय विद्वान् वर्गे हुए गमा प्रामाणि व्रतिशयों की विभूति से व्यंयुक्त नहावीर एवं यार विमुत्साचल के ऊपर पथारे। इन्द्र यहाँ ग्रामा और जिनयरेंद्र जो देशमें ही दोनों हाथ गमाकर गए होए लाल नम ने वामदित होना कृपा भववान् तो स्मृति इसीं नमा है।' जौलालों में १२५३ में हुई ग्रा गृहि दी गई है उसका दिनी वर्षावार तो इस लेख में दिया आ रहा है।

'सुति के बाद' देवेंद्र और दृश्य देव, दोनों स्थानों में देव गये। परमादिस्य श्रीलिङ्ग राजपुर में निरक्षा, भगवान् जहाँ यहरे हुए थे वहाँ आकर हाथी गे उआ कर जिनवर को सुति कर नीचे पेटा। यह निम्ने हैं बाद गमोगम्य का वर्णन दिया है जो प्रमिल होने से यहाँ नहीं दिया जा रहा है। उसके बाद लिखा है कि 'नेष के समान रथि यामे जिनयरेंद्र महायोर वर्षंदामधी भावा में सभी लोगों को कस्मालगारी घंवं का उपदेश

देते हैं। भगवान् योर का दिव्या दृष्टा वह उपर्देश भी
यहाँ दिया जा रहा है। एस प्रकार प्राचीन प्रतिपादियों
के दूसरे समुद्रेश्वर के देवता भगवान् भगवान् योर का अरिप
योर उपर्देश बण्णिं है, उगे प्राकृत प्राचीन प्रतिपादियों
प्राचीन प्रतिपादियों मानुषाद पञ्च गे उद्धृत करते
यहाँ प्रकाशित कर रहा है।

गण्यवर नाभुगमनी देवी ने एउटा ग्रन्थ
को प्राप्त किया जहाँ साहित्य वा सत्र में प्राचीन ग्रन्थ
बहसासे हृषि लिखा है कि “इस ब्रह्म में देवी दोई वास
नहीं निसी जिन पर दिग्घवर-स्थेनावर में मे छिरी
एक गंगदार्ग री दोई गहरी आप हो। परथात् यह
ब्रह्म उस ब्रह्म वा है जहाँ इन शर्मे प्रविष्ट हो।
इसमें कुछ यागे नहीं हैं, जो अं० परंपरा के
विच्छु जाती हैं सोर युक्त दिग्घवर परंपरा के
विच्छु। इसमें नावूम छाँसा है वह शीर्गी दोनों के
द्वीप की धारा भी ।”

पहाड़ीर चरित—

इस भरतवेष्य में गुण पूर्वं गम्भीरं गंगाम
कुष्ठद्राव नाम का नगर था । यहाँ पर राजवासी
में वृद्धन के समान उम्रम सिद्धार्थं नामक राजा
राजद करना था । उसी एवंक गुणों गं गुरुक तथा
स्वायती विभन्ना नाम गं भाद्रा थी । गुरुं लग्न
पूर्णं होनं पर अन (महार्दीन) उम्रं भने ने था ।
प्राचीनकाल इस निवेश्वर का लग्न दृष्टा ऐ गुणा
आनहर श्रीर इसीलिये प्राचीन मे पुनर्वित होकर
सद्य देश पर्यं गये । कुष्ठद्राव नगर में आकर उम्रोंने
सुनिधित जन को वृत्ति दी । शाद में निवेश्वर
को नेकर वे देव मेह पर्वत के निकर पर गये ।
श्रीर पाञ्चदम्बस गिरा के ऊपर निषुद्धों ने देशीद-
मान गिरायम पर भगवान् को श्वासित रक्षा के
शीरोदधि के लकड़ी वरे दृष्टं देखनों गे उपरा
अभियेक करने लगे । मेह पर्वत को धरने अगुर्णे गं
श्रीषापात्र में उम्रोंने हिला दिया था इसीलिये

गुरुरेन्द्रों ने उनका नाम प्रह्लादीर रखा। जिसें हम
प्रह्लादीर को यद्दन, संचुति पर्यं प्रदर्शिता एवं ने
देव वाणीस स्तोत्रे प्रोत्र स्तोत्रों लोकों के गुण जैसे
भगवान् को गुनः सत्त्वा ने अधीप रखा। इसके
द्वारा दिये हए पाहार गे जना प्रयोग एवं तिने
गये प्रमृत के नेष्ट में पूर्वने में भीते भीते बाल भाव
का व्याप्ति प्रवर्के विन चीम तथा की प्रथना
के हैं।

मंगान के दोगों वो जानने वाले और इसी सिंदे पिरक लोकाभिक देवताओं से पिरे हुए जिनेश्वर महाबोड़ ने एक दिन श्रीभा थो। याद में व्यानोगदोग ने नीन उम्हें याद रखो वा क्षम थोंने १२ मासप त्रयन् थों प्रथमिम उरने याना देखन-
यान क्षमाद रखा। उनका अभिर दूध के नमान थेत था। उनकी दृष्टि द्वय द्वयोंने रहित थी, उपमे है युग्म आरहो थों, गामुद्धिक द्वास्प म
वर्णित नुग्दर लक्षणों वे वह मुक्त थी तथा प्रथम निमंस थी। उनकी प्राणों इन्द्र के रहित थी, उनके नाभुन योर वापर प्रथमिम नभा चिम्ब ने
पोर उनके चारों प्रांत तो योगत तक का प्रदेश संक्रामक गोगों गे त्रूप रहना था। वहाँ पर
उनके परन्तु बढ़ते थे जहाँ गहन दस नमान निमित
हो जाना था, त्रूप कलों के भाव गे भूम गे जाने
दे, पृथ्वी भास्म गे परिपूर्ण थों तर्मान द्वंस के
ममान स्थवर्द्ध हो जानी थी। अब मानदी वाणी
उनके गुण से निकलती थी और भूम वे गदे से
रहित दिताम् जरस्काल की भाँति निमंस हो जानी
थी। जहाँ जिंद गहायोंद दृष्टि वे बढ़ी एवं
वर्णन सिद्धामन, गोजन पर्यन। विद्युता पर्याद,
तद्द गुनाई रे गोगो दुन्दुभि नभा देवों द्वाया की
आने जानी त्रूपाद्युष्टि शोभी थी। इस प्रकार याद
परिमाणितों गे गमनिम गुणिताम थों तिवारों
गे भी भूम रुद्धि भग्याम् गहायोंद भास्म रुद्धि रुद्धि
कमलों को विकसित करते हुए विजरसे थे। विष्व

मनुषाय, गणधर पारं साक्षत् मंथ के गाथ विहार करते हैं तथा जानादि ग्रन्तियों की विभूति से मुक्त गहानीः पव. नामः शिषुलालचल के ऊपरापरः।

भगवान् महावीर के उपदेश

इन्द्र वो प्रकार के हैं। जीव और अजीव रूप दो भेद जानने योग्य हैं। जीव के भी दो भेद हैं। (1) शिरः (2) संसारी। जो मिह जीव होते हैं उनका मुख अनन्त, अनुपम, मश्य, अमल अनन्त परं विभी भी प्रकार की वाधा से सदा मुक्त यथार्थ व्यव्यावाध होता है। संसारी जीवों वे भी व्रग पव्य रुद्यावर रूप से दो भेद जानते चाहिए। उन शोनों के भी प्रशाप्त और अप्रश्याप्त रूप दो दो भेद हैं। पृथ्वी, धनी, वाग, पक्ष और वनस्पति-ये पांच स्थावर जीव कहे गये हैं। द्वौनिद्रिय से लेकर उच्चेत्तिरिय तक के यम जीव हैं। उनके भी दो भेद हैं। संधी अधिनि पान याने, और (2) अराजी गानि पान इति। जीव जीव इत्यहि यम यम प्रधर्म यादि भेद से अनन्त प्रवास का है। भव्य जीव योंकि य जान है, जन्माक अभक्षा जीव योंकि य न जानता उन गंगारों गे अनुकूल हो जाते हैं। अप्याट्वं सन वननन्ताय वा, प्रदृशि क्षम योग तथा नेत्रो नहित कपाय इन कारणों गे जीव गुरुदा ग्रनुभ कर्म का बन्ध करता है। सम्यक्त्व के साथ ज्ञान, देशन, चारित्र एवं तप से तथा मन-वरचन कार्य का ग्रनुभ प्रदृशि से दूर रखने वाला। जीव प्रनन्त पूर्ण उपाजित करता है। कर्म के संक्षेप में यान भेद कह गए हैं। अपने घरने परिणाम के प्रनुनार जीव भर्म वा भन्न करने हैं या मुक्त रहने हैं। विद्य युक्त न पूढ़ संसारी जीव का जो धर्मणक युक्त प्रतीत होता है वह नो वस्तुतः प्रवेक वद्य कुम्भ स्वरूप ही है। पाण कर्म करने वाले जीव का वद्य लोक ने एक जिमित जितने भी उमय में गुप नहीं पिलाया। निर्वच जीव, मारपीट, दवग

एवं तिरसार आदि दोनों द्वारा दुख का अनुभव करते हैं। संरोग और विशोग में, लोभ में और प्रवास में, राग में और द्रेष में मनुष्य को जारी-रिक गवे गावनिक दुःख होता है। अस्पष्टद्विवाने देखीं को महाद्विक गुरु गम्भूत गो देख कर जो दुःख होता है उगसे भी भागी दुःख तो उन्हें च्यवन काल में (देशाति व्युत से होकर दूसरी गति में जन्म लेते समय यथार्थ परदण काल में) होता है। ऐसे घोर संसार लौटी चौराहे में अहा हृष्टा जीव दूसरे जीवों को श्रेष्ठा तुनता में दुःख से भ्रक्त होने पर ही पानव योनि प्राप्त करता है। ननुप्यत्व प्राप्त करने के बाव॑२८ भी भ्रद्य पुर्ण के कारण जीव जगत् प्रादि कुलों में उत्पन्न होता है; उत्तम कुलों में जीव ही उत्पत्ति वडी कनिनाई से होती है। उत्तम कुल गे उत्पन्न होने पर भी गनुपर योना, वहरा, अन्धा, गूंगा, हूंटा और लुलालंगडा होता है। जीव वडी मुश्किल से पांचों उन्नियों से तीरोग तथा सुरूप होता है। सभी गुन्दर वस्त्रों की प्राप्ति होने पर भी अपुर्णशाली पूर्ण मनुष्य वो लोग एवं गोहृषण यम में बुद्धि ही नहीं होती। शर्म शिवायक ग्रुद्धि उत्तम होने पर भी भ्रक्तमें जीव कीदा गृहों में वह बुनाया जाता है जिमें जिगभानित यम ने यह प्राप्त नहीं करता। मनुष्यत्व प्राप्त शर्कं जिसका वित्त गर्वदा धर्म में नहीं लगा रहता उस मनुष्य के करतल में श्रावा हृष्टा ग्रनुभ भी यानों गष्ट हो गया। यहाँ पर ऐसे भी कितने ही बीर दुर्घट हुआ थे जिन्होंने भातपूर्वक चारित्र ग्रहण किया तो वो धूपने चारित्र में घलफिडन रह कर यह उत्तम स्थान (गोश) में जाकर ठहरे हैं। इसरे भी ऐसे और एक ऐ जिन्होंने 'जिन' गद लो (तीर्त्तकर नाम कर्म लो) प्राप्ति के लिये नारगामूल वीस ज्ञानक की ग्रासाधना करके तीनों तोकों के लिये आद्यंकारी ऐसा अगत्त भृष्ट प्राप्त किया है। दूसरे ऐसे भी हैं जो भोद तप करके रासार को अप्त कर

देते हैं, और दो या तीन भव तक इस मुस्लिम में परिव्रमण करके दिन अमृतार्थ निर्णया प्राप्त करते हैं। वे लोग जो उत्तम तथा सर्वोच्च हैं तभा अपने अपने बुद्धिवृत्त के प्रनुभार भागधारा का के गृह्य प्राप्त करते हैं वे उत्तम प्रमुख विषयों में प्रदूषित रूप में उत्तम होते हैं। यहाँ से अब हांत गर्दे शमशेह एवं चक्रवर्ती के नाम चल जाते हैं। तो चिरकाल नक्क उपभोग वर्ग के पोर याद में रहने का प्रायरथा करके सिद्ध होते हैं। दूसरे ऐसे भी होते हैं जो पोर गोदावरी ने पराजित हाहर संघर्ष से अपट होते हैं। और युवा गुरुष्य के अल्पवर्ती नज़र राजन बनते हैं। कई लोग ऐसे भी होते हैं जो जिनवरेन्द्र के दर्जन माद ने संतोष खानते हैं। वे दूसरे में भी प्रत्यास्थान (त्याग) और उसके प्राप्त होने वाले मुख पा प्रनुभव नहीं करते। प्रियास्त तो जिनको परि गोद्वित हो जाता है, जो वर्षीन, वर्तरहित एवं विद्यरहित में ज्ञानका गुरुण अभिन वोर पंग्राम जैसे प्रदूषरम्भ में प्रथम करते हैं। दूसरे चक्रवर्ती जो आदि ब्रह्मवर्ता में गर्वका प्रतीक के जन्मवाही का दिवाय वर्तमान नीद्रा एवं सत्यन्त दुर्घ भे परिपूर्ण भोव तरण में जाते हैं। अगामी गुरुक एवं कुटिल ब्रह्मवर्ता कान्ति, भूरे वापनों में धरया रोजगार करने वाले तथा अन्त में अवधी रहने वाले तिर्यक योनि में उत्पन्न होते हैं। जो गर्व स्वभाव के ग्रीष्म ऋषि का अवतार करते वाले हैं, जिनके कराय गन्द है प्रोर जो अध्यात्म से अद्व तथा भवद्वय गुणों से युक्त है वे प्रनुष्य जन्म प्राप्त करते हैं। जो अल्पवर्त और नहावत का पालन करते हैं और वालक श्री भौति मध्यम-दूषि विषय वाल तथा करते हैं वे अपने-अपने परिणाम के अनुभार रेखनोंमें देव भूमि से उत्पन्न होते हैं। जो जान दर्शन एवं चारित्र में तथा परमार विषय एवं योनि में घुढ़ होते हैं वोर जो यहै में भी

यज्ञादेशक होते हैं ये अपने कर्मों का नाश करके
दुर्किं प्राप्त करते हैं। जो आगावरणीय भावि
शालु प्रवास के बाहर से गौहण आते हैं वे अपनाओं में
मिह जंग पराक्रमी ही उस अश्रम ग्रनथ ग्रन्थावाध,
जिव प्रोर परमसुखभव गोक्ष प्राप्त करते हैं।
ज्ञान गनि इसी प्रह्लादगृह में बमे ले जाकर हुए
हीय भूर-उद्यम दृष्टिरासा रखते हैं। जिस घमं
हसी गीता के संवाद कोई दश यमुने ने पार उड़ान
नहीं उतार सकता। संवाद रूपी अहिन्मीषण
धीज्ञकाल में दुर्ल रूपी गर्भी से तीव्र वेदगा का
यनुभव करने वाला समव जीयतोक जिन्दगीनरूपी
मेव के धीतल जल से गाँवत का अनुभव
करता है।

योर स्थूति

जैसा कहा गया है। यह सारा जीवलोक प्रोत्तर्हणी गहरे अन्ध-
कार में भीया दुआ है। यहाँ प्राप्त ही उसे
जिम्मेदारी प्राप्ति किया है। नगार की
नमूद्र में जीवसूपी बड़ी-बड़ी नहरें टिकड़ी रही हैं।
ह वहाँ प्राप्ति, जध्यजगत्की आपारिति है। जीवों
के नमाम छान ही नहर उतारने याल है। ऐ नाथ !
सर्वोन्नति, विजेता गृह जीवसूपी नहरों से व्याप्त
जन्मदेश है। नभाव के पश्चात नह ते कुमारी प्र-
वर्ष हीन द्वारे उत्तर्हणी के निम पाप ही नाथगाह-
तुल्य उत्पन्न हुए हैं। वहन देव तक यहसु कोई
वर्षों तक भी आपके वास्तविक गुणों का यदि कोई
गुणकीर्तन करे तो भी उनकी गितती करने में हे
नाथ ! क्यों समर्थ हो सकता है ?

२५ प्रयात्र सुति गत्वा के पश्चात् देवेश तथा
दूसरे भी जागे निष्ठापन के देव नायपुर्यक प्रणाम
करके अपने व्रपने धोन्य स्थानों में जा बैठे।

भारत, पर्वं और त्योहारों का देश है। यहां माये दिन नित्य नये त्योहारों के उपलब्ध में विभिन्न प्रकार के आयोजन होते रहते हैं। सौकर्य को ध्यान में रखते हुए भारतीय मनोविदियों ने अनेक प्रकार के पर्वं और त्योहार प्रचलित कर दिये, जिससे सभी लोग उन्हें मना कर ग्रानन्द प्राप्त कर सके। यासक बालिकाओं के लिये कई धारोद प्रमोद के त्योहार हैं, युवकों व स्त्रियों के लिये भी गण-पौर ग्रादि कुछ विशेष त्योहारों की व्यवस्था की गई है। इसी तरह अष्टात्म एवं धर्म प्रवान

प्रकार के त्योहार हैं। हिन्दू और मुसलमानों के त्योहार अलग २ हैं याम्हण, लक्ष्मि, वैश्य और शूद्रों के कई त्योहार तो सर्वं सामान्य हैं कई मिन्न हैं, आदि आवणी ग्रादि याम्हणों के, दीवाली वैश्वों की, विजयादशमी लक्ष्मियों की और होली शूद्रों का त्योहार माना गया है।

जैनधर्म भारत का प्राचीनतम धर्म है। वैदिक संलग्नति से अनेक वातों में उनकी मिन्नता और वैशिष्ट्य दिखाई देता है। जैन धर्म निवृत्ति प्रवान है, और वैदिक धर्म प्रवृत्ति प्रधान है। जैन धर्म

धर्मों में अष्टमी अतुरंशी अमावस्या और पूर्णिमा को विशिष्ट पर्वं दिवस मानते हुए यहां मान्यता के अनुसार विशेष धर्मी-चरण कियाजाता था। तीव्रं कर्ता वे सम्बन्धित तिविदों और स्थानों को भी विशेष महस्य दिया जाता है। दर्याकाल में साधु साध्यी एक स्पान पर चौमासा करते हुए आत्म-साधना के साथ साय जन कल्याण भी करते रहते हैं इस लिये चौमासे के मध्य में एक ऐसा दिन निरिचत किया गया है जिस दिन सारा जैन संघ वर्षं भर के पाँपों की आत्म-चना व पारस्परिक धर्मत धारणा

आध्यात्मिक साधना का महापर्व पर्वाधिराज पर्युषण

— श्री अगरचन्द्र नाहटा —

भारत में आत्मिक ग्रानन्द प्राप्त करने के लिये आध्यात्मिक साधना के भी कुछ पर्वं मनाये जाते हैं।

वैदिक धर्मानुयायी अपने इष्ट मण्डान या देवी देवता को प्रसन्न करने के लिये अनेक प्रकार से उसकी भक्ति करते हैं। बंगाल में तो देवी पूजा का इतना अधिक प्रचार है कि कोई भी महीना विना शेवी देवताओं की पूजा उत्सव से रहित नहीं होता। एक एक महीने में वहां देवी पूजा के अनेक उत्सव मनाये जाते हैं।

दक्षिण भारत में इससे मिन्न

के अनुष्ठान आत्म शुद्धि के केन्द्र है। इसलिये दोनों धर्मों में अनेक तरह के ग्रन्त ग्रादि अनुष्ठान किये जाते हैं, पर उनके विधि विधान में काफी अन्तर है। पश्चिम एक दूसरे का प्रभाव हजारों वर्षों से साय साय रहने के कारण एक दूसरे पर पड़ता ही रहा है फिर भी कुछ सांस्कृतिक अन्तर ग्राज भी बना हुआ है।

जैन धर्म का वर्तमान रूप भगवान महावीर की बाणी पर आधारित है। भगवान महावीर के समय वैदिक, बौद्ध और जैन तीनों

करते हुए आत्म विशुद्धि कर सके उपवास, पूजा भक्ति ग्रन्ति में आध्यात्मिक गुणों के उत्कर्ष में विशेष मनोयोग दे सके। सम्बत्सर में एक दिन निरिचत होने के कारण इसको सम्बत्सरी पर्वं कहा जाता है। विशिष्ट घर्माराधना व उत्तरासना ग्रादि की जाने के कारण इसे 'पूर्ण' पर्वं भी कहा जाता है। सम्बत्सरी का एक दिन भाडपद मुग्ला पंचमी है। उसकी पर्वाधिराजा के रूप में श्वेताम्बर समाज में इसे अष्टान्हिक पर्वं का नाम दिया गया है, अर्यात ग्राढ दिन

की विशेष धर्माराधना का कार्य
भ्रम बनाया गया है।

'आचार्य' भद्रबाहु रचित कल्प-सूत्र का बाचन पहले केवल साधु-साध्वी ही सम्प्रदायी के दिन करते थे, उस घण्टा को साधु समाचारी कहा जाता है। उसके प्रारम्भ में भगवान् महायोर, पाठ्वनाथ, नेनि-जाथ और प्रादिनाथ इन चार तीर्थंकरों का अन्तर काल जुड़ा हुआ है जोक्षे से स्वविरावली भी इसमें जोड़ी गई, जिसमें गणधरों से लेकर ऐवंधि गणी तक के स्वविरों, गणों, गुलों और शाखाओं का विवरण दिया गया है।

आगे चलकर इस कल्पसूत्र को धायक श्राविकाओं के समक्ष भी नियमित रूप से बाँचा जाना शुरू हो गया। और आज भी श्वेताम्बर मूर्ति पूजक समाज में चार पाँच दिन प्रातः और मध्याह्न में कल्प सूत्र की टीकाओं के व्याख्यान होते हैं।

स्वानकवासी सम्प्रदाय में अन्तर्गत दण्ड युवती की धाचना होती है। तेराप्रती सम्प्रदाय ने अब इसे नदा रूप दिया है। एक एक दिन किसी विशेष धर्म की आराधना की पद्धति नालू की है।

दिग्म्बर समाज में यह पद्धति काली पुरानी है। भाद्रपद शुक्ला तिंच मोही ने भी मरुत्य का दिन भानते हैं और उस दिन से प्रारंभ करते चतुर्दशी तक १० दिन अमा प्रादि १० धर्मों की आराधना क्रमशः

की जाती है। इसीलिये दिग्म्बर सम्प्रदाय में इस पर्व का नाम 'दश सूक्ष्मी पर्व' धार्मिक प्रसिद्ध है। थोनों सम्प्रदायों की आराधना का मुख्य लक्ष्य आत्म शुद्धि और आध्यात्मिक गुणों का विकास ही है। पद्धति में अन्तर है, पर लक्ष्य एक ही है। सभी जैन इस पर्व को बड़ी निष्ठा और पवित्र 'भावना से भनाते हैं। अपने दंग का यह एक बहुत ही विशिष्ट धार्यात्मिक साधना का महापर्व है।

अन्य धर्मों के पर्वों से जैन धर्म के पर्वों में एक विशेषता यह है कि जिस तरह अन्य धर्म के पर्वों में वाहरी दीपाली, नये वर्ष वारण करना, अच्छे अच्छे मिठालों व पकवानों को बना कर लाना, भौतिक नुख सुविधाओं में हृष्ण मनाना होता है, उस तरह जैनधर्म में कोई याहरी प्राकर्षण का काम पर्व दिनों में न होकर आध्यात्मिक साधना को ही प्रधानता दी जाती है। जैनों में उस दिन ऋत उपवास आदि तपत्या की जाती है। प्रभु दशंन, भक्ति, गुद्धवन्दन व्याख्यान शब्द, रूपाव्याय, ध्यान, जप, प्रतिक्रमण आमापना, दान आदि धर्म कुत्यों द्वारा आत्म विशुद्धि और जुद भाव की वृद्धि करने का प्रयत्न किया जाता है, इसलिये अन्य धर्म व समाज के पर्वों को लोकिक पर्व और पर्युदण प्रादि आध्यात्मिक साधना के पर्वों को लोकोत्तर पर्व कहा जाया है। क्षमा, उत्तमता, निरग्ममानता संतोष

आदि सात्त्विक भाव ही सास्त्रव में आत्म घर्म हैं। बाहरी क्रिया कार्यों तो उस आत्म घर्म तक पहुंचने के मार्ग हैं। साध्य है बीतराणता या समता का भाव अर्थात् राष्ट्रदेव का सर्वेषां अभाव। ऐसी अवस्था प्राप्त होने पर ही आत्मा परमात्मा कहलाती है और वही हमारा लक्ष्य व साध्य होना चाहिये।

जैन धर्म त्याग प्रधान घर्म है पौद्गलिक वस्तुओं का ग्रहण व उपभोग यहां त्याज्य माना जाया है और आत्मजागृति, चिरन, ध्यान के द्वारा आत्मरमणता को ही उपाधेय एवं आदरयोग्य स्थान दिया जाया है।

पर्युषण पर्व का अर्थ है क्रोध मान, माया, लोभ आदि कपायों का उपशम और प्रात्मा के स्वभाव रूप में धर्म की उपासना, अर्थात् आत्म के निकट थाना व रहना, जब तक हम पौद्गलिक वस्तुओं और भोगभोग का सूख का कारण मानते रहेंगे, तब उक हम अन्तर्मुखी होकर स्व-रूप चिन्तन जागृति नहीं कर सकेंगे। धार्मिक अनुष्ठानों द्वारा हम मन व बृहन काया के अणुभ योगों या प्रवृत्तियों से हटकर शुभ कायों में प्रवृत्ति करते हैं, पर ये भी आध्यात्मिक साधना के लिये तो भज्य यती विश्राम जैसे हैं। अतः गुड़ की ओर बढ़ना होगा। शुभ कायों में ही साधना को साध्य मान लेना है अतः सदसे पहले हमें लक्ष्य या (शेष पृष्ठ २० पर)

महावीर वाणा

— पृष्ठ १९ का शेष —

— “किचन” का अर्थ है कुछ जो समझता है कि इस दुनिया में अपना कुछ नहीं है. जो सोचता है कि जन्म लेते समय हम अपने साथ कोई वस्तु नहीं लाये थे और मरते समय भी अपने साथ कुछ भाने वाला नहीं है- सारा धन, खेत मकान आदि यहीं छूट जाने वाले हैं जो जानता है कि आत्मा के अतिरिक्त समस्त वस्तुएँ जड़े हैं अणभंगुर हैं, वही “ग्रांकिचन” है

— ऐसा अक्षित सोचो नहीं हो सकता अर्थात् जो ग्रांकिचन है, उसका सोम सर्वंया नष्ट हो जाता है।

— इसी कथ में आगे चलकर जानी कहते हैं कि बिसमें लोभ नहीं होता अर्थात् जो व्यक्ति अपनी सम्पत्ति को अधिक में अधिक बढ़ाने की चालच में नहीं पड़ता तिन्धानवे के फेर में नहीं पड़ता, उसकी तत्प्रा नष्ट हो जाती है

— इस प्रकार तत्प्रा का नशा करने के लिये लोभ का अभाव आवश्यक है और सोन के अभाव के लिये मन में ग्रांकिचनता का अनुभव।

— उत्तराध्ययन सूत्र ३२/८.

आंख खुली तो.....

आंख खुली तो कमरे पर की, चिसक गई सारी दीवारें
किससे पीठ टेक फर चेठे, किस पर अपना सर दे मारे।

भरी नदी, पानी आंखों में
पूरी तनहाई लाखों में
गालों पर ग्रांम ही ग्रांम, सड़कों पर कारें ही कारें॥

चेहरे गहमे फुटपायों में
फूल कसाई के हाथों में
सूली उपर सेज पिया की, सूकी ऊपर उम्र गुजारें॥

नूही घर, हृत्याये बीबे
रोज बदलती है तारीबे
मुह और हाथों में अपने, लकड़ी, पुट्ठों की उल्यारें॥

सबको सांपों ने काटा है
सबके घर में सन्नाटा है
विजली के नंगे तारों से, चिपके दंधों किसे पुकारें॥

बढ़ा रहे दूकान दिसाती
पढ़ा कुण्डली साढ़े साती
किस पण्डित से जाप करायें? कंसे शनि का शाप ज्तारें।

-सूर्य भानु गुप्ता

पर्वाधिराज पर्युषण

धर्म निश्चित गरना चाहिये और
उस और धार्मिक धनुष्टानों द्वारा
हम कितने अंश में अग्रसर हो रहे
हैं। यह आत्म निरीक्षण द्वारा
जांच पड़ताल करते रहना चाहिये
जिन्हें जितने अंश में यीतरागता
इव समझाव प्रष्ट होगा, उठने

पृष्ठ १७ का शेष

उतने अंश में आध्यात्म-विकास
हुआ माना जाना चाहिये। पर्युषण
पवं आत्म निरीक्षण एवं विशुद्धि
का पथ है। यह स्मरण रखते हुए
इस पवं की पाराधना जाप करेंगे
ही।

※

शश्वत धर्म के ग्राहक बनिये

राजस्थान के भक्त और उत्कृष्ट कवि-

पृथ्वीराज राठोड़

वीरी सिंह के महाराजा राय-
सिंह के लघु भ्राता राठोड़ पृथ्वी-
राज राजस्थान के जाग्वल्यमान
नंबर हैं। उन्होंने बेलि छुण
रुम्हणि रो राजस्थानी भाषा की
सर्वोच्चत शुद्ध मानी जाती है।
इसकी रचना के अन्दरून ही इसका
बहुत ही विशाल एवं व्यापक रूप
में प्रचार हुआ। अतः सौ वर्षों के
अन्दर इसकी १०-१२ टीकाएं
विभिन्न गिनातों ने बनाई। इनमें
से २ जैन शीकाण्ड संस्कृत की भी
है। हूँढाड़ी भाषा की है लो मेरे
मतानुसार परवर्ती टीकाकार लांग
और जयसेनि की उल्लिखित
'जात्रा चारस' बाली ही होनी
पड़िवे। जात्राड़ी भाषा की ४-५
टीकाएं मिलती हैं और सबसे
आरम्भक की बात तो यह है कि
त्रिज भाषा में भी उसका पदानुवाद
लाहोरी नोनाल कथि ने सरदार खाँ
के पुत्र भिर्ज खाँ की आङ्हा से रत
विदास के नाम से बनाया। किसी
जो राजस्थानी रचना का घंज में
पदानुवाद होने का एक ही उदाहरण है। इस रचना का अन्तिम
पद पूरी प्रति भी जंसलमेर भण्डार
में प्राप्त होना दै है। जिससे नफ्ल
करके न्यायी जरोत्तमदास द्वारा
सम्मानित बेलि के संस्कृत में
प्रकाशित किया जा चुका है हूँढाड़ी
और संस्कृत टीका दिन्दुस्तानी
एवेंडी के संरक्षण में पहले ही
प्रकाशित हो चुकी थी।



को हुआ था जिससे ३७० वर्ष पूरे
हो रहे हैं। पर कविश्वर पृथ्वीराज
की निश्चन तिथि प्राप्त नहीं होती।
केवल सं० १६५७ में मधुरा के
विश्वान्त घाट पर उनका मृत्यु होने
का उल्लेख मिलता है और मोरां
आदि की तो जन्म मरण तिथियां
अन्यकार में ही हैं। इसलिए
कल्पना से जाने जो भी दिन ठह-
राया जैयेपरत्तेकि इतिहास सम्मत
नहीं कहा जा सकता। अतः मेरी

—श्री अग्रचन्द नाड़ा—

राय में कविश्वर पृथ्वीराज की जन्म
तिथि जब निश्चित रूप से प्राप्त
है तो जन्म जयन्ती मनाना ही
उपयुक्त होगा। अभी अभी हमने
श्रीकानेर में जन्म जयन्ती उत्सव
मनाने का विचार किया था पर
इससे पूर्व निर्धारित ढाँ पल्ल० पी०
टेसोटोरी दिवस के यह तिथि बहुत
ही नजदीक पड़ने से अगले दर्घ
के लिए टेसोटोरी दिवस की भांति
समारोह पूर्वक मनाने का ही विचार
किया गया।

कविश्वर पृथ्वीराज के सम्बन्ध
में श्रीकानेर को ख्यात और १-२
मुसलामान इतिहास प्रन्थों के
आधार से ही उनका परिचय अभी
तक प्रकाशित होता रहा है। पर

नहीं गया। अतः सबकी जानकारी
के लिए तीन वर्ष पूर्व प्रकाशित
इस प्रन्थ के मद्दत्यपूर्ण संस्मरण
से नं० २३८ वार्ता प्रसग को यहां
पर प्रकाशित किया जा रहा है
इससे उनके भक्त स्वरूप जा पूरा
परिचय मिलता है।

दोस्री बायन वैष्णवन की वार्ता
नं० २३८ में बर्णित कविश्वर
पृथ्वीराज के प्रसंग—

"ये पृथ्वीसिंही श्रीकानेर के
राजा कल्यानसिंहजी के उद्धां जन्मे
सो बालपने सो इन की चित्र साधु-
संगति में रहे। देश २ के साथु
उद्धां आवते। तिनसों ये मिले।
सो ये राजा भए। तब प्रथम ही ये
गोकुल-मधुरा की यात्रा को चले।
सो मधुराजी में आए। तब चै-
से पूछे, जो ऐसे कोई महाः
बताओं जासों मिलिये। तब चै-
ने कही, जो राजा यों तो यड़े यड़े
महापुल्प या त्रज मंडल में है,
परि गोकुल में श्री गुसाई विद्वल-
नाय बड़े प्रसिद्ध है। यड़े २ राजा,
संत, महात्मा, मुनी, स्वामी सब
इनकी वंदना करते हैं। ताते इनसे
मिलो तो आओ है। तब राजा
तत्काल श्री गोकुल आए। सो ता
समे श्री गुसाईजी आपु ठाकुरानो
घाट पर संध्यवंदन करि रहे हैं
सो राजा को श्री गुसाई के 'द
भए। सो तेजःपुंत अति उ
अलौकिक दर्शन भए। सो

पृथ्वीराज राठाड़

(शेष पृष्ठ २ कालम द.का)

पाढ़े अपने मन में कहे, जो ऐसे तैजस्ती पुरुष के दरसन तो आज तांहि या पृथ्वी मंडल पे भए नाहीं। इतने में श्री गुसाईंजी आपु संध्या घंटन करि चूके। तब आपु राज की ओर देखे। तब राज्य श्री गुसाईं को दखडवत करि बोनति की जे, जो महाराजाधिराज ! कृपा करि माकों सेवक कीजिए। आज मेरो जन्म सुफल भयो। तब श्री गुसाईंजी कृपा करि राजा को नाम सुनाई सेवक किये। पाढ़े एक ब्रत कराया निवेदन करवाए, पाढ़े राजा को आप कहे, जूराजा ! अब तुम घर जाय भगवत्सवा करो। पाढ़े श्री गुसाईंजी आप राजा को श्री वाल-हुण की स्वरूप पथराय सेवा की सब रीति बताए। और अशीर्वद दिए, जो तुम को काल कवहूं वाधा न करेगो। श्री ठाकुरजी के सदा सन्तुख रहोगे। पाढ़े राजा प्रसन्न होई अपने देस आए। सो भगवत्सेवा प्रीति पूर्वक करन लगे।

वार्ता प्रसंग-१

सो वे पृथ्वी सिंघजी कविता बोहोत करते। उतने कवित सवैया, दोहा, चोपाई, ऐसे अनेक प्रकार की कविता रची हैं। और 'रुकमनि वैल' और "स्यामलता" इत्यादि ग्रन्थ हूं बनाए हैं। सो राजा को मन ठाकुरजी के स्विया और ठोर जाते नाहीं। इन की चित ठाकुर में ऐसो गाड़िगयो जो संसार के विषय सब दूरै। सो अपनी राजी को हूं पहिचान न सके। ऐसो सेवा में राजा मनन रहे, और परदेसे जाह तब मानसी करे।

सो एक समै राजा परदेस गए। तब विकानेर के ऊपर शत्रु चढ़ि आए। तब दोनों ओर ते शत्रु ने घेर लिया। तब श्री ठाकुरजी ने लीन दिन तांहि शत्रुन ते लाझाई करी। सो ठाकुर के मंदिर के

कियाड़ तीन दिन तांहि भीतर ते बन्द रहे। कहूं ते खुले नांहों। पाढ़े चौथे दिन जब शत्रु माजि गए तब मन्दिर के कियाड़ खुले। सो उन ने दीवान को लिखि पठाई। सो दीवान पत्र वांचि कै चकित वैहू रहो। सो राजा पृथ्वी सिंघजी ऐसे श्री गुसाईंजी के कृपापत्र भगवदीए भए।

वार्ता प्रसंग-२

योहारि राजा पृथ्वी सिंघजी को पृथ्वी पति दिल्ली बुलाए। सो राजा पृथ्वीपति के पास दिल्ली आए। तब माला-तिलक-छापा सब करि कै आए। तब बादशाह पृथ्वी सिंघजी को देखि कै मन में बहोत प्रसन्न भयो। कहे, जो-देखो इनको कावूल की ओर लाझाई में जाइवे की कही। तब राजा ने विचार कियो, जो मेरी मृत्यु तो अमुक दिन मथुरा में विश्रांत घाट होइवा वारी है। सो अब कैसे करें? फेरी श्री गुसाईं के चरनार्थिंद को ध्यान करि राजा कावूल गयो। सो उहां थोरे ही दिन में लाझाई जीति कै सांकनी दें वैठि कै उहां ते चलो। सो दोई दिन में मथुरा आई कै वाही दिन देह छोड़ी। सो यह बात बादशाह ने मुनी। तब बादशाह ने योइस खेद कियो, जो ऐसे राजा माकों मिलने कठिन हैं।

भाव प्रकाश—या वार्ता कौ अभिप्राय यह है, जो जिनको गुरु कौ आश्रय दद होई। तिनकौ सर्व कार्य सिद्ध होई। ताते वैष्णव के गुरु कौ दद आश्रय राखनो।

सो वे पृथ्वी सिंघजी श्री गुसाईं के ऐसे कृपा पात्र भगवदीय हते, ताते इन की वार्ता कहां तांह कहिए॥२३॥
विठलनाथ की भक्ति सन्धनी पृथ्वी राजजी का कवित इस प्रकार है। शशि कलंक, सरवर, सपंक, सुर मृख धूमि (भ्र) गति। सविप सर्प, सविता संताप, गंगा

पृथ्वीराज रासों भें उल्लिखित ५२ वीरों की नामावली

—श्री आगरचन्द नाहटा

‘शोध पत्रिका’ वर्ष १४ अंक ३ में मैंने ५२ वीरों की ४ नामावलियां प्रकाशित की हैं उनमें कुछ नाम तो परस्पर मिलते हैं पर कई नाम भिन्न भी हैं। इसलिये इन नामावलियों की और भी खोज करने का विचार रहा क्योंकि जिन ग्रन्थादि के आधार से ये प्रकाशित की गई थीं वे अधिक प्राचीन नहीं हैं। खोज करते हुए पृथ्वीराज रासों के वीर यरदान नामक खण्ड में ५२ वीरों के स्वरूप और उनके नाम प्राप्त हुये जिनमें से नामों वाले पदों को इस लेख में प्रकाशित किया जा रहा है। ये पद हमारे संग्रह के रासों के मध्यम संस्करण को सं० १७६२ की लिखी हुई प्रति से नकल किये गये हैं और नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित बृहत् संस्करण के पाठ-भेद (केवल नामों के) टिप्पणी में दे दिये गये हैं। प्रकाशित संस्करण के पाठ-भेदों को नहीं लिया गया है।

आखेटक वीर यरदान नामक समय बृहद् संस्करण में छठा है। मध्यम संस्करण की हमारी प्रति के अनुसार ११ वीं है। इस प्रत्यंग का वर्णन करते हुये डा० विपिन विहारी श्रिवेदी ने अपने ‘चन्दयरदायी और उनका काव्य’ नामक शोध प्रबन्ध में लिखा है— “महाराज पृथ्वीराज एक वन में आखेट ऐतु गये ये, चन्द गो उनके साथ था, गार्ग में अपने साधियों से भटक कर चन्द एक यती के सामने जा पहुँचा, और यती को प्रसन्न करके उसने उनके द्वारा दीक्षित हो वायन गणों को वशीभूत करने वाला मन्त्र सिद्ध कर लिया।

यती ने चन्द से प्रसन्न होकर अपना एक इष्ट मन्त्र दिया और कहा कि हे भट, इसकी आराधना करने से वायन वीर प्रफुट हो जायेगे। इसकी राधना साध कर व्याधियां नष्ट होंगी और वांछित फल प्राप्त होंगे। गुरु से उपदेश मन्त्र प्राप्त कर सब गणों को अपने आधीन करो। कवि ने कान में मन्त्र सुन लिया तथा ऋषि ये चरण स्पर्श करके आगे चला। फिर मन्त्र की परीक्षा हेतु उसने आडन लगाया।

चन्द के मंत्र से व्यरित वीर तत्काल यहीं प्रफुट हो गये, उनके दर्शन से चन्द को अतीव प्रसन्नता प्राप्त हुई। उसने उनकी पूजा की। वीरों ने पूछा कि हमें क्यों

किया है। गणों ने कहा अरुनु संकट काल में हमारा रमण करना तथा भैरव ने एक गण को आज्ञा दी कि सब धीरों को छन्द को परिवर्तनवा दो, फिर प्रत्येक का नाम, गुण आदि सुनकर कवि ने प्रणाम करके उन्हें विदा किया ।” (ल० २७-४३) ।

रासो के मध्यम और ब्रह्म संस्करण में तो वीर वरदान खण्ड में ५२ वीरों की नामावली है पर लधुर्म और लतु संस्करण में सम्भवतः नहीं है। वैसे रासो में ६४ योगिनियों का भी उल्लेख है पर उनकी नामावली गेरे देखने में नहीं आई।

अभी जोधपुर जाने पर वहाँ के राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान की प्रति नं० १९७६२ में ६४ योगिनियों और ५२ क्षेत्रपाल का यंत्र देखने में आया और इसी संस्था की नित्योद शाखा में श्री मोहनलाल कूचेड़ीश का संग्रह है। उसकी प्रति नं० २५१३-१४ में ५२ वीरों की नामावली है। साथ ही २५१४ में ६४ योगिनी के नाम हैं। युनि विनयसाहिर लों के संग्रह में ५२ वीरों का एक छन्द भी विला है वह ६६ पश्चात् जा है, पर इसका कुछ अंश पञ्च के कट जाने से खारिड़त हो गया है।

वीर वरदान कथा

(रूपक ४० चा०)

छन्द पाठरी—

गुन ईश वीर गुन गहन गम्य, फल भिंदि त्रिंदि तिहि नाम याय ।
 वानीय प्रसन्न जे पुष्टुक होइ, करो प्रसन्न वीर पचास-दोइ (५२) ।
 आदिकः^१ वीर इह प्रथम सेव, तिन प्रथम प्रसन्न सुन जानि देव ॥
 वपुलाइ वीर वर्णात धिनोद, जिन प्रगत उदा आणंद मोद ॥
 बुद्धया^२ वीर वर्दौ स एह, जल मं सुथल्ल करै वरस मेह ॥
 नाडी^३ प्रवाह यह प्रवल वीर, जिहि जुटत-दनुज भरहरहि भार ॥
 नाडीभ्र^४ त्रोडनहि होउ कोइ, व्रदा उपास करै ईक दोइ ॥
 सूलीय भेज अनगेन वीर, वधु सुभिन्न करै दोइ नीर ॥
 मंसान^५ लोहभव वीर वक, तिन परस भांत अनसंक संक ॥
 गढ़^६ तोडन्पाय धीरस नाम, क्रघत कट हल हल छठाम ॥
 सामुद्र तरन इक वंर चाड, ससे समुद्र जनु थैत वात ॥
 सामुद्र जोषश्न भग वंर, दनु देव समुद्र निश्चरत नीर ॥०

१. आइकु, २. गुंडिआइ, ३. आनल्ल महारिय, ४. नारीय काहनह, ५. समसान-लोटना, ६. गढ़ उषडनाइ ।

संतोष^१ नाम छक वीर धीर, परमार्थ रूप भवनाम कोर ३६
 संतोष^२ पाथ बज याव वेय, भ्रम परै सुमर पल भमर तेइ ४०
 महा^३ भ्रमर काय आतुर अजीत, भ्रम होत अरिन जिहि कुद्द जीति ४१
 सहसपश्चिम^४ समितइ समान, जनि इवित तिमर हर इच्छ दान ४२
 सह^५ संग अङ्ग अग्नित चरित्त, भवभीत अभय भव करन मिति ४३
 पेत्रपाल वीर विति षलकपाल, नाना जरित गोपाल वाल ४४
 भूतपन^६ वीर बदनीय अक्रूर, तटकंति दिजिपल बरत चूर ४५
 साकिनीमार अनुभूत जोर, सुमिरत्त भक्त तन हरत रोर ४६
 वेदरी^७ भंग भंजै बलाय, कंपंत काल अरि तकत पाथ ४७
 वहनस्पाल^८ शसि सूररूप, सेवक निवाजि करि करन भूप ४८
 सहसं सुपानि बरवीर नाम, भक्तहि सुदेत मन बच्छ काम ४९
 वडीया सुवीर इक नाम धार, सेवत भक्ति पुत्रह दत्तार ५०
 षेमकर वीर इक नाम पेत, तन कुशल भूमि भक्तहि स देत ५१
 वनरा नाम इक वीर लृप, महाराय वली दनु वपत कूप ५२
 एण्स वीर सम चंद लेइ, पहचानि प्रसन करि विदा देय ॥४७॥क०

१. संतोषाइ, २. महासंतोष, ३. भ्रमराइकाइ (नाम वाला पद्म अधिक है)
 महाभ्रमराइ वाइक, ४. सहसाष अखिय, ५. सह लांग, ६. भूतपनइ, ७. वेदरी रीति,
 ८. सालियाहन्ह। नं० ४६ से ५२ तक के नामों वाले पद्म मुद्रित प्रति में नहीं हैं । इन चार
 नामों की जगह नं० १७ के बाद कालाइ, नं० ३५ के बाद घटघंड, नं० ४० के बाद भ्रमर-
 काइ ये तीन नामों वाले पद्म अधिक हैं । इस तरह मुद्रित पाठ में वीरों के
 नाम ५२ ही हैं—

१. आइक	१०. सामुद्र सोष	१६. कुरलाइ
२. वपुलाइ	११. इह लोह	२०. अगिकान्त
३. बुँदिआइ	१२. संकला चोट	२१. विषकंत
४. आनल्लग्रहारिय	१३. विस पाथ	२२. रगतिथा
५. नारीय	१४. लंउमाल	२३. कोइलाइ
६. सूलीय	१५. अगिया	२४. कालक
७. समसानलोठना	१६. विपविथा	२५. कालवे
८. गढ उपडनाइ	१७. जमधंट	२६. काल
९. सामुद्र तिरन	१८. कालाइ	२७. इद वीराइ

लोह^१ भंज नाम इक वीर दोष, सार प्रहर भंजे मुरोस ११
 संकली^२ ओउ इक नाम धार, भंजे जंबोर गल यत तार १२
 विषपांष^३ राह इक वीर जान, दंचदे जहर जनु दूध पान १३
 हंडमाल सोगइक नाम लेख, विपीय पर्दक मय छाल भेर १४
 आगीया वीर छुपेजियार, पर्देतनि जारि सो करत छारि १५
 वेषष-लोह^४ यीराभियीर, सिन कुधरक भर हैं भीर १६
 जमघंट^५ नाम^६ इकवीर लेप, अरितजै तेज भयभीत भेप १७
 कुरलाय^७ नाम महाकलन काय, सुर असुर नगे नरतके पाय १८
 अञ्जकांति^८ वीर जेहि जैवि जोह, तिन तेब जरत गिर सिपर पोह १९
 विषकन्ती^९ वीर इक प्रबल वंक, जिहि विरि प्रेत अनतंक तुक २०
 रगतोया नाम इक रगत रंग, भयभूत भीत भर करत संग २१
 कोइला^{१०} नाम इक चैय पाइ, जिहि प्रसन दुर तेयक पुलाइ २२
 कालीया^{११} नाम तिन करत सेव, प्रासन काव दुधधाडि देव २३
 काली^{१२} विडाल चल कहे कोन, भर अगम गाज जनु वहत पौन २४
 कालधट^{१३} नाम तिन यथवानि, कोरेत दिन निवल दरन पानि २५
 इन्द्रनाम^{१४} वीर चल इन्द्र जोर, प्रिगुन विलास तन इरत रोर २६
 जमनाम^{१५} वीर चल करत कोह, सचाह समुद्र चल दरन टोह २७
 देवगिन वीर नम छरे पाइ, शुभ धर्ने कर्म दाता सहाय २८
 अँकार वीर नमि धुरिधरन, जिन प्रसन सदा आणंदपान २९
 मापरा^{१६} वीर जव जुदत जोश, नहि सके देव दनु तास क्रोध ३०
 मनभई^{१७} वीर इक मेर नाम, विले अटुखलठट भुवन पान ३१
 कापरा^{१८} वीर कहा कर्णय वित्ति, मन वीता राग जिन भुगति जिति ३२
 केदार^{१९} राह तन सुध आप, दिवत दरह तिन त्रसता वाप ३३
 नरसिंघ र्यान नरसिंघ रूप, प्रिगुन विलास आतम अनूप ३४
 गोरिला^{२०} वीर गुन उकल जांग, संभाति समर तन समर र्यान ३५
 कुटक वीर^{२१} इक सेर गाज, दनुदलनिजुरथ जिहि भई गाज ३६
 महावग^{२२} नाम इक समर करथ, चग गिलत हुंडि जनु जानि मरथ ३७
 मदवेग वीर वज्रज्ञ अज्ञ, अदभूत रूप रूप अज्ञ अज्ञ ३८

१. लोह भंजनिय, २. रंगलावाट, ३. विसपाचराय, ४. विपविवा, ५. जमघंट,
 ६. नाम औचट ओर, जिनसत्तज्जगत घन घोर सोर। ७. कालाइ नाम इह वीर लेखि,
 सब तजै भीर भै भीत देखि। ८. असिक्कान्त, ९. विषकन्ता, १०. कोइलाइ, ११. कालयू,
 १२. कालवेनाइ, १३. कालधटाइ, १४. इन्द्र वीर, १५. जमयोरह, १६. भापटा,
 १७. मानिफमद, १८. दापडिया, १९. केदार, २०. गोरिया, २१: (घटर्ट नाम वाला
 पथ अधिक है, कुठर को जगह कंटोप-पाठ है)। २२. चग, माइ नाम,

२८.	बम वीराइ	३६.	गोरिया	४४.	महाभ्रमराइ
२९.	देवगिनि	३७.	बटवंट	४५.	सहसार
३०.	उँकार	३८.	कंटेम्य	४६.	सहस्रांग
३१.	भापटा	३९.	धग	४७.	बेत्रपाल
३२.	मानिक्क	४०.	माहव्वगाव	४८.	भूतघनइ
३३.	कपलिया	४१.	सांतो	४९.	साकिनीमार
३४.	केवाइ	४२.	महासंतोष	५०.	वेदरी रोति
३५.	नरसिंघ	४३.	अमराइकाइ	५१.	सालि वाहनह

—नाहटों की गवाई,

बीकानेर

वरदा

(राजस्थान की हिन्दी-संस्कार को गौरवपूर्ण भौट)

[संपादक—श्री मनोहर शर्मा]

प्रकाशक—राजस्थान साहित्य समिति, चिसाऊ (राजस्थान)

'वरदा' में राजस्थानी भाषा, साहित्य, संस्कृति, इतिहास एवं पुरातत्व सम्बन्धी शोधपूर्ण तथा संग्रहणीय सामग्री प्रकाशित होती है।

'वरदा' के लेखकों में डा० दशरथ शर्मा, डा० एच० सी० धायाणी, डा० कन्दैयालाल सहल, श्री अगर चन्द नाहटा, श्री रत्न चन्द्र अग्रवाल, श्री रावत सारस्वत, श्री वदरी प्रसाद साकरिया एवं पं० श्रीलालजी भिश्र प्रभुति गण्यमान्य विद्वान् हैं।

'वरदा' के प्रचार—प्रसार में सहयोग देना प्रत्येक साहित्य-प्रेमी का कर्तव्य है क्योंकि इसका प्रकाशन साहित्य-साधना मात्र है। प्रचार के लिये इस त्रिमासिक पत्रिका का वार्षिक सूल्व केवल ६) रुपये रखा गया है।

देश वर्णन—

त्रिव्युक्ति कासी

कवि देपाल रचित—

१

१५वीं शती की एक महत्वपूर्ण रचना

जीरापल्लि पार्श्वनाथ गास

(स०—धी अग्ररचन नाहटा)

मह-भारती के नत दो छंकों में धली श्रद्धेश वर्णन और मेष्टाइ वर्णन दिप् गये हैं। इस बार एक प्राचीन महत्वपूर्ण कृति ही जा रही है। यह १५ वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध कवि देपाल द्वारा रचित है। सिरोही राज्यान्तर्गत जीरापल्लि पार्श्वनाथ एक जैन कीर्ति है। उसकी यात्रा करने के लिये १ मालव २ मारुत्याद ३ सिंध ४ सोनगढ़ ५ गुजरात इन पांचों देशों की धार्यिकाएँ एकत्रित होती हैं और अपने अपने देश की विशेषताओं का एक एक कर वर्णन करती हैं। अन्त में नामों की धार्यिका उनका पारस्परिक विवाद समाप्त कर सबको प्रभु-पूजा में सम्मिलित कर देती है। देशों

के वर्णन के साथ साथ इस कृति का महत्व प्राचीन भाषा की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है।

कहूँ यथे पूर्व इसकी प्रतिलिपि पाठ्य भण्डार की प्रसि ने सेरा ध्रान् पुव नैवरलाल करके लाया था। बीछे से योग्यता वश योग्यानेतर में ही एक प्राचीन व्यापार में यह प्राप्त हो गई। अतः दोनों प्रसिद्धि के आधार पर सम्पादित कर यहाँ प्रकाशित की जा रही है।

इसके रचयिता कवि देपाल के सम्बन्ध में जैन गुर्वर कवियों भाग १ और ३ देखने चाहिए।

१४८५ वंश सुवा खरसत्ते, पठमाष्ट दमरविनि विशी, गोयम् १ गणहर पय नमिय।
 भणि सुचरितु प्रभ कंरड पासो त्रिम सन युक्ति भूमद्य चासो, जीराडलि वर गंडणड १॥१॥
 आससेण नर वड नखारो, तसु गुण पुहवि न लाभद्य पारो, वामाणु विहं उरि रथण ।
 इलां मार्गकमट्टह दलित जिणि रेणि सोहराय निरदलित, तासु चरित अभिह वोलितिड १॥२॥
 नितु नितु जंपद चरदह नारि, प्रीय तड अन्दु चयणु थववारे, सीमद्य जीराडलि तणीय ।
 जे कवि आवद्य संघ संघात, तीहर सिड सामीय म करसि वात; अरथ खोभ हीयहह म चशारे ॥३॥
 राखे जाणसि जीव दथालू, जु कुपिसिह तड खृटउ कालू, जडउ जीराडलि धणीय ।
 तासु सीम जे लंघद चोर, ते वंधेविणु कोजहं मोर, निय नथणे पेलहं न दिय ॥४॥
 तासु तणी जड लंधसि आंग, तड निश्चद्य चूकसि पराण, सपराणु मिरि पास जिण ।
 जात्र होह वहसाहा मासे, वर तरणी पुहतो प्रिय पासे, वर कामिणी वह चीनवद्य १॥५॥
 चालि चालि प्रिय करिउपस्सउ, दियह धरे विणु निश्चल भाड, पास जिलेसर बंदियह १॥६॥

ठवणि १

तिस जिस आयदू सथल देस केरी यर नारे, भपिश्चां दमृ सांभलड यहु रोन निवारे ।
 नालविग्नी मग तणह रंगि, बोजाविथ नाढो, खिंगिहि प्रिय पलाणि थहल मज्जा माँग ऊमाठो ॥ १ ॥
 मारथाडिनी नारि भण्य सांभलि भरणार, झटकदू करह पलांगि कंत नन लाहिपि वार ।
 सहिजिहि बालहू खियुइय सब करि कंपाई, हेय पांपवं नार कंत तिण मारपि अहू ॥ २ ॥
 राफरि यहृष्टि सोरटिणी क्लेदेवा लांगो, दृक्षीय करन पायह तशी, भांगलतिणि भांगो ।
 जनोय लोगदि अति पडो यदिचारी२, जेकहू लगह तासु तणह यहसहू दृष्टि पारो ॥ ३ ॥
 नज्जरि पझणह दीसखडर, ब्राह्मणी वंसाली, कहू यहृष्टि प्रिय तणीय थेलि, किंव पहुचउपालो ।
 देसवरी४ लिणगार फरी, चालहू वर कामिणी, राष्ट्र भास नन तणह रंगि, क्लेलहू वर रथामिणी ॥ ४ ॥
 त्रिट्ट पास तिणद आस ताम, मग केरोग एगो, तिण यानकि तिहि नारि थ्रेक, पूँडेवा लामो ।
 कमणु५ रुग्नु ताहू तणहूद देश, किमिह६ आचारो, ज कांई पछेसु७ गजिन से कदियहू यामो ॥ ५ ॥

ठवणि २

पहिलउं पभणि११ मालविणी, चांगु चांगु१२ तोरड देखु ।
 गुहिपि प्रसिद्ध जाणिय ए, धरम रणड निवेसु ॥
 रुपडउ नहै रुलीयामणउ ए, यहु धण कण्य विसाल ।
 सुमिणउतरि१२ दोगह नहो य, जीणहै देसि दुकाल ॥ १ ॥
 मरदेसह१४ नारिय भणहू ए, कासिउं करह वधांग ।
 याह देसु ति१४ दिट्टमहू, लावड नुम्ह प्रगांग ॥
 करहस कावर चलादिया ए, दोसह अति यहू खीय ।
 यार थंक ऊ कूंपिय१६ ए, तिहि१० देसणि जणांद अंग ॥ १२ ॥
 कृष करी रह छाली यहू, खटिय१८ सुप्तरि चांह ।
 जाने ढोहे जे भला अे, हूं यलिहारी तांह ॥
 तपखणि सुहता सियुइय, पहिरणि२० श्रीणड चीह ।
 अद्वह अनंगिहि आयरिय२१, लहिजिहि जासु शरीह ॥ १३ ॥
 चंगु देसु आसाहि जठ ए, सपलहर२२ देसु मज्जारि ।
 येहूउ२३ बोलिम मालविणी भम्ह वयणर२४ अवधारि ॥
 जे आसहर२२ जलहरू तणोग, गन्हमथाहू तिणनिति ।
 रेहू२६ देस वरलाणिय ए, हम खियुइय भणमिति ॥ १४ ॥

१—पण सभांदउ ताहि, २—वाणि, ३—तिह, ४—वडीआरे, ५—पंश, ६—देसी नी, ७—तिहै,
 ८—निलेस, ९—करणु, १०—तणउ, ११—केसउ, १०—पूँडीउ, ११—पभणहू, १२—चंगु चंगु, १३—
 सुप्तरेतरि, १४—मग देसो नारो, १५—सु, १६—कथीहू, १७—तीव, १८—तिन, १९—मंडो, २०—
 पहिराहू, २१—आकुलीय, २२—भयरहू, २३—यहूउ, २४—वयणु, २५—आसे, २६—तेहू ।

तोणि । वयणि कोविहि अदिय, सुरठट केरी नारि ।
 पहुलो अति ऊडावलीय, वास तिणन्दह यारि ॥
 ५४ हरधीर मडि पहिरणह प., अवियडे कोपड थेचु ।
 तिलिणिभ तिलि निख्यछिड़िउ ॥ प., मिधुह केरह देसु ॥ १२ ॥
 बलि यलि काहु योलिग प., यगड ग्रोह शालु ॥
 शावर जैसीद सोरहगो, मिझु परीकू लालु ॥
 देसु अमोजा जा मलिहि, जन्म दोष बकारि ।
 तलियै किसिउ जे देसहड, जो नवि मन्नह छारि ॥ १३ ॥
 यहुः-नाम गूजरि श्रो उहत चमचंति ॥
 पाए नेटर रणभलाहु कस्तुरी मय यह यारिय ।
 पट रूल जसु पहिरणह प., भंसगाणिह चलहइ सु नारिय ॥
 करियाजि कंकण भुलहलह थे, कंचण रयण शिवाल ।
 इग परि अलहिलपुर नयर, संपत्तिय ॥ १४ ॥

ठवणि ३

वचनि स कोमल मुधर चाणि सा गूजरि पभगड ॥ १५ ॥
 चाहु अेक जसु लव ख, तिहुयणि मत ढोखह ॥
 सरवर ताम सद्य जाम, दीसह नवि सायर ।
 तां शारायण तेज जाम, ऊगड न दिवायह ॥ १६ ॥
 ता गर्य मह ॥ १७ गल गड फरहं, जां यिह न पेषह ।
 भायदर देसह गूजरान, मागड तिलि लेषह ॥
 चिनय नियेक चिनार लार, सुनि अग्निलयाह ॥
 यहुठं ॥ १८ युक्ति निहाण जाण, शेतलह ॥ १९ ॥ विराहठं ॥ २० ॥
 यहह नीर जिण ॥ याग गालि, यासिणि सरसरे ।
 तं जिनयर जसु विनिय प., अयर किम लागड चिरे ॥
 नक्षीय करी सोरटिणी भणह, यहु योलि म डाहठं ।
 देसु अमोजा जामलिहि, कोह एजड काहउ ॥ २१ ॥
 महु गंगाय घरान नार, नरठ ॥ २२ ॥ गिरनारो ।
 जगु यिरि ॥ २३ ॥ गाहर मरिह, यह नेमि कुमारो ॥

१—तोहं, २—हथो, ३—अशीअदु, ४—ततलिण, ५—निख्यछुउ, ६—केरठ, ७—दण्डउ,
 ८—जेवाच सुरठडीज, ९—तथो ग कोह, १०—भायंत, ११—यारि, १२—संगुहती, १३—कहेह,
 १४—पहगालि, १५—बहुआं, १६—पूतलहं, १७—गहवड, १८—आयरि,

सिद्धखेत्रि जे मिहि हूमा, तीढ पार न जाणडँ ।
त्रैबोसह तिथे सरह, यसो सरण वथाणडँ ॥ २१ ॥

गंग गवरि यर सोमनाथ, सायर उपकंठे ।
यंभ कपाल तणीय फांदि, दीसह जसु कण्ठे ॥
द्वारिका नगरिय वसह कानह, भणियह गोपालो ।
कंस देस चाणूर पसुह, अद्वुरह लह गालो ॥ २२ ॥

थवर त्रिकेत्रि तेग्राम लंडि, युसार निहि शामु ।
हृणि कारणि पह देव-देसु, प्रसिद्धं नामु ॥
हृषि यादु अति वडीय चार, अंकद नवि नाजडँ ।
यिहु देस ऊपन तु का, चोलियह मु छाजइ ॥ २३ ॥

तिणि शामिहि तिहि नारि अंक, नागउरह आवी ।
गृजरि अनहू संसरिणि, तिणि बेड मनावो ॥
भहमति करिवा तणीय बम, ते अच्छह अनेरो ।
हिवडां जिणवरु पूजिय ए, मति कोजह गारी ॥ २४ ॥

गासु वधणु मनेत्रि बेड, तिणि मण्डपि आवडँ ।
पंखिय ज्ञिणवर पास नाहु, भावना ति भावडँ ॥

ठवणि ४

चउयिह संव मिलेट्रि त्रिणि नद्यण वरते ।
कणय कक्षस करि लंदे जल यिमल भरते ॥

जीहं योलंसा वचन विकेयं ।
अंकि भगह जनमा-र्थभिरेको ॥ २५ ॥

येकि लियह करि कुसमह माल, महा पूज विरचह सुविशाल ।
थेफह मनि दह असुड सरगां, त्रिणवर थद्वनि चवि मु अंगो ॥ २६ ॥

हृषि आरत्ती करह कपूरिहि, हुकिय कमर लिहि नांदां दूरि ।
जिभि जिभि दीसह पाय जिणदां, तिनि २ सावद मनि आणदां ॥ २७ ॥

द्रवणि नथण हुया सुकियत्व, एज करह ते भन भन हस्थ ।

ठवणि ५

दूष एरि प्र सयल नन्तरि, पुरोऽप्र मावय मन तणी प।
तूरिहि प्र नाट्य इयाधि, तूडड जीराडलि भणीय॥
धन धनू प्र के नरु नारि, जे अवलोहं सुख कमलो ।
भव जलु प्र पहलह पारि, तइं तूहह प्रभु पुहचिय ए॥ २८ ॥

दूसम ए सूसम कालु, पास जिणेसर तुह भुवणि ।
मूरखु ओ कवि देपाल ब्रेकर जोटीय बीनदउं ए॥
जह किमह ए तूडड सानि, नु हउ मांगड शेतलडं ए ।
जल यालि प्र मारण गामि, सार करे संवक तणी ए॥
कर्मधि हिं श्वेह, जि रास, पढङ्क 'युणहं जे सभलह ए ।
नवनिधि ओ तणड निवास, लासु बरगणि गामीह ए॥ २९ ॥

इति श्री जीरापलिल श्री पाश्चनाथ राम ॐ

१५ वीं शताब्दि का एक महत्वपूर्ण अज्ञात प्रन्थ

(जांखो मणीहार रचित हरिचंदपुराण, स० १४५३)

(ले. ली अग्रवाल नामसे)

हिन्दी भाषा के संवत् उल्लेख वाले प्राचीन प्रन्थों की जानकारी हमें बहुत ही कम है। इसलिए सोलंगी शताब्दि से पहले के हिन्दी साहित्य के निर्धारित प्रन्थों का उल्लेख हमारे हिन्दी साहित्य के इतिहास प्रन्थों में कम ही मिलेगा। यथापि प्राचीन साहित्य मुमलमानी मान्द्राज्य के समय बहुत अधिक जटिल हो गया, फिर भी इधर उधर के ज्ञान भंडारों व न्यायिक विभागों में खोज करने पर कुछ मिल हैं। जाता है। यात्रव में तो खोज ही बहुत कम हो पाई है। खोज करने वालों ने भी बहुत से प्राप्त रचनाओं के विवरण लेने में असावधानी की है। वे कहीं प्रथकार का नाम ठीक से ज्ञात नहीं कर सके, कहीं उसका रचनाकाल बतलाने में गलती की है व छोड़ दिये हैं। प्रन्थों का महत्व तो वे सभभूत ही क्या? और जिन प्रन्थों का विवरण लिया गया है उनकी बहुत भी खोज रिपोर्टें भी अब अप्राप्य हैं। उनमें जिन रचनाओं का परिचय प्रकाशित हुआ है, उनको देख कर उनके मूल्यांकन करने का प्रयत्न भी हिन्दी विद्याने ने नहीं किया। खोज रिपोर्टों के आगार से मिथ्र वन्धुओं ने 'मिथ्र वन्धु वितोद' करके लोधे तो भर दिये पर प्रन्थों के सम्बन्ध में विशेष ज्ञानकारी प्राप्त नहीं हो। यानी मैं मूलविद्याने प्रन्थों वी प्राप्ति करना भी एक कठिन समस्या है और उससे भी कठिन है प्रन्थों का अध्ययन कर आवश्यक प्रकाश डालना। पर मेरी राय में जब प्राचीन हिन्दी साहित्य बहुत ही कम मिलता है तब उस से कम १६ वीं के पहले की जिन रचनाओं का भी पता चले उनका

अधिकारी भाषा के विकास और परवर्ती राज्यों का परम्परा के मूलस्रोत आहि की जानकारी के लिये प्रथम भव्यक चम्हे प्राप्त अर प्रकाश ढाला जाना चाहिये।

अभी तक इस दिशा में कितनी उपेक्षा हुई है, इसका एक उदाहरण प्रत्युत लेख में दिया जा रहा है। अब से ५८ वर्ष पूर्व मन् १६०० में जय नागरी प्रचारिणी मध्य की ओर से दिनी ग्रंथों की विजय का साथे प्रारम्भ हुआ, तो जयपुर के एक जैन जान भठार में एक महत्वपूर्ण गुटका मिला। त्रिपथे "वालकारेय राम" "पदम-भक्त का हमसर्णा विवाह" और हरिचन्द्र पुराण आहि अनेको महत्व पूर्ण रचनाएँ थीं उनमें से वालकारेय राम नाम सबसे पुराना था। उसको और यादृश्यामुन्दरदासजी का व्यान आदर्पित हुआ। यह इनका नकाल करयो और उन्होंने एक लेख लिखा। इससे दिनी भाषाद्वय प्रेमियों को भवसे पढ़ते शीतलद्वय गम का प्रतिचय मिला। यह राम गम ये प्रकाशित थे करवा देवा नदा। परन्तु अन्य दो रचनाएँ उपलिखित ही रहीं। पदम भक्त कालकामली विवाह वा राजस्थान का अत्यंत पर्विद्व उन काव्य हैं। और उपलिखित होने लगे थे वृद्ध विवरण, वालकारेय हुए नदा यहां वहां वहां उसका पार-गम दशभूता यहां द्वा नदा। उसक मूलका क्या था। उन्होंने कलिये मैंने काकी विजय थी। तो अबसे पुरानी प्रति वहां गुटका उन्होंने भी आया। इस त्रिपथ में अपने अनुमयान के पांगाम स्वनव लेख में प्रकाशित कर्हुँगा। यहां तो हरिचन्द्र पुराण के मध्यम में थोड़ा प्रकाश ढाका जा रहा है।

मन् १६०२ का खोज रिपोर्ट तो मुख्य उपलब्ध नहीं हो सकी, पर मन् १६०० से १६१५ तक को ल्लोज रिपोर्टी वा सार हस्तलिखित हिन्दी तुस्को का मोज्जप्र विवरण का प्रथम भाग सं२ १६८० में लघा से प्रकाशित हुआ था। वही सेर सामने है। उसके पुष्ट १६३६ में इस रचना को ऐ पर्वियों में कवल इतजाक्षा नलिखे हैं— "हरिचन्द्र पुराण नारायण देवकुल निः" का॒ सं२ १६५३ विः राजाद्विचन्द्र की कथा का वर्णन। देव (पृ० ८८)।

१. ग्रन्थ के अंत में भाषावग देव नाम आता है। उस ही कवि नाम प्राप्त लिया गया, जो साती है। यह १६०६ का लिखे में नामग्रन्थ ५१ दोनों क्षयों का त्रिपथ है, पहा उही वह इसी भिन्न है। या अभिन्न।

जिस महत्वपूरण और महान् गुटके में यह प्रथा है, वह सम्बन्ध १६६६ से १६८८ तक २० वर्षों में लिखा गया है। उसमें वैशक, ज्योतिष, मन्त्र शक्ति कोकशास्त्र नीति, शालिहोत्र समुद्रिक चंद्र व जैन जैनेत्र द्वोटी मोटी अनेक भाषा रचनाओं संग्रहीत हैं। करीब ४०-५० हजार श्लोक परिमित विविध विषय की सामग्री का यह आकर गुटका कई वर्षों पूर्व बड़े ही सौभाग्य की घात है, कि एक असल्य हस्तालिखित प्रथा विकेता के हाथ पहुँच आ चढ़ा। नयोग वश उन्हीं दिनों में उभयं यहाँ जा पहुँचा; क्योंकि गत ३५ वर्षों में मुझे लंग्रह एवं अन्वेषण का इतना अधिक रोक लगा है, कि अन्य सभी जल्दी कामों आवत् भूख प्यास को भुजा कर भी नवोन व सामग्री की खोज एवं संग्रह में लगा ही रहता हूँ। इसी अद्वितीय लगान और अनवरत श्रम के कारण हजारों लक्षाविक रूपये खर्च कर करीब २० हजार हस्त लिखित प्रतियों, चित्रों, सिक्कों आदि विशिष्ट कलापूर्ण उपयोगी सामग्री का संग्रह कर सका हूँ। जब उस पुस्तक विकेताने मुझे कहा कि आपके काम का एक बहुत महत्वपूर्ण प्रति मैंने लिखा है, तो मैं उत्सुक हो उठा उस देवते को। तत्काल ही उस प्रथा गति का (संग्रह गुटके का) मैंने मांगा कर देखा। और मुझे मात्रों जात्रों सूरजे मिल गये हों। उस से भी अधिक हर्ष हुआ। मैंने उसका मूल्य पूछा और जा भी उसने अपने मुँह से मांगा मुँह मांगा जोड़ देकः यी उसे खरीद जिचा। वैसे एक व्यापारी शोने के नाते मैं बहुत जोज तोल करके कल लगाकर बहनुपै खरीदता हूँ; पर उस महान् संग्रह को लाकर मैं मुश्व दो गया। मेरी हाथि में वह इतना अनमोल था, कि उसने जो मांगा उससे १० दीस गुना अधिक मांगने पर भी मैं लेने मैं नहीं हिचकिचाता व किसी भी तरह मैं इसे हाथों से नहीं जाने देता। किसी जौहरी के हाथ वहिथा न आने पर उसे जो खुशी होती है उससे बहुत अधिक खुशी मुझे उभयों प्राकृति हुई।

अब विवेच्य 'हरिचंद पुराण' का संक्षिप्त परिचय दिया जा रहा है। जैसा कि खोज रिपोर्ट में विवरण दिया है, व्रथ का नाम और रचना काल तो ठीक है; पर प्रथकार का नाम उसमें गलत दिया गया है। मैंने मारे प्रथ का बड़े ध्यान से पर्यवेक्षण किया तो विदित हुआ कि 'जांखु मणी आर' की यह रचना है। 'मणीआर' जाति के किसी व्यक्ति द्वारा रचित मेरी जानकारी में यह एक ही रचना है। यद्यांप उसने एक जगह "कवि कहै जांखु" के रूप में अपने को कवि सम्बोधित किया है अतः उसकी और रचनाएँ निलंबनी समव हैं पर अभीतक तो यह एक ही मिली है। मं० १४५३ अर्थात् ५३० वर्ष जितनी पूरानी रचना होने से उसका

... तुम्हे म यह न बता लिया दिला है वह "राजस्थान" नाम के स्थान में लिखी गई है। अब वह किसी राजस्थान के ब्रज नहीं हिंदू के प्रभाव याले चौथे का रवि होना चाहिए। इसलिये उम्ही भाषा, राजस्थानी व हिंदी दोनों ही हिंट से बड़े महत्व की है। राजस्थानी में प्राचीन जैन रचनाएँ तो १२ वीं शताब्दि से निरंतर और प्रचुर संख्या में बिलक्सी हैं पर जैनेतर कथियों की रचना में १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही कुछ रचना मिलनी प्रारंभ होती है। यीसलदे रास आदि कृतिपथ रचनाएँ ही इसके अपवाद हैं। अतः राजस्थानी साहित्य की हिंट से भी इस प्रथ की नपलनिधि यही महत्व की बात है।

हिंदू पुराण एक 'पशाड़ी' काव्य भी है। पशाड़ी, यशो शब्द पहले व नामरे पश्च में प्रयुक्त मिलता है, जो प्रकट करने के अर्थ में भी हो सकता है व पशाड़ के अर्थ में भी यदि पशाड़ा अर्थ किया जाय तो अभी तक के उत्तरार्द्ध पशाड़ों में यह भव्यता पुराना है। पुराणसंज्ञक रचना तो लोक भाषा में विरलीही मिलती है।

साहित्य व कविता की हिंट से चाहे इसका मूल अधिक न हो वर भाषा की दृष्टि से नो इनका महत्व बहुत ही अधिक है।

हिन्दू भाषा के विकास और उसके पुराने साहित्य नवंगी विचार बहुत ही सम्पूर्ण है। जो कुछ लिया गया है वह यहुत ही अरुण और भ्रांत है। इसका प्रधान कारण यह है, कि पुरानी रचनाएँ बहुत ही कम प्रकाशित हुई हैं। और जो दश वीथ प्रथ निकले हैं वे भी सुसंपादित होकर प्रकाशित नहीं हैं। प्राचीन रचनाओं के बहुत कम प्रकाशित होने के कारण ही हिंदी भाषा य साहित्य के विकास का उत्तरार्द्ध ठीक जमनहीं पाया। और प्रकाशित प्रथों के भी सुसंपादित संस्करण न होने से उनके आग्राह से उत्तरार्द्धगण विचार भ्रांतिपूर्ण ही रहेंगे। गुजराती साहित्य को लोकान् उसको जैन जैनेतर मैकड़ों प्राचीन रचनाओं छपचुकी हैं।

कई प्रथमालओ से बड़े संघर्ष प्रथ निकल चुके हैं, उदाहरणार्थ—चुक्त काव्य दोहन के आठ भाग, प्राचीन काव्यमाला के पचनीस भाग, आतंद-काव्य भवोदधि के द भाग, प्राचीन काव्य मुद्दा के पांच भाग, प्राचीन गुर्जर काव्य संग्रह, इतिहासिक राम संग्रह के ऊर भाग जैन, गृतिहासिक गुर्जर काव्य मन्त्रय, जैन गृतिहासिक धर्मसाला आदि संघर्ष ग्रंथों के अतिरिक्त अलेको भट्टवप्या प्राचीन काव्यों के धर्मसालत निकले चुके हैं। अन्ये ४३ वीं शताब्दी से १३ वीं वर्ष के भाषणों का रहा है, तो प्राचीन धर्मसालों ने अन्यान्य दोनों भाषा ओं का संयुक्त निर्धारित है। १३ वीं से प्राचीन भेद अधिक विकसित हुआ। ननके वाद के भो शताविक भाषा प्रथ ग्रंथ ग्रंथ चुके हैं। इसलिए गुजराती साहित्य का इतिहास सिलसिलेवार व निप्रोत्त लिखा गया है। वयमि प्रकाशित गुजराती साहित्य के इतिहास प्रथ नुस्खे लेखन वह नहीं लगारहे हैं, किंतु ये द्विंदी की अपेक्षा प्राचीन साहित्य की जातकारी उसमें बहुत अधिकांशत व लग्नहर है। इसी दरह वयमि द्विंदी काव्य संग्रह विकल्पों तभी द्विंदी साहित्य का प्रासादिक जातकारी मिलते कहा जाता है। इसके प्रारंभिक, मध्य व अंत के कुछ उदाहरण इन वकार हैं :

गूलपाणि भन सम्ह गणेश, त्वं मंडण मतिदेव आसेल ।

स्विवृति भनि देहरत पत्तात् च्युधुरि पयडो हतिचंदरात् ॥ १ ॥

थद्युक्त्रहि सामिति ज्ञानिदरनात्, भव दिनर मुनि लगाड़ि गाय ।

किंदो लिगार अल्पवण्णलोई, हूल गमाणि सारद घर्हेई ॥ २ ॥

मारद छुचे कम्या दृष्टेण, एवा मनि बुदि अनो जाणि

कह द्वावत्त अन कावो यार, भनहरिचंद पयडोसंसार ॥ ३ ॥

गोददमै त्रीपौ विचार, वैवभाविति जानित्यनार ।

मनमाहि सरस्यो आकृति, दिनदनराहि कीथो कविति ॥ ४ ॥

किम दोषायु भारथकीयो आथम द्वाङ्गु रिक्षितोमरयो ।

जन्मेत्य केवलिकायो, रथायव हपिलु मनि भयो ॥ ५ ॥

किम द्वाषायण कह शुनाय, नाडद अलतृ बांहेलि हारव ।

किर धुरणि नरवे मुद्दा कोन, एह वोज म नद्याकावो अनि ॥ ६ ॥

गोत्रवध्यो दृष्णप्रारुदो कण, वृक्षन विश्वासि वाणो रिष्ण द्रेषु ।

निर्णि रिषियो कैशो जाणि, निन्हकों केमो हृसुखु पुराण ॥ ७ ॥

भाषणी—मूरि ज वंसरार मपथितु, धन्त हरिचंदन मेलहयो चितु ।

मुशो भाव वंर जायु कहे, नासई पापनली डोर छड ॥ ८ ॥

चतुर्वी—भगी रिपोन्वर साभज्जिहो राय, इमो अन्वन तुम्हि सुनिता आँड़ :

जानुव बाहुंड तुद्दो नोहि, कि तेन भारव कहिहो लोड ॥ ९ ॥

मणि रिपोन्वर मान्हांजि हो राय, भोङ पकहु कहु गुभाय ।

आर्य हेह तुरन्वत तणो, वंड़ो दोडा २ लाव साहा खिलो ॥ १० ॥

वध्य—आज वशित मदारा भयो, स्थोमो हाथ मंटल मोहि भयो ।

किरि परद्विकणि दीधी जाय, सरंग गोलाई तुधारा पाय ॥ ३८७ ॥

चलेगु जागि सिर जायो जाटि, ढाढ़ाकार भयो नेसारि ।

सहस्र वद्य याय जहु झरह, गुर गंकर दृज धंधी धरह ॥ ३८८ ॥

×

८

वधुः—भयो तखड आहि तुम्हि कवंग, भूतप्रेत विजाच अच्छे :

गंगा गंधर्वरिपि देवता कहो भ वान किरि दिप्ति आगह ॥

कवण कानिये सुजधरण, ओणो सोहित सार ।

बाटुंग ररि कांशीहड, जो ईहां लागड वार ॥ १ ॥

तदाही विज्ञानिल पहुतो आय, दौ बोहि नहरे यहो गुभाय ।

गंग विव तीराय कहो सोहि कहे, जया विजया दोहे कम्या वर्ण ॥ ३८९ ॥

जोधड रोहिताम नग्नि थारो पून, भाव विलमड परिवार संजुत ।

करहे राज नववट ममारि, जया विजया द्वे पर्णेण कुवारि ॥ ३९० ॥

श्रृंग—नगर अजोऽया भयो वद्याद, पतु जाति ले जालयो राय ।

विप्र भगता धर कोजै धली, परजा मुखी कीजड आपगी ॥

महत पुरिव है द्वाउयो गाज, गुर वन्दन द्वाउयो परमाणि ॥ २ ॥

मेलही कुवर नाम्यो हरिचंदु, देवत गुपि भयो आनंदु ।

पुक रक्षरोया धमि करी लयो, हुशो वद्याधी आरती लयो ॥ ३ ॥

तिल परि मालोया वायपूत अरमाहि, तिला ररि जीजउया मत्र कोहृ राय ।

ऐहि कथा को आयो छेव, हम तुम्ह जयो नारायण देव ॥ ४ ॥ ५००

॥ दति श्री हरिचंद पुराण रथा मंपूर्ण ॥

जिन पदों में कवि के नाम आदि हैं वे पश्च जाँच दिये जा रहे हैं—

अठवालौ—स्परशविं लोकपवालियं नगमत्य लोकं अनंतः।

धर कोहू जय जयकार हुओं चिह्नों दिसि गच्छुचला मानतः ॥

मंत हरिचंदु राय दूषण आवइ चल्दा दिव विमाणः

कवि कहै जायु वासेताल कंशाल पडह अरु नीमाण ॥ १ ॥

अठवालौ—ऐरापात यैंटा हंदु राजा कोहिना देखेण अध्ये ।

ततीम कोई सरसा चालै, सुन्दर तीय अति गावड ॥

नाचति नारि अप्र नायका विमुक्तन मंगल चार ।

हरिचंदु राय सतु देवाणा आवड, भणह जाँतो माणी यार ॥ २ ॥

अठवालौ—हर धाँहरिं वृग्भो चेठो चाजइ, गोरीसोढ आजइ ।

मिरि तिलकु मर्यक अजोती मंगम चाल्योउ मथाफेतु ।

इरिचंदु राय सतरेखेण आवइ, ग्यारह रूप लंजूत ॥ ३ ॥

इस प्रथम में चनपहार, वस्तु, अठवालौ आदि छंद ही अधिक प्रयुक्त हुए हैं ।

उनमें से चनपहार कानी पुराना छंद है । १६ श्री शताब्दी के बाद इसका उद्यवदार का होने लगा । याम गुटके के दर १२१६ में १२२८ तक भैं इतिचंदु पुराना लिखा हुआ है । १२८ तक यही को लिखा रहा है । इसके बाबे पर्याप्त नहीं दिये गये । प्रति पृष्ठ में एक शंक्षियों व प्रान्ति पांक्ति में करीबन् २० अक्षर है । यहाना से प्रथम परिभाण शरीबन् ६०० रुपों का बेठता है अतः यथ कोई अधिक बहा नहीं है । इसके अपाने ही व्यवस्था आवश्यक है । प्रति एकही मिलने से कुछ असुविधा ही मिलती है, पर यही बहुत सारल है, इसलिये यास असुविधा नहीं ।

इस प्रति में दामो कवि को 'लाद रण सेन षटमावती' कथा भी है । इसकी भी अन्य प्रति नहीं मिलती । उसकी कथा के संबंध में हमने एक लेख 'भाती' को भेजा है और मूल रचना की तरफ करवाका सम्बद्धर चतुर्वदीय षट्यांकर जो शास्त्री को भेजी गई है । यह प्रथम भा प्राचीन प्रेम काव्य के नाते महत्वपूर्ण है । संवत् १५१६ की जेठ वदि ८ को इसकी रचना हुई । इसमें कुछ पाठ उटितसा लगता है । पर अन्य कोई प्रति नहीं मिली । बीघजदेव राधा की भाति यह भी सं० १६६६ फूल खेड़ा में लिखा गया । इस प्रति में प्रति लिपिकार की विशेष प्रशस्ति अन्यत्र इस प्रकार मिलती है—

विं सं २०२५] १५वीं शताब्दी का एक महत्वपूर्ण अक्षात्र प्रन्थि (मात्र १५५० पृ.)

“नं १६७५ वर्षे आसाद सुधि १० गुरुवारिए लिखिता श्री शमी योग मन्त्रेः
भट्टारक श्री २१ हेमरत्न सूरि तच्छ्रद्धय चांणारिप श्री राणाजी तत शिष्य वा० श्री
बोरचन्द जी तस्य चेला रामालिखितं फूलखेहा मर्ये महाराजा श्री बीची रामचन्द्रजी
राये कुंबर श्री हरिदास जी भगवतदास जी शुभं ।”

“याको की महात्मार का नदी माझी (लक्ष्मी पूजितका)

ऐसा कि पढ़ने लिखा गया है उसमें और अनेक भी जैसे जैसे सर भाषा
रचनाए हैं, जिनमें भट्टाचारी के दाढ़े, चेलाले पर्याप्ति, चिह्नगति वेलि, मानसह,
दंचसद्देला, श्रूजिभट्ट ब्रह्म भाषा बलभट्ट वेलि आदि नदेश के हैं। पृथ्वीराज
राठोड़ जी कुप्ता रुक्मणी वेलि की प्राप्ति प्रतियों में भी यह सबसे प्राचीन प्रति है।

विविधा

१५वीं शताब्दी का एक ऐतिहासिक रास— कुमारपाल देवरास

श्री अगरचन्द नाहदा

००

अपने अंश से राजस्वानी, गुजराती, हिन्दू आदि उत्तर भारतीय प्राचीन भाषाओं का विकास हुआ। पर यह क्रमशः किस तरह हुआ, इसकी पूरी जानकारी प्राप्त करने के लिए १२वीं शताब्दी से १५ वीं शताब्दी तक को रचनाओं की लोज एवं अध्ययन बहुत ही जटिल है। लेद है कि हिन्दू साहित्य के आदिकाल की जैनरचनाएँ तो प्रायः नष्ट हो गयीं और जो थोड़ी-सी रचनाएँ प्राप्त हैं, वे मूलरूप में सुरक्षित नहीं हैं। इसलिए भाषा और साहित्य के विकास का अव्ययन उनके आधार पर ठीक से नहीं हो सकता। पर सौभाग्य की बात है कि आदिकाल को जैन रचनाएँ १०-२० नहीं, सैकड़ों छोटी-मोटी आज भी उपलब्ध हैं और उनकी हस्तालिखित प्रतिशाँ भी समाकालीन या थोड़े रमण बाद की जैनग्रन्थ-मण्डारों में प्राप्त हैं। इसलिए उस तर्मय की प्रतिनिवि रचनाओं को रूप में उनका बड़ा महत्व है। गुजरात से और कुछ राजस्वान रो ऐसी रचनाओं के तंग्रह ग्रन्थ और कुछ स्वतन्त्र पुस्तकों प्रकाशित भी हो चुकी हैं, पर उनको और हिन्दू के विद्वानों का व्याप्र प्रायः नहीं गया। अमी-अमी मेरे और डॉ० हरिवल्लभ भायाणी सम्पादित प्राचीन 'गुजराती व्याक' नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लाल भाई दलपत भाई, भारतीय संस्कृत शिक्षा मंदिर, जहगढ़बाद से प्रकाशित हुआ है। मैं आदिकालीन जैन रचनाओं को जानकारी के लिए इस ग्रन्थ को और विद्वानों का ध्यान ओकारित करता हूँ। इससे ३८ वर्ष पहले हमने ऐता ही एक नहत्वपूर्ण ग्रन्थ ऐतिहासिक जैनकाव्य-संग्रह सम्पादित करके अपने यहाँ से ही प्रकाशित किया था। उसमें १२ वीं शताब्दी से १८ वीं शताब्दी तक की ऐतिहासिक जैनरचनाओं का संकलन किया गया था। इसके बाद हमें ज्यों-ज्यों आदिकालीन रचनाएँ मिलती गयीं, त्यों-त्यों उन्हें अनेक पञ्च-पत्रिकाओं में प्रकाशित करते गये और अपने कई निवर्त्यों में उन पर प्रकाश डाल चुके हैं।

प्रस्तुत-चेत्र में देवपुत्रगणिरचित कुमारपाल देवरास नामक ऐतिहासिक काल्य प्रकाशित किया जा रहा है। देवपुत्र के युह सोमतिलक सूरि थे। इस रास की कई प्रतिनां प्राप्त होती हैं। सर्वप्रथम समवत् १५४० की लिखी हुई प्रति स्वर्गीय जैनसाहित्य-महारथी मोहनलाल

देवार्दि को प्राप्त हुई थी, जिसका विवरण उन्होंने अपने जैनगुरुंसवियों भाग-२ के पृष्ठ ६१ में प्रकाशित किया था। उसमें देवपुत्र के गुरु का नाम और यह सूरि मिला था। उनके बाद उन्होंने सम्वत् १५८२ की एक और प्रति प्राप्ति की और उसका विवरण जैनगुरुंसवियों-भाग-३, पृष्ठ ४८७ में प्रकाशित किया। सेण्ट्रल लाइब्रेरी की प्रति से उन्होंने वह स्वर्ण लिया था। हमें प्रस्तुत रात की सम्वत् १४७३ की लिखी हुई प्राचीनतम प्रति पूज्य मुनि की पुण्यविजय जी के संग्रह से प्राप्त हुई। यही इस रात को संक्षिप्त सार के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। नहाराजा कुमारपाल आचार्य हेम क्लिंगमूरि के द्वान् भक्ता और गुजरात के प्रतापी तत्राद् थे।

श्री सोमतिलक सूरि के जिन्हे देवप्रभगणि आदिनाथ, महावीर, गौतमादि आचार्य, मोदगामी मुनि, सरस्वती, कर्मण्डल और अन्या देवी का स्मरण-बन्दन करके कुमारपाल नरेश्वर का राजा कहता है। मेरे को लेखनों और नमुद्र की स्थाही द्वारा लिखने पर भी मुझों का पार नहीं। गमन-सुन्धी कुमारविहार जिसमें स्वर्णमय स्तम्भों पर पुतलिकाएँ और हाथी हैं, सण्डलोंग राणा आदि का भक्ति केन्द्र है, हेमचन्द्रसूरि ने कुमारपाल को प्रतिव्रोध दिया। भेड़, बकरी, खरोंश, नैसे, हरिण, राजा, गूँकर, तांवर नौता, फूलत, तीतर आदि सभी जीव-जन्मतु अवधारने से निर्भय केलि भरते लगे। लटमल और जूँ तक को कोई नहीं मारता। पुरा, वारा, हंत, नमूर, काक, नारि और मछल आदि जलनर जीव भी कुमारपाल के राज्य में दम्भ प्राप्त थे। कम्टेस्वरो, भासुण्डा, वालीनाह आदि देवों को गश्यति से नहीं, वाकुलों से ही संतुष्ट होना पड़ता, क्योंकि उन्होंने देव लिया कि जकिरासाली हेमचन्द्रसूरि से दोष करना असत्य था। शिकारी का पापकारी पन्था कुमारपाल के राज्य में स्वयं निपिद्ध था, क्योंकि दशरथ राजा को शिकार के कारण ही पुत्र दियोग हुआ था।

जूआ खेलने से नल और पाण्डव चिरकाल दुखी हुए, अतः दूत का व्यस्त भी रखें। कुमारपाल ने वन्द कर दिया। मांस-मक्षण के व्यस्त से सोदास और श्रेणिक जैसे दुर्गतिभाजन हुए, अतः मांसाहार निपिद्ध हुआ और कुमारपाल ने इसके दण्डत्वरूप वत्तीत जिनालय-विहार बनवाये।

मदिरापाल से यादव-मुक्त का नाश हुआ, दीपावल ने द्वारिका जला दी, अतः राजा के आदेश से मध्यान्त त्याज्य हुआ और मदुयारे लोगों ने मध्य बनाना होड़ दिया। इसी प्रकार कुमारपाल ने अपने राज्य में वैद्यागमन निपिद्ध कर वैद्याक्षों की भी शोलवती सती बता दिया। कुमारपाल के राज्य में चोरी का कठोर दण्ड होने से चोरी बन्द हो गयी और घरों के द्वार बुले रखाहर भी लोग निशंक सोते थे। परस्त्रीगमन-दोष से रावण को नरक जाना पड़ा एवं राम से दण्ड पाया। अतः परस्त्री परिहार कर यमी लोग स्वदार समरोषी हो गये। इस प्रकार नप्त-व्यत्तन रहित होकर कुमारपाल की प्रजा धर्मिष्ठ ही गयी। पात्री को दिन में तीन बार छाना जाता, कुमारपाल के राज्य में निष्पाप आवक-घर्म उत्पत्त हुआ।

अग्निहोत्रवाहा के कुमारविहार का दर्शन तथा बन्दन करने लोग दूर-दूर से आते। स्वर्णस्पृष्टि और पुत्तलिकाओं को चूख़ी हीरे मणिक और कीरती पत्थर-रत्नों से जटित थी।

शत्रुघ्नजय का संघ निकालने का दिचार हुआ। मन्त्री ने देश-देश से आमन्त्रणपत्र भेजकर संघ को बुलाया। समस्त संघ के एकत्र होने पर वहे भारी समारोह से संघ ने प्रवाण किया। हेमचन्द्राचार्य भ्रमुख हुजारों साधु-साध्वी एवं लाखों शावक-धाविका थे। विविध व्याजितव्यनि, बन्दोजनों के जय-जयकाल्पनिक संघ में कड़ा उत्ताह था। दार्शणियाँ भ्रमुखीत नान द्वारा रास-गास खेलती थीं। हाथों, घोड़े ऊंट लाखों को संस्था में थे। गाँध-गाँव में जिन पूजन कारते हुए शत्रुघ्नजय तीर्थ पहुँचकर भगवान् वशभदेव को बन्दन किया। राजा कुमारपाल ने स्तुति करते हुए मादना की कि यहाँ पक्षी होना ही अच्छा, पर जिस कुल में प्रभु को नहीं पहिचाना जाय वह चक्रवर्तीपन मो अभाङ्गनीय है। शत्रुघ्नजय से गिरन्तार जाकर नेमिनाथ प्रभु को बन्दन किया। फिर बनस्यलो में महावीर, मंगलपुर में पार्वतीनाथ, दोष, अजाहर, कोदीनार आदि स्थानों में जिन बन्दन कार पाठण लोटे। महाराजा कुमारपाल और हेमसूरि के प्रसाद से यात्रा पूर्ण कर सब लोग आनन्दित हुए।

कुमारपाल में काशी, कोशल, नगर्य, वरस-जोशांबो, भक्षाराष्ट्र, मालव, लाट, सोरीपुर, कच्छ, सिन्ध, सवालक्ष, काश्मीर, कुरुकुंतो (?) सांभर, कम्हड़ और जलन्धर (गुजरात, सोराष्ट्र) इन अठारह देशों में अमारि प्रवर्तित की। उसने चाँदहरां नालोन (१४४०) राय बिहार-जिनालय निर्माण कराये। उसकी कीर्ति तोन भुवन में फैली। जयगिरि नरेश्वर के बाद चीलुक्य तिहुणपाल के कुलसूर्य कुमारपाल सं० ११९९ में राजगढ़ी पर बैठा। जहाँ तक से ह, चन्द्र-सूर्य, समुद्र-पृथ्वी को शैष धारण करता है, कुमारपाल का धर्म विषय जयवन्ता हो। सोम तिलकसूरि के चरणों के प्रताप से देवप्रभगणि ने यह रास रखा। इसे जो पढ़ेंगे, सुनेंगे और जिनालय में खेलेंगे, सब दुःखों को दूर कर जिवानु-वास प्राप्त करेंगे।

